भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?

[बंगला 'भूदान-यज्ञ : कि ओ केन' का अनुवाद]

लेखक

श्रीचारुचन्द्र भण्डारी

अनुवादक

विद्याभूषण वर्मा 'श्रीरश्मि'

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (बंबई राज्य)

पहली बार : १०,०००
दिसम्बर, १९५६
मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
प० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस,
गायघाट, वाराणसी

प्रकाशकीय

'भूदान यज्ञ : कि ओ केन' पुस्तक का यह हिंदी संस्करण पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। विनोबाजी ने इसे पढ़कर लेखक श्रीचारुबाबू को लिखा था कि 'आपने हमारे आन्दोलन के बुनियादी विचारों का बहुत ही अच्छे ढंग से विवरण किया है।... पुस्तक मुझे सर्वांगपरिपूर्ण मालूम हुई।'

भारत की अन्य भाषाओं में भी इस पुस्तक के अनुवाद हो रहे हैं। विनोबाजी के शब्दों में हम भी आशा करते हैं कि 'जो यह पुस्तक लेगा, उसके हृदय से दान-धारा नित्य बहती रहेगी।'

हिन्दी संस्करण की भूमिका

"भूदान यज्ञ कि ओ केन ?" पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करने की व्यवस्था हुई है। इस पुस्तक को सभी भारतीय क्षेत्रों में अध्ययन के उपयुक्त बनाने के लिए पश्चिम बंगाल की भूमि और जीविका-सम्बन्धी तीन प्रकरण (१ पश्चिम बंगाल की भूमि-व्यवस्था, २ पश्चिम बंगाल के ग्रामों की दुर्दशा का दृश्य और ३ क्या पश्चिम बंगाल में भूमि कम है ?) हिन्दी-संस्करण से निकाल दिये गये हैं और उनके स्थान पर भारत की भूमि और जीविका-सम्बन्धी तथ्यों से पूर्ण दो नये प्रकरण (१ भारत की भूमि और उस पर जन-संख्या का दबाव और २ भारतवासियों की जीविका) इसमें जोड़े गये हैं। परिशिष्ट में भी पश्चिम बंगाल की भूमि और जीविका-सम्बन्धी संख्याओं के स्थान पर भारत की भूमि और किसानों से सम्बन्धित तीन नयी तालिकाएँ दी गयी हैं। परिशिष्ट के अन्य अंश भी हटा दिये गये हैं। भूदान-यज्ञ नित्य विकासशील है। मूल बंगला पुस्तक का वर्तमान संस्करण (तृतीय संस्करण) एक वर्ष पहले लिखा गया था। इसलिए इसे अद्यावधि-पर्यन्त लिखे जाने की आवश्यकता हुई है। अतएव निम्नलिखित छह नये प्रकरण इसमें जोड़े गये हैं (१) दरिद्रता का मूल और वर्तमान विश्व-परिस्थिति ('दरिद्रता का मूल' प्रकरण का संवर्द्धन), (२) भूदान-यज्ञ की तीन दिशाएँ (३) आंदोलन को समय की सीमा में बाँध रखने पर आपत्ति, (४) भूदान-आंदोलन में नेतृत्व और गणसेवकत्व, (५) विनोबा कर्मयोगी अथवा ज्ञानयोगी और (६) सत्याग्रह-शास्त्र का संशोधन। इनके अतिरिक्त (१) भूदान-यज्ञ का क्रमिक विकास, (२) बेकारी की समस्या और उसका स्वरूप तथा (३) साम्यवाद और साम्ययोग, इन तीन प्रकरणों में थोड़ा-बहुत और जोड़ा गया है। कुछ और प्रकरणों में भी थोड़े-बहुत नये अंश जोड़े गये हैं और कुछ पुराने अंश हटा दिये गये हैं।

डायमण्ड हारबर,
२१-७-'५६

श्रीचारुचन्द्र भण्डारी

प्रस्तावना

"मानव-समाज हजारो वर्ष पुराना है। किन्तु, पृथ्वी इतनी बडी है कि, प्राचीनकाल में पृथ्वी के एक छोर के मनुष्यो का दूसरे छोर के मनुष्यो के साथ कोई परिचय या सम्पर्क नही था। विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ पृथ्वी के विभिन्न भागो के मनुष्यो के बीच सम्पर्क स्थापित होने लगा और क्रमश मानसिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदि विभिन्न क्षेत्रो में मनुष्यो का पारस्परिक सम्बन्ध बढने लगा। पृथ्वी के विभिन्न भागो के मनुष्यो के बीच सम्पर्क तो स्थापित हुआ, परन्तु आरम्भ में बन्धुत्व या प्रेम-भाव की सृष्टि नही हुई। कितने ही भागो में तो सघर्षों या द्वन्द्वो के कारण सम्पर्क स्थापित हुआ था। अत कही तो प्रथम सम्पक मधुर रहा, कही कटु। फिर भी, कुल मिलाकर यह सम्पर्क-स्थापन अच्छा ही साबित हुआ।

"प्राचीनकाल में उत्तर भारत में आर्य जाति निवास करती थी और दक्षिण भारत में द्रविड जाति। यद्यपि देश एक ही था, तथापि इस विशाल देश के उत्तरी और दक्षिणी भागो के मध्य दण्डकारण्य की बाधा के कारण, कई हजार वर्षों तक कोई सम्पर्क स्थापित न हो सका। आर्यों की पहाडी सस्कृति थी और द्रविडो की समुद्री सस्कृति। उत्तर भारत के निवासी ज्ञान-प्रधान थे और दक्षिण के निवासी भक्ति-प्रधान। देश के इन दोनो भागो के बीच क्रमश सम्पर्क स्थापित हुआ—दोनो सस्कृतियो का सम्मिश्रण हुआ। उत्तर भारत में बुद्ध और महावीर का आविर्भाव हुआ और उनकी वाणी—आत्मज्ञान की विचारधारा–दक्षिण मे रामेश्वरम् तक पहुँची। इससे पूर्व भी वैदिक जनो ने अपनी-अपनी विचारधाराओ का प्रचार दक्षिण भारत में किया था। दूसरी ओर, दक्षिण भारत में शकराचार्य, रामानुज, माधवाचार्य आदि का आविर्भाव हुआ। उत्तर भारत से आत्मज्ञान की जो विचारधारा दक्षिण भारत गयी थी, उसे दक्षिण भारत ने अपनी विशेषता प्रदान की, अर्थात भक्ति के द्वारा उसे समृद्ध किया। शकराचार्य, रामानुज आदि उसे

उत्तर भारत ले गये। दक्षिण भारत में और भी कई ज्ञानी, भक्त और संत पुरुषों ने जन्म ग्रहण किया था एवं उन्होंने भी सम्पूर्ण भारत में भक्ति-मार्ग का प्रचार किया था। परिणामस्वरूप, वैचारिक दृष्टि से उत्तर भारत और दक्षिण भारत एक ही राष्ट्र में परिणत हो गये। यद्यपि भारत के विभिन्न क्षेत्रों में सब मिलाकर अनेक राज्य थे, तथापि विचारधारा की दृष्टि से कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक ही राज्य फैला था।

"इसके बाद मुसलमान लोग बाहर से आये। वे अपने साथ एक नयी संस्कृति ले आये। इसलाम धर्म सबको समान मानता था। उपनिषद् आदि में समानता की बात थी अवश्य, किन्तु हमारी सामाजिक व्यवस्था में या सामाजिक आचरण में इसका लेशमात्र भी नहीं था, बल्कि इससे उल्टी स्थिति थी। यह समाज-व्यवस्था असाम्यमूलक जातिभेद-प्रधान थी। इसीलिए मुसलमानों की संस्कृति के साथ यहाँ की संस्कृति का संघर्ष आरम्भ हुआ। मुसलमान लोग अपनी संस्कृति के विकास के लिए हिंसा और प्रेम, दोनों ही मार्गों का अनुसरण करते थे, ऐसा प्रतीत होता है। ये दोनों ही मार्ग दो धाराओं के समान एक साथ चले। गजनी, औरंगजेब आदि ने हिंसा-पथ अपनाया और दूसरी ओर, अकबर, कबीर आदि ने प्रेम-पथ। मुसलमानों ने तलवार के बल पर इस देश पर विजय पायी थी, अथवा इस देश के निवासी युद्ध में पराजित हुए थे, यह बात कोई नहीं बता सकता। किन्तु, युद्ध हुआ था, यह बात सत्य है। परन्तु, उससे पहले मुसलिम संतों ने इस देश में आकर इसलाम की समतामूलक वाणी को ग्राम-ग्राम में पहुँचा दिया था। इस जातिभेदवाले देश के लोग उन लोगों के प्रचार से खूब प्रभावित हुए थे। इस प्रकार ये दो संस्कृतियाँ एक-दूसरे के निकट आयीं। इसके बाद इस देश में अनेक भक्त उत्पन्न हुए। उन लोगों ने जातिभेद के विरुद्ध प्रचार किया और एक ही परमेश्वर की उपासना पर विशेष बल दिया। इससे इसलाम को लाभ पहुँचा, इसमें सन्देह नहीं। आर्य संस्कृति और द्रविड संस्कृति का जो सम्मिश्रण हुआ था, उसमें इसलामी संस्कृति भी जुड़ गयी।

"इस प्रकार भारत में जो संस्कृति बन गयी थी, उसमें विज्ञान का अभाव था। भारत में एक समय विज्ञान बहुत प्रगति कर चुका था सही,

किन्तु मध्यवर्ती काल में उसका अभाव रहा। ठीक इसी समय यूरोप मे नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार होने से वहाँ शानदार वैज्ञानिक प्रगति हुई और तब यूरोपियन लोग यहाँ आ पहुँचे। भारत अंग्रेजो की परतन्त्रता की बेडियों में जकड गया। दोनो के बीच सघर्ष चलता रहा। सघर्ष के माध्यम से ही सम्मिश्रण की क्रिया आरम्भ हुई। इस मिश्रण के फलस्वरूप एक नयी सस्कृति उत्पन्न हुई। वह है सामूहिक अहिंसा। पहले अहिंसा का प्रयोग दो व्यक्तियो के बीच तक सीमित था। सामुदायिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग नही हो पाता था, क्योकि विज्ञान की प्रगति के लिए आज मानव-समाज एक-दूसरे के साथ जिस प्रकार सम्बन्ध स्थापित कर रहा है, पहले वैसा सम्भव नही था। आज जहाँ कही भी सघर्ष होता है या सम्बन्ध स्थापित होता है, से सामाजिक रूप प्राप्त हो जाता है। इसीलिए विज्ञान की प्रगति के फलस्वरूप कोई आदोलन आज किसी एक देश तक सीमित नही रह पाता। वह विश्वव्यापी आदोलन में परिणत हो जाता है। आज एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र के साथ या एक समाज का दूसरे समाज के साथ सम्पर्क भी स्थापित हो रहा है और सघर्ष भी चल रहा है।" *

अग्रेज भारत को केवल पराधीन करके ही शात नही हो गये, बल्कि उन्होने उसे पूर्णत नि शस्त्र कर दिया। इसके बाद भारत में जाग्रति पैदा हुई और स्वाधीनता-प्राप्ति की लालसा जगी। किन्तु, प्रचलित उपाय से, अर्थात् हिंसा के द्वारा स्वाधीनता-प्राप्ति की स्थिति नही रह गयी थी। हिंसा के द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने की जो भी चेष्टाएँ हुई, वे पूर्णत असफल सिद्ध हुई। हृदय मे स्वाधीनता के लिए तीव्र आकाक्षा थी और बाहर था असफलता और निराशा का घोर अन्धकार। भारत की अन्तरात्मा किसी सफल मार्ग की खोज में लग गयी। परिस्थिति की आवश्यकता ने भारत के अध्यात्म और पाश्चात्य विज्ञान के सयोग से, सामुदायिक अहिंसा को जन्म दिया। युग की माँग पर, जब इस प्रकार के किसी आत्मिक गुण के विकास की स्थिति पैदा होनी है, तब एक युग-पुरुष के माध्यम से उस गुण का विकास और

---

* विनोबा

प्रचार होता है। सामूहिक अहिंसा के विकास और प्रचार के लिए युग-पुरुष आविर्भूत हुए—महात्मा गांधी।

सामूहिक अहिंसा के प्रयोग के फलस्वरूप हमने राजनीतिक क्षेत्र में स्वाधीनता प्राप्त की। अहिंसा जीवन का एक आध्यात्मिक विचार है। आत्मा की एकता, अर्थात् सब किसीमें एक ही आत्मा विराजमान है, इस बात का विश्वास ही अहिंसा के सिद्धान्त का मूल है। वह जीवन के मूल में प्रवेश करती है। जीवन के मूल में प्रविष्ट हो जाने के बाद जीवन के सभी क्षेत्रों में उसका प्रयोग न हो, ऐसा सम्भव नहीं है। इसीलिए आज भारत में आर्थिक, सामाजिक आदि, जीवन के सभी क्षेत्रों में सामूहिक अहिंसा-सिद्धान्त के प्रसार और विकास के प्रयत्न चल रहे हैं। भारत की जो स्थिति आज है, उसमें उसीकी आवश्यकता है। सामुदायिक अहिंसा की चरम परिणति है, सर्वोदय-सिद्धान्त में। वही चरम और परम ध्येय है।

"अब भारत और पश्चिम की बारी आ गयी है। भारत एक नवीन संस्कृति, नवीन विचारधारा, अर्थात् सामूहिक अहिंसा, पश्चिमी जगत् में पहुँचायेगा। मनु ने कहा है : 'स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्, पृथिव्यां सर्वमानवाः।'— 'पृथ्वी के सभी लोग चरित्र की शिक्षा भारत के श्रेष्ठ व्यक्तियों से ग्रहण करेंगे।' मनु की यह भविष्यवाणी महात्मा गांधी के आविर्भाव से सत्य सिद्ध हो गयी है।

"आत्मज्ञान और विज्ञान के संयोग से जो परिणाम प्रकट हुआ है, उसका आलोक भारत के माध्यम से सम्पूर्ण विश्व में विकीर्ण होगा—यही परमेश्वर की इच्छा है।" * इसके लक्षण भी देखने में आ रहे हैं। भारत की ओर से शांति-स्थापना की वाणी कोरिया पहुँची और वहाँ युद्ध बंद हो गया। भारत ईश्वर की इच्छा सम्पूर्ण रूप से पूरी कर सकेगा क्या? सामूहिक अहिंसा के पूर्ण विकास के लिए जिस त्याग और एकांत तथा अक्लांत तपस्या की आवश्यकता है, भारत यदि उसे पूरा कर सकेगा, तो वह इस युग में सम्पूर्ण विश्व को आलोक-दान करने में समर्थ होगा।

---

* विनोबा

अनुक्रम

विषय		पृष्ठ
१	भूदान-यज्ञ क्या है ?	१
२	भूदान-यज्ञ की सफलता में आशंका	७
३	यह विनोबा कौन है ?	८
४	कांचन-मुक्ति-प्रयोग	२३
५	सर्वोदय-दर्शन और सर्वोदय-समाज की स्थापना	२५
६	विनोबाजी की तेलगाना-यात्रा	२८
७	भूदान-यज्ञ का जन्म	३०
८	भूदान-यज्ञ का क्रमिक विकास	३३
९	भूदान-यज्ञ के पांच सोपान	४३
१०	बापू जैसा ही दृश्य	४५
११	सम्पूर्ण ग्रामदान या भूमि का ग्रामीकरण	४६
१२	प्रेम और आत्मत्याग-भाव का विकास	५२
१३	भारत में आत्मज्ञान का विकास	६०
१४	क्रान्ति की अभिव्यक्ति के क्रम	६४
१५	भूदान-यज्ञ का मूल तत्त्व	६५
१६	सर्वोदय प्रेमियों के कर्तव्य	६७
१७	राष्ट्र-नायकों की करुण अवस्था	६८
१८	दंड निरपेक्ष जनशक्ति	६९
१९	समस्या के समाधान में कानून का स्थान	७०
२०	भारत की दरिद्रता का मूल और वर्तमान विश्व-परिस्थिति	७६
२१	भारत की भूमि और उस पर जन संख्या का दबाव	८५
२२	भारतवासियों की जीविका	९५
२३	दरिद्र को भूमि चाहिए	१०२
२४	बेकारी की समस्या और उसका स्वरूप	१०२
२५	गरीबी की समस्या के समाधान के उपाय	१०६

विषय	पृष्ठ
२६ सत्ता-विभाजन	१०९
२७ भूदान यज्ञ—प्रेम का मार्ग	११२
२८ भूमि समस्या के समाधान में अहिंसा के मार्ग का विचार	११२
२९ हिंसात्मक मार्ग का विचार	११४
३० भूमि का प्रश्न अभी तक क्यों नहीं उठा ?	११९
३१ 'दान' शब्द पर आपत्ति	११९
३२ 'भूदान-यज्ञ' मे 'यज्ञ' शब्द का अर्थ और उद्देश्य	१२०
३३ तप	१२३
३४ प्रजासूय-यज्ञ	१२४
३५ भू-कुर्बानी	१२४
३६ बिना समझे दान देने का निषेध	१२५
३७ धनिकों की आन्तरिकता का प्रश्न	१२६
३८ धनी लोगों की प्रतिष्ठा-वृद्धि का प्रश्न	१२६
३९ वामन-अवतार	१२७
४० भूमिहीन गरीब धनी का छठा पुत्र	१२८
४१ धनी निमित्तमात्र बनें	१२९
४२ धनी लोगों की सम्मान-रक्षा का प्रश्न	१३०
४३ भय-युक्त दान	१३१
४४ धनी का हृदय-परिवर्तन	१३३
४५ कौन कितना दान देगा ?	१३३
४६ गरीब भूमि दान क्या दे ?	१३४
४७ आन्दोलन में गरीब का कर्तव्य	१३८
४८ साम्यवाद और भूदान-यज्ञ	१४०
४९ कम्युनिस्टों के अभियोगों का खण्डन	१४३
५० साम्ययोग	१४८
५१ साम्यवाद और साम्ययोग	१५१
५२ सख्य भक्ति का युग	१५७
५३ साम्य का स्वरूप	१६४

विषय	पृष्ठ
५४. श्मशान की शान्ति	१६७
५५ असफलता की प्रतिक्रिया	१६७
५६ उग्र सत्याग्रह	१६९
५७ सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह	१७०
५८. सत्याग्रह-शास्त्र में संशोधन	१७३
५९. एकाग्रता और आत्मविश्वास	१७५
६०. सम्पत्ति-दान-यज्ञ	१७६
६१. श्रमदान-यज्ञ	१८७
६२ प्रेम और बुद्धिदान-यज्ञ	१८८
६३. जीवन-दान	१८९
६४. षष्ठांश दान का रहस्य	१९८
६५. भूमि-वितरण	१९९
६६. भूमि का खंडीकरण	२०१
६७. खंडित भूमि का उत्पादन	२०२
६८. अधिकतम सीमा-निर्धारण का प्रश्न	२०३
६९. कृषि सर्वोत्तम श्रम और श्रेष्ठ आजीविका	२०५
७०. सभी भूमि पाने के अधिकारी	२०७
७१. जनसंख्या-वृद्धि और खाद्योत्पादन	२०८
७२. असहनीय स्थिति	२११
७३. सनातन धर्म	२१२
७४. युगधर्म	२१३
७५. स्वधर्म एवं नित्य तथा नैमित्तिक धर्म	२१४
७६. परमधर्म	२१६
७७. पूर्वजन्म का गरीबी से सम्बन्ध	२१८
७८ कलियुग में क्या यह सम्भव है ?	२२०
७९ मध्यवित्त-वर्ग की समस्या का समाधान	२२१
८०. सर्वोदय-समाज की इकाई	२२३
८१ सर्वोदय-सूत्र	२२५

विषय		पृष्ठ
८२	अहिंसात्मक क्रांति साधना के दो पक्ष विधायक (Positive) और नकारात्मक (Negative)	२३१
८३	शासनमुक्त समाज	२३५
८४	शारीरिक श्रम का महत्व	२४०
८५	अपरिग्रही समाज का अर्थ	२४३
८६	ग्रामराज और रामराज	२४६
८७	भूदान-यज्ञ के सप्तसूत्री उद्देश्य	२४७
८८	भूदान-यज्ञ के कार्य की तीन दिशाएँ	२४८
८९	आन्दोलन की अवधि का प्रश्न	२४९
९०	भूदान-आन्दोलन में नेतृत्व और गणसेवकत्व	२५१
९१	विनोबा कर्मयोगी अथवा ज्ञानयोगी ?	२५३
९२	युगानुकूल दो पद्धतियों का अनुसरण	२५६
९३	बुद्धि श्रद्धा और निष्ठा	२५७
९४	ज्ञान और विज्ञान	२५९
९५	गांधीवादी-दर्शन की तीन नीतियाँ	२६०
९६	सूत्रांजलि	२६७
९७	समन्वय	२६९
९८	विनोबाजी की मौलिकता	२७४
९९	आन्दोलन का भावी स्वरूप	२७५
१००	उपसंहार	२७८

परिशिष्ट

१ भारत का कृषि-योग्य भूमि का विवरण।
२ गठन-वैशिष्ट्य के अनुसार विभक्त विभिन्न श्रेणियों की भूमि और गठन की दृष्टि से व्यवहार-योग्य भूमि का राज्यवार एवं अन्यान्य विभागवार विवरण।
३ भारत में कृषिजीवी वर्ग-समूह और भूमिहीन किसानों का विवरण।

भूदान : क्या और क्यों ?

भूदान-यज्ञ क्या है ?

'यज्ञ'—इस शब्द से हम सब लोग परिचित हैं। 'यज्ञ' क्या है—यह हम सब न्यूनाधिक जानते हैं। 'यज्ञ' एक प्रकार की पूजा-पद्धति को कहते हैं। 'यजति यजते विष्णु सुधी पूजयतीत्यर्थं।' 'अश्वमेध'-यज्ञ की बात हम लोग जानते हैं। 'राजसूय'-यज्ञ से भी हम लोग परिचित हैं। गीता के चतुर्थ अध्याय में द्रव्य-यज्ञ, तपो-यज्ञ, योग-यज्ञ, ज्ञान-यज्ञ इत्यादि यज्ञों का उल्लेख है। गरुड-पुराण, श्रौतसूत्र आदि ग्रन्थों में ब्रह्म-यज्ञ, पितृ-यज्ञ, देव-यज्ञ, नृ-यज्ञ, महाव्रत, सर्वतोमुख, पौण्डरीक, अभिजित, विश्वजित्, आंगिरस इत्यादि अनेक प्रकार के यज्ञों का उल्लेख और वर्णन है। किन्तु 'भूदान-यज्ञ' का उल्लेख कहीं नहीं है। यह नवीन शब्द और नवीन यज्ञ है।* 'नवीन' शब्द को लेकर हमारे मन में शंका नहीं उठनी चाहिए, क्योंकि युगान्तरकारी शब्द-रचना से सब लोग पूर्णतः परिचित हैं। 'दरिद्रनारायण' और 'वन्दे मातरम्'—इन दोनों शब्दों के स्रष्टा बंगाल के दो महान् मनीषी थे। स्वामी विवेकानंद ने 'दरिद्रनारायण' शब्द की रचना की और इस शब्द ने धर्म और समाज-सेवा के क्षेत्र में युगान्तर उत्पन्न किया। 'वन्दे मातरम्' शब्द के स्रष्टा और द्रष्टा थे ऋषि बङ्किमचन्द्र। भारत की राष्ट्रीयता के उन्मेष और भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में इस शब्दरूपी मंत्र का क्या स्थान है, यह सब लोग जानते हैं। 'भूदान-यज्ञ' शब्द भी भारत में आर्थिक और सामाजिक समता की स्थापना के क्षेत्र में क्रांतिकारी साबित होगा, इसमें सन्देह नहीं। विचार-विमर्श जितना आगे बढ़ेगा, भूदान-यज्ञ का तात्पर्य और उद्देश्य क्रमशः उतना ही स्पष्ट होगा। संक्षेप में, इस शब्द का अर्थ यही है कि जो

---

* "भूदान-यज्ञ में 'यज्ञ' शब्द का अर्थ और उद्देश्य" प्रकरण देखिये।

व्यक्ति भूमिहीन दरिद्र है—जो खेती करना जानता है और खेती करना चाहता है, किन्तु दूसरे का खेत जोतने या मजदूरी करने के अतिरिक्त जिसके पास कोई उपाय नहीं है, उसके लिए भूमिदान, और यह भूमिदान होगा भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व को समाप्त करने के लिए, मालिकाना प्रवृत्ति के अंत के लिए। अर्थात्, वायु, जल और प्रकाश की भांति भूमि का भी एकमात्र मालिक भगवान् है और सबको अपने हाथ से खेती करने का समान अधिकार है—यह विचार अपने हृदय में लाकर दाता अपनी मालकियत को समाप्त करने के लिए भूदान-यज्ञ में भूमि अर्पित करेगा, जिससे कि गाँव की भूमि गाँव की हो जाय, अर्थात—भूमि का ग्रामीकरण हो। भूदान-यज्ञ का उद्देश्य है—भूमि के इस प्रकार ग्रामीकरण को आधार मानकर ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसक-समाज की रचना करना।

ईश्वर ने अपने द्वारा निर्मित प्राणियों और मनुष्यों के जीवन-यापन के लिए, जिन सामग्रियों की मूलतः आवश्यकता होती है, उन्हें समान भाव से उचित रूप में सबके लिए सुलभ कर दिया है। इसे कहते हैं 'पंचभूत'—'क्षित्यप्तेजमरुद्व्योम'—क्षिति (भूमि), अप (जल), तेज (प्रकाश), मरुत् (वायु) और व्योम (गगन)। हवा का सभी लोग अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार उपभोग कर सकते हैं। हवा पर सबका समान अधिकार है। प्रकाश पर भी सबका समान अधिकार है और सब लोग अपनी आवश्यकता के अनुसार उसका उपभोग कर सकते हैं। जल पर भी सबका बराबर अधिकार है। जब आकाश से वर्षा होती है, तब वह ऊँच-नीच, धनी-दरिद्र का भेद-भाव नहीं दिखाती। नदी की बहती धारा पर सबका समान अधिकार है। भगवान् की सृष्टि की यह चतुराई है कि मनुष्यों और अन्य प्राणियों के लिए जिस वस्तु की जितनी बड़ी मात्रा में आवश्यकता है, वह वस्तु उतनी ही बड़ी मात्रा में सुलभ की गयी है। वायु के बिना मनुष्य थोड़ी देर भी नहीं जी सकता, इसीलिए यह सर्वाधिक सहजप्राप्य है। जिस प्रकार ईश्वर के दान वायु, प्रकाश और जल पर सबका समान अधिकार है, उसी प्रकार ईश्वरीय दान पृथ्वी पर भी सबका बराबर अधिकार है। भगवान् के दान पर एक व्यक्ति का अधिकार हो और दूसरे का नहीं, ऐसा ईश्वर का विधान नहीं हो सकता। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अपनी अनुपम भाषा में कहा है "सूर्य घर-घर जा पहुँचता

है। उसकी जितनी रश्मि एक राजा पाता है, उतनी ही एक मेहतर भी। भगवान् कभी भी अपनी चीज का असमान रूप से वितरण नहीं करता। यदि ईश्वर ने हवा, जल, प्रकाश और गगन के वितरण में भेद-भाव नहीं किया है, तो यह कैसे सम्भव है कि उसने भूमि का सब लोगों में बराबर-बराबर वितरण न कर केवल कुछ लोगों के हाथ में उसे छोड़ दिया ?" किन्तु, युग के बाद युग और शताब्दी के बाद शताब्दी तक समाज में आर्थिक-अव्यवस्था रहने के कारण भूमि मनुष्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गयी है। आज एक व्यक्ति के पास भूमि है और एक के पास नहीं। एक व्यक्ति के पास जरूरत से ज्यादा भूमि है और एक व्यक्ति के पास उसकी जरूरतों की तुलना में सर्वथा नगण्य। इसीलिए देश में इतना हाहाकार है। देश के विकट सम्पत्ति-वैषम्य की जड़ यही अस्वाभाविक और विकारग्रस्त भूमि-व्यवस्था है। सहृदय लोग यह अनुभव कर सकते हैं कि किस प्रकार दरिद्र भूमिहीनों का करुण-क्रन्दन भारत के अन्तस्तल को छेद रहा है। माँ की गोद पाने के लिए मातृहीन शिशु जिस प्रकार आकुल-आग्रह करता है, उसी प्रकार भूमिहीन दरिद्र भूमि पाने के लिए व्याकुल होकर प्रतीक्षा कर रहे हैं। जिस प्रकार निस्संतान स्त्री भले ही दूसरे के बच्चे का लालन-पालन करे, पर उससे उसके अपने गर्भ से उत्पन्न सन्तान को गोदी खिलाने की स्वाभाविक आकांक्षा तृप्त नहीं होती, उसी प्रकार दूसरे की भूमि को आबाद करने पर भी भूमिहीन दरिद्र भूमि के लिए अपनी क्षुधा को तृप्त नहीं कर पाता।

ग्राम-संगठन का कार्य सफल क्यों नहीं हो पाता ? संगठन-कर्ताओं की अभिज्ञता क्या है ? भूमिहीनों को चरखा दिया जाता है, तांत दी जाती है, अन्यान्य गृहशिल्प दिये जाते हैं, किन्तु इन चीजों को वे हृदय से ग्रहण नहीं कर पाते—इन चीजों से उनका हृदय तृप्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि भूमिहीन सर्वप्रथम भूमि चाहता है—भूमि को वह 'अपनी भूमि' के रूप में देखना चाहता है। आज भारत तथा एशिया महादेश के जिन स्थानों में जो भी अशांति दिखाई पड़ती है, उसके मूल में यही भूमि-समस्या है। अतएव भूमि-समस्या के शांतिपूर्ण समाधान पर भारत का कल्याण निर्भर करता है। भारत में सामाजिक और आर्थिक समता-स्थापन की दिशा में इस समस्या का शांतिपूर्ण समाधान पहला कदम है।

प्रश्न है कि यह भीषण भूमि-क्षुधा है क्यों ? ऊपर जो कुछ कहा गया है, उसीमें इसका कारण भी समाहित है। भगवान् ने सबके समान भाव से उपयोग के लिए 'पंचभूत' का जो दान किया है, भूमि उसीमें से एक है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए 'पंचभूत' की प्रत्येक वस्तु की आवश्यकता अपरिहार्य है। मनुष्य के चलने-फिरने के लिए गगन की, साँस लेने के लिए वायु की, पीने के लिए जल की और ताप-रक्षा के लिए प्रकाश की आवश्यकता है। ये चारों चीजें तो मनुष्य अपनी आवश्यकता के अनुसार समान अधिकार के साथ ग्रहण कर सकता है, किन्तु केवल इन्हीं चीजों को लेकर जीवित नहीं रहा जा सकता।

जीवन-रक्षा के लिए इन वस्तुओं के अतिरिक्त खाद्य-पदार्थों, वस्त्रों और निवास-स्थान की भी आवश्यकता होती है। खाद्य-पदार्थों, वस्त्रों और निवास-स्थान के लिए आवश्यक सामग्रियों के उत्पादन का एकमात्र साधन भूमि या भूगर्भ है। अतएव भू-उत्पादित या भूगर्भ-उत्पादित सामग्रियों पर मनुष्य के भोजन, वस्त्र और निवास की व्यवस्था निर्भर करती है। भूमि या भूगर्भ छोड़कर और किसी भी साधन से इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो सकती। मनुष्य अपने हाथों से या यन्त्रों के सहारे अनेक पदार्थ तैयार कर सकता है, किन्तु खाद्य-सामग्रियाँ, साग-सब्जी और फल-मूल एकमात्र भूमि से ही उत्पन्न हो सकते हैं। हमारे वस्त्रादि के लिए रूई और करघा तथा ताँत के लिए लकड़ी भूमि से ही उत्पन्न होती है, वस्त्र-निर्माण के यन्त्रों का लोहा भी भूगर्भ से ही उत्पन्न होता है। घर या निवास मिट्टी, ईंट या पत्थर से बने, पर उसकी प्रत्येक सामग्री भूमि या भूगर्भ से ही उत्पन्न होती है। इस प्रकार थोड़ा भी विचार करने से यह बात समझ में आ जाती है कि हमारी जीवन-रक्षा और सुख-स्वच्छंदता के लिए जिस किसी सामग्री की आवश्यकता पड़ती है, उसकी उत्पत्ति भूमि या भूगर्भ से ही होती है। वायु, प्रकाश और जल के साथ भूमि का पार्थक्य यही है कि वे सब सहज सुलभ हैं, उनको पाने के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता, परन्तु खाद्यान्न, वस्त्र तथा निवास-स्थान पाने के लिए चोटी का पसीना एड़ी तक बहाकर परिश्रम करना पड़ता है। भगवान् ने मनुष्य को जहाँ खाने के लिए एक मुँह दिया है, वहीं उत्पादन करने के लिए दो हाथ भी दिये हैं। भूमि मनुष्य के जीविकोपार्जन का मौलिक क्षेत्र और खाद्य-पदार्थ, वस्त्र तथा निवासस्थान के उत्पादन का मौलिक साधन है। इसीलिए

वायु, जल और प्रकाश की तरह भूमि पर मनुष्यों का समान अधिकार न होने से मनुष्य का जीवन दूसरे के हाथ में बंधक पड़ जाता है और मनुष्य—विशेषकर वह मनुष्य, जो भूमि पर दोनों हाथों से परिश्रम कर उत्पादन और जीविकोपार्जन करना चाहता है—अपनी साँस घुटती हुई महसूस करता है। आज यदि ऐसा होता कि वायु पर मनुष्य पूर्ण नियन्त्रण की क्षमता प्राप्त कर लेता और वायु मनुष्य की व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में परिणत हो जाती, अधिकांश वायु पर केवल थोड़े-से लोगों का अधिकार हो जाता, वायु पर जमीन्दारी और मालगुजारी-प्रथा लागू हो जाती और वायु का मूल्य प्रति बीघा दो सौ रुपये और एक बीघा वायु की मालगुजारी दस रुपये तय हो जाती तब जरा सोचिये तो कि क्या अवस्था होती ? जिसके अधिकार में वायु नहीं होती, वह प्राण बचाने के लिए वायु के जमीन्दार या मालगुजार के पास दौड़-धूप करता। वह समझता कि वायु के जमीन्दार या मालगुजार के हाथ उसके जीवन-मरण का प्रश्न है। जिस प्रकार कहानी की राक्षसी के हाथ मनुष्य के जीवन और मृत्यु की लकड़ियाँ होती हैं, उसी प्रकार जो व्यक्ति खेती करना जानता है और खेती करना चाहता है और जिसके लिए खेती के अतिरिक्त जीविका की अन्य कोई व्यवस्था करना सम्भव नहीं है, और जिसके पास 'अपनी' भूमि नहीं है—वह व्यक्ति भी अनुभव करता है कि उसका जीवन और मरण जमीन्दार या मालगुजार के हाथ में है—उसके जीवन और मृत्यु की लकड़ियाँ जमीन्दार और मालगुजार के हाथ में हैं। इसका कारण यह है कि जीवन-रक्षा के लिए वायु, जल और प्रकाश के अतिरिक्त उसे और भी जिन तीन चीजों की अनिवार्य रूप से आवश्यकता पड़ती है, अर्थात् भोजन, वस्त्र और निवास-स्थान, उनके उत्पादन का एकमात्र साधन भूमि उसके हाथ में नहीं है। इसके लिए उसे निर्भर करना पड़ता है दूसरे की इच्छा और खुशी पर। इसीलिए वह श्वासरुद्ध मनुष्य की भाँति अपने को अनुभव करता है। उसके अन्तर के अन्तरतम प्रदेश की यही अनुभूति होती है। उसके अन्तर की यही भाषा होती है। वह मूक है। अब यह क्रमश: मुखर हो रहा है। यदि शीघ्र और शान्तिपूर्वक भारत में भूमि का समान बँटवारा नहीं हुआ, तो भारत की प्रगति अवरुद्ध हो जायगी। भारत को एक कल्पनातीत दुर्दैव का सामना करना पड़ेगा।

यहाँ प्रसंगवश एक आवश्यक बात समझ रखनी होगी। जो साँस लेना

चाहता है, वह वायु पाता है। वायु पाने का मौलिक अधिकार उसे प्राप्त है। जिसे प्यास लगती है, वह पानी पाता है। जल पाने का मौलिक अधिकार उसे प्राप्त है। इसी प्रकार जिसे भूख लगी है, उसे भोजन पाने का अधिकार तो है, किन्तु यह अधिकार उसे तभी प्राप्त होगा, जब वह परिश्रम करके खाद्य-उत्पादन करने को तैयार होगा। अन्यथा भोजन पाने का नैतिक अधिकार उसे नहीं है, क्योंकि परिश्रम न करने से भूमि से अन्न नहीं पैदा हो सकता। इसी कारण भूमि पाने का अधिकार तभी किसी व्यक्ति को मिल सकता है, जब वह अपने हाथों से खेती करने को तैयार हो। अन्यथा उसे अपने इस अधिकार का दावा करने का नैतिक अधिकार नहीं है।

भूमि की यह भूख मिटेगी कैसे ? साधारणतः लोग ऐसा सोचते हैं कि भूदान-यज्ञ के आधार पर अहिंसक-समाज-रचना की बात अभी स्थगित रखी जाय। भूमि का शीघ्रातिशीघ्र पुनर्वितरण होना आवश्यक है और यह कानून के द्वारा ही सम्भव है। ऐसा सोचने का कारण यह है कि स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद इस देश के निवासी बहुत अधिक शासनाभिमुखी हो गये हैं। किन्तु, पूरी तरह विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जायगी कि देश की अभी जो अवस्था है, उसमें कानून के द्वारा भूमि-समस्या का उचित समाधान सम्भव नहीं है। कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि केवल हिंसा के द्वारा ही भूमि-समस्या का समाधान शीघ्र सम्भव हो सकता है। पूरी तरह से विचार करने पर यह भी स्पष्ट हो जायगा कि इस देश की वर्तमान अवस्था में यह भी सम्भव नहीं है। शांति और प्रेम का ही एक मार्ग ऐसा है, जिसके द्वारा इस देश की भूमि-समस्या का उचित और संतोषजनक समाधान हो सकेगा। शांति और प्रेम के मार्ग से भूमि की क्षुधा शांत करने के लिए भूदान-यज्ञ एक भारत-व्यापी प्रयत्न है। सबके हृदय में भगवान् विराजमान हैं। मनुष्य के हृदय में प्रतिष्ठित उसी भगवान् के सामने प्रेमपूर्ण आकुल निवेदन है—भूदान-यज्ञ। "भूमि पर सबका समान अधिकार है। इस अधिकार से जो लोग वंचित हैं, वे आज धूल में पड़े हैं—सर्वहारा बने हैं। वे भूख की ज्वाला में जल रहे हैं। उनके जीविकोपार्जन का और कोई साधन नहीं है। उनका यह अधिकार उन्हें वापस दो। उनकी प्राप्य भूमि उन्हें लौटा दो। भूमि का मालिक भगवान् है। भूमि सबकी माता है। सब लोग भूमि की सन्तान हैं। किन्तु तुम अपने को भूमि का मालिक मानते हो।

माता को तुमने दासी बना रखा है। आज इसी अन्याय का प्रतिकार करने का दिन आया है। भूमि पर मालकियत की समाप्ति की दीक्षा ग्रहण करो। सन्तान भूमि-माता की गोद से हटा दी गयी है। माता के उत्तप्त दीर्घ श्वास एवं वंचित संतान के उष्ण अश्रुजल ने देश के जलवायु को उत्तप्त बना दिया है। कोई शांति नहीं पा रहा है। माँ को वंचित संतान के पास लौटने दो। शांति लौट आयगी। धनी लोगों का कल्याण होगा, गरीबों का कल्याण होगा और देश का भी कल्याण होगा। मनुष्य के अन्तर में स्थित सुप्त भगवान्! तुम आज जागो, तुम प्रसन्न होओ। जाने अथवा अनजाने युग-युग से भूमिहीन दरिद्रों के साथ जो अन्याय होता आया है, आज उसका प्रतिकार होने दो। आज वंचित लोगों का भगवान् जाग गया है।"

भूदान-यज्ञ की सफलता में आशंका

इस आवेदन पर क्या लोग त्याग कर देंगे? जिस संसार में मनुष्य पाँच कट्ठा भूमि भी दूसरे को यों ही नहीं देता, पाँच कट्ठा भूमि के लिए भी जहाँ लोग मार-काट करते हैं—हाईकोर्ट और सुप्रीम कोर्ट तक लड़ते हैं, वहाँ क्या मनुष्य ऐसे आवेदन पर स्वेच्छा से त्याग करेगा? भारत में खेती-योग्य भूमि ३० करोड़ एकड़ है। इसका षष्ठांश, अर्थात पाँच करोड़ एकड़ भूमि यदि आज जिनके हाथ में है, उनके हाथ से भूमिहीन लोगों के हाथ में आ जाय, तो भूमि-समस्या का समाधान हो सकता है। इतनी बड़ी समस्या का समाधान कैसे सम्भव है?

गत १९५२ ईसवी के मई मास में २४ परगने के डायमंड हारबर के निकट-वर्ती हट्टगंज नामक ग्राम में पश्चिम बंगाल भूदान-यज्ञ सम्मेलन का आयोजन कर उस राज्य में भूदान-यज्ञ आंदोलन आरम्भ किया गया। उसके बाद ही भूदान-यज्ञ का प्रचार और भूदान-संग्रह करने के लिए लेखक ने डायमण्ड हारबर महकमे में ग्राम ग्राम का पैदल भ्रमण किया। एक दिन सन्ध्या समय एक गाँव में भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में भाषण करते समय उस इलाके के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों ने लेखक से कहा "देखिये, इस आंदोलन में पागलपन के सिवा और कुछ नहीं है। जमीन पाने के लिए कानून बनना जरूरी है—अन्यथा बलप्रयोग करके भूमि लेनी होगी। माँगने मात्र से लोग स्वेच्छा से भूमि दे देंगे, ऐसी आशा करना पागल-

पन छोडकर और क्या हो सकता है ? विनोबाजी पागल हैं और उनके पीछे आप कुछ पागल लोग जुट गये हैं। हमारे शास्त्रो ने, हमारे महाभारत ने यह शिक्षा दी है कि बिना लडाई किये कोई किसीको जमीन नही देता— शांतिपूर्वक कोई भूमि नहीं छोडता।" लेखक ने उत्तर में उन लोगों से कहा था . "किन्तु, महाभारत से मैंने इसके विपरीत शिक्षा ग्रहण की है। पाण्डवों की न्यायसगत भूमि कौरवो ने नही लौटायी। शांति के रास्ते सूई की नोक के बराबर भी भूमि नही दी। लडाई हुई। तत्कालीन भारतवर्ष के सभी राजाओ ने कौरवो अथवा पाण्डवो का पक्ष ग्रहण किया। प्राय सभी कौरव मारे गये, पाण्डवों की भी अवस्था प्राय यही हुई। कुल में दीपक जलाने लायक केवल थोडे से लोग बच रहे। इतना मर्मान्तक परिणाम निकला। इस सम्बन्ध में महाभारत यदि कोई शिक्षा देता है, तो यही कि जो भूमि जिसे मिलनी हो, उसे वह दे देनी चाहिए, अन्यथा सर्वनाश अनिवार्य और अवश्यम्भावी है।"

किन्तु, फिर भी मन से सशय दूर नही होता। ऐसा कहा जाता है कि इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण उपलब्ध नही है। जो बात कभी अतीत में नही हुई, वह अब कैसे सम्भव होगी ?——इस तरह की आपत्ति या आशका का कोई कारण नही है। इतिहास मे कौन विषय स्थान पाता है ? जो बात कभी नही हुई वह सम्भव होने पर इतिहास में स्थान प्राप्त करती है। जो बात हुई है या होती है, वह तो इतिहास नही है। फ्रासीसी विप्लव होने से पूर्व इतिहास में क्या उसकी कोई मिसाल थी ? बिना शस्त्र के लडाई करके भारत ने स्वाधीनता प्राप्त की——इससे पूर्व इतिहास में क्या ऐसी कोई घटना घटी थी ? इसलिए यह आशका निराधार है। फिर भी मन पूर्णत सशयमुक्त नही होता। भूदान-यज्ञ आदोलन की उत्पत्ति, विकास और आज तक के फल का अध्ययन करने और भूदान-यज्ञ में निहित भाव-धारा को हृदयगम करने पर यह सशय दूर होगा, ऐसी आशा है।

यह विनोबा कौन हैं ?

भूदान-यज्ञ के स्रष्टा और प्रवर्तक हैं आचार्य विनोबा भावे। कौन हैं यह विनोबा ? वे आजीवन सेवाव्रती सन्यासी हैं महात्मा गांधी के बडे अनुयायी हैं गाधी-मत्र के श्रेष्ठतम धारक और वाहक हैं। उन्हें महात्मा गाधी

का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी कहा जाता है। वही उत्तराधिकारी योग्य उत्तराधिकारी होता है, जो अपने पूर्वजो से प्राप्त सम्पत्ति में वृद्धि करता है और वही शिष्य योग्य शिष्य होता है, जो गुरु को छोडकर भी चल सकता है। इस अर्थ में विनोबा महात्मा गाधी के योग्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी और शिष्य है। वे आज के युग-पुरुष है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद भारत में रामराज्य या 'सर्वोदय' की प्रतिष्ठापना महात्मा गाधी का लक्ष्य था। किन्तु, स्वाधीनता प्राप्ति के कुछ ही दिनो बाद वे इस ससार से चले गये। उनके स्वप्न को पूरा कर सकने योग्य कोई महापुरुष उस समय दिखाई नही पडता था। अतएव देश हताशा के अन्धकार से आच्छन्न हो गया था। विनोबा बहुत दिनो से एकान्त-साधना मे लीन थे। उस एकान्तवास को त्याग कर विनोबा बाहर आये और कुछ दिनो के अन्दर ही उनकी आलोक-छटा से दिक्-दिगन्त उद्भासित हो उठा। कुछ ही दिनो के अन्दर देश के ग्राम-ग्राम, नगर-नगर में एक नवीन जाग्रति आयी। आज सारा भारत आशाभरी दृष्टि से उनकी ओर देख रहा है। इस समय सारा ससार शाति-पिपासु है। इसीलिए ससार के अन्यान्य देश भी अतीव उत्कण्ठा के साथ उनके मुख से निकली हुई शाति की वाणी सुन रहे है—ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार प्यासा प्यास बुझाने के लिए पानी ग्रहण करता है। सन् १९४० ईसवी में श्री महादेव देसाई ने विनोबा के सम्बन्ध मे लिखा था "लोग आज नही, कुछ वर्ष बाद विनोबा का प्रभाव समझ पायेंगे।" उनकी यह भविष्यवाणी सफल सिद्ध हुई है।

महाराष्ट्र के (बम्बई प्रदेश-अन्तर्गत) कोलाबा जिला के गागोदा ग्राम में सन् १८९५ के ११ सितम्बर को ब्राह्मण-कुल में विनोबा का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम नरहरि भावे एव माता का नाम रुक्मिणी देवी अथवा रखुमाई था। उनके पितामह थे शम्भुराव भावे।

विनोबा के पितामह शम्भुराव उदार, धर्म-परायण और तेजस्वी पुरुष थे। उस समय भी वे छुआछूत नही मानते थे। साम्प्रदायिकता से वे दूर थे। किसीकी निन्दा की परवाह न कर एक बार उन्होने एक मुसलमान सगीतज्ञ को पाटेश्वर मन्दिर में ले जाकर भजन सुना था। वे चान्द्रायण व्रत का पालन करते थे। यह बहुत कठिन व्रत होता है। शम्भुराव के तीन पुत्र थे—नरहरि, गोपालराव और गोविन्द। बडे पुत्र नरहरि बुद्धिमान् और महत्त्वा-

शास्त्री थे। उन्होंने कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर, बुनाई का काम सीखकर बड़ौदा में एक कारखाने में काम करना आरम्भ कर दिया था।

नरहरि के प्रथम पुत्र हैं विनोबा। विनोबा का पूरा नाम विनायक नरहरि भावे है। घर में उन्हें लोग 'विन्या' कहकर पुकारते थे। महात्मा गांधी के आश्रम में जाने पर उन्हें गांधीजी से 'विनोबा' नाम मिला। विनोबा के तीन भाई हैं—बालकृष्ण, शिवाजी और दत्तात्रेय। विनोबाजी के एक और भाई पैदा हुए थे, किन्तु बचपन में ही उनकी मृत्यु हो गयी थी। उनके एक बहन भी थी, जिनका नाम 'शान्ता' था। बचपन में ही छोटे भाई दत्तात्रेय की मृत्यु हो गयी। विवाह के कुछ वर्षों के बाद ही बहन की भी मृत्यु हो गयी। गांधीजी के साबरमती आश्रम में भरती होने के बाद विनोबा के दोनों भाई बालकृष्ण और शिवाजी ने भी अपने बड़े भाई का पदानुसरण किया और वहीं चले गये तथा उन्होंने आश्रम के कार्य में जीवनोत्सर्ग कर दिया। बालकृष्ण (बालकोबा) अभी महात्मा गांधी द्वारा संस्थापित उरुलिकांचन प्राकृतिक चिकित्सालय का कार्यभार ग्रहण किये हुए हैं। शिवाजी विख्यात भाषा-शास्त्री और संत-साहित्य के प्रगाढ़ पंडित हैं। भारत के लिपि-सशोधन के काम में वे लगे हैं।

विनोबा का बचपन पहाड़ों से घिरे हुए गागोदा ग्राम में बीता। पितामह की धर्मनिष्ठा, भक्ति भाव एवं तेजस्विता की विनोबा के सुकुमार हृदय पर गम्भीर छाप पड़ी। उनकी माता बहुत धर्मपरायणा और भक्तिमती महिला थीं। उनका हृदय विशाल और उदार था। माता ही विनोबा की सर्वश्रेष्ठ गुरु थीं। उन्होंने अपनी माता से बहुत-कुछ पाया है। माँ कोई गहना नहीं पहनती थीं। कितना भी जाड़ा हो, वे बड़े तड़के उठकर ठंडे जल से स्नान करती थीं। अपने पिता से सीखे हुए बहुत-से मराठी भजन उन्हें याद थे। भोजन बनाते समय भी वे भजन गुनगुनाती रहती थीं। भजनों में कभी-कभी वे इतनी निमग्न हो जाती थीं कि तरकारी में दो बार नमक डाला या एक बार भी नहीं, इसका भी उन्हें खयाल नहीं रहता था। पुत्र विनोबा भी तन्मय होकर माँ का भजन सुनते थे। धर्म-भाव के विकास के लिए माँ विनोबा को साधु-संतों की कहानियाँ सुनाती थीं। इसीसे विनोबा के मन में धर्म-ग्रन्थों का पारायण करने की उत्कंठा जगी। माँ के निर्देशानुसार विनोबा को भोजन

करने के पहले तुलसी के वृक्ष मे जल चढाना पडता था और इस प्रकार माँ पुत्र को यह सिखाती थी कि दूसरो को खिलाये बिना स्वय नही खाना चाहिए— यहाँ तक कि पेडो को भी खिलाये बिना नही खाना चाहिए। माँ पुत्र को साथ लेकर शिव-मन्दिर जाती और शिव-मस्तक पर किये जानेवाले जलाभिषेक को दिखाकर समझाती कि बूँद-बूँद करके जो अभिषेक हो रहा है, वही साधना का रूप है। एक बाल्टी पानी एक साथ ही उडेल देने से अभिषेक या साधना नही होती। बहुत छोटी उम्र से ही भोजन-सुख के प्रति विनोबा वीतराग थे। माँ भी उन्हें सिखाती कि किसी चीज के प्रति 'और चाहिए' की आकाक्षा रखने से सुख नही मिलता। सयम से ही असली सुख प्राप्त होता है। माँ ने एक बार आम खरीदकर खाने के लिए पुत्र को पैसे दिये, किन्तु विनोबा आम खाने की बात ही भूल गये और दूसरे दिन उन्होने पैसे माँ को लौटा दिये। उनकी माँ उदार और समदर्शी थी। उनके घर एक अन्धे सज्जन आश्रित थे। विनोबा आदि उन्हे 'अधा चाचा' कहकर पुकारते थे। उनकी माँ उन सज्जन के प्रति ऐसा व्यवहार करती थी कि उनके जीवन-काल तक विनोबा आदि यह नही समझ पाये कि वे परिवार के सदस्य न होकर बाहरी आदमी थे। 'अधे चाचा' की मृत्यु के बाद जब लोगो ने अशौच-पालन नही किया, तब उन लोगो ने माँ से पूछा और यह जान पाये कि वे सज्जन इस परिवार के सदस्य नही थे।

माँ का स्वभाव सचमुच सेविका-जैसा था। किसी पडोसी के बीमार पड जाने पर वह उसके घर जाकर भोजन आदि बना आती। एक दिन अपने घर भोजन बना चुकने के बाद एक पडोसी के यहाँ भोजन बनाने के लिए चलने लगी, तो विनोबा के मन में यह सन्देह हुआ कि माँ के मन में स्वार्थपरता तो नही है। किन्तु, माँ से पूछने पर उनकी समझ में यह बात आयी कि माँ के मन में स्वार्थ नही, वरन् परमार्थ था। उनकी समझ मे यह बात आ गयी कि अपने घर भोजन बनाने के बाद वे दूसरे के घर भोजन बनाने क्यो जा रही थी, पहले क्यो नही गयी ? बात दरअसल यह थी कि देर से भोजन बनने पर पडोसी को गरम भोजन मिलेगा, इसी खयाल से वे बाद मे वहाँ जा रही थी। घर पर सबल, स्वस्थ भिक्षुक आने पर भी वे उसे निराश नही करती थी। किन्तु, विनोबा का कहना था कि कार्य-सक्षम, सबल और स्वस्थ भिक्षुक को भिक्षा देना अन्याय करना है, आलस्य को प्रश्रय देना है। एक दिन विनोबा ने

अपनी माँ से यह बात कही, किन्तु इसका जो उत्तर माँ ने उन्हें दिया, उसका खंडन करने की शक्ति विनोबा में नहीं थी और आज तक नहीं है। उन्होंने कहा : "द्वार पर जो भिक्षा माँगने आता है, वह भिक्षुक नहीं है, वह तो साक्षात् भगवान् है। भगवान् को क्या कुपात्र समझना चाहिए ?" माँ के यही सब महान् आचरण देखकर विनोबा के तरुण मन में समभाव और भक्ति के बीज प्रस्फुटित हुए।

धर्मग्रन्थ पढ़ने के प्रभाव और माँ के सरल, सहज, परिशुद्ध जीवन के घनिष्ठतम साहचर्य ने विनोबा के तरुण मन को साधना की ओर आकृष्ट किया। शनैः शनैः विनोबा ने कठिन जीवन बिताना आरम्भ कर दिया। यह देखकर माँ ने एक दिन उनसे कहा : "विन्या, गृहस्थाश्रम-धर्म का ठीक से पालन करने पर एक पीढ़ी का उद्धार होता है, किन्तु, उत्तम ब्रह्मचर्य का पालन करने से सात पीढ़ियों का उद्धार होता है।" इस प्रकार माँ ने पुत्र का मन ब्रह्मचर्य-पालन करने की ओर आकृष्ट किया था। उस समय विनोबा की आयु केवल दस वर्ष की थी। उससे पूर्व रामदास स्वामी की 'दासबोध' नामक पुस्तक पढ़कर भी उनका मन ब्रह्मचर्य की ओर आकर्षित हुआ था। माता का आशीर्वाद पाकर दस वर्ष के बालक ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का संकल्प ले लिया।

ऐसे पितामह ! ऐसी माता ! अपने साथ वैराग्य और संन्यासप्रवृत्ति लेकर जन्म ग्रहण करनेवाले लोग ऐसे ही कुलों में जन्म लेते हैं।

सन् १९०५ में ११ वर्ष की आयु में विनोबा माँ के साथ अपने पिता के कर्मस्थल बड़ौदा चले आये और विद्यालय में पढ़ना आरम्भ किया। विनोबा कुशाग्रबुद्धि थे। उनकी स्मरणशक्ति भी असाधारण थी। उन्होंने स्वयं एक स्थान पर कहा है कि एक समय था, जब उन्हें २०-२५ हजार श्लोक कंठस्थ थे। बचपन से ही वे बड़े अध्ययनशील थे। विनोबा ने १३-१४ वर्ष की उम्र में ही बड़ौदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी की सभी पुस्तकें पढ़ डाली थीं। यह कितने आश्चर्य की बात है, क्योंकि उन दिनों बड़ौदा सेन्ट्रल लाइब्रेरी देश के सबसे अच्छे पुस्तकालयों में से एक थी। जब लाइब्रेरी में कोई पुस्तक पढ़ने को बाकी नहीं रही, तो उन्होंने अपने साथियों के सहयोग से 'विद्यार्थी मंडल' नामक एक अध्ययन-संस्था की स्थापना की। यहाँ-वहाँ से लाकर १६०० पुस्तकें एकत्र की गयीं।

मडल की प्रत्येक पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तक थी। विनोबा को घूमने का बडा शौक था। ५-७ मील घूमना उन्हें कुछ मालूम ही नहीं पडता। किसी-किसी दिन १२ बजे दिन में उन्हें टहलने का शौक पैदा होता। साथी लोग मुश्किल में पड जाते। फिर भी वे गये विना नहीं रहते। विनोबा की भाषण देने की शक्ति असाधारण थी। जब वे बोलना शुरू करते, तो धारा-प्रवाह बोलते जाते। आम रास्ते पर खडे होकर साथियों के साथ वाद-विवाद करने के क्रम में वे बोलने लगते तो भारी भीड एकत्र हो जाती।

विनोबा स्कूल में सदा प्रथम स्थान पाते। मराठी भाषा में वे बचपन से ही अद्वितीय थे। संस्कृत भाषा में भी वे असाधारण रूप से दक्ष थे, किन्तु पहले पिता के आदेश पर उन्हें संस्कृत छोडकर फारसी पढनी पडी। मैट्रिकुलेशन परीक्षा में प्रथम स्थान पाना उनके लिए कोई कठिन बात नहीं थी। किन्तु, इसके लिए उन्होंने कोई चेष्टा नहीं की, क्योंकि उनका मन दूसरी ओर लगा था। १९१४ ईसवी में मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास कर वे कॉलेज में भर्ती हुए। गणित उनका सबसे प्रिय विषय था। गणित में उनकी असाधारण दक्षता का लोहा सम्पूर्ण छात्र-समुदाय मानता था। किन्तु, साधारण शिक्षा और गतानुगति जीवन-यात्रा से उन्हें प्रेम नहीं था। स्कूल में पढने के समय भी वे कठोर जीवन बिता रहे थे। वे चटाई पर सोते और तकिये का उपयोग नहीं करते थे। कॉलेज-जीवन भी वैसा ही रहा। स्कूल में पढते समय ही उनके मन में राष्ट्रीय चेतना जगी थी। वह जमाना स्वदेशी आंदोलन और बंग-भंग का था। कॉलेज में पढते समय उनका मन बंगाल के क्रांतिकारी दल के कार्यकलापों के प्रति विशेष रूप से

इसकी ममता में बँध जाऊँ। इसीलिए भविष्य की सम्भावना समाप्त कर देना ही अच्छा है।" वे कैसे दृढ़निश्चयी थे, यह इस बात से प्रकट हो जाता है। इन्टरमीडियेट की परीक्षा देने के लिए वे बम्बई के लिए रवाना हुए। यह सन् १९१५ की बात है। उस समय उनकी आयु १९ वर्ष थी। किन्तु, बम्बई न जाकर वे काशी चले आये और रास्ते से ही घर पत्र भेजकर सूचित कर दिया कि उन्होंने घर-बार त्याग दिया है।

काशी आकर उन्होंने अच्छी तरह संस्कृत का अध्ययन आरम्भ किया और काशी की प्रख्यात म्यूर सेन्ट्रल लाइब्रेरी में वे धर्मग्रन्थों के गम्भीरतापूर्वक अध्ययन में संलग्न हुए। धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय के साथ-साथ उन्होंने आसन, प्राणायाम आदि भी आरम्भ कर दिया। दो घंटे एक छात्र को पढ़ाकर वे महीने में दो रुपये कमाते और उसीमें जीवनयापन करते। वे तीन दिन में एक दिन खाते और उनका भोजन होता—दही और शकरकंद। दो उद्देश्यों से प्रेरित होकर उन्होंने गृहत्याग किया था—एक ब्रह्म और दूसरा क्रांति। क्रांति के लिए उनका लक्ष्य था बंगाल और ब्रह्म के लिए हिमालय। काशी में उन्हें बंगाल के क्रांतिकारियों का पता चला। किन्तु, उनके साथ बातचीत करके वे संतुष्ट नहीं हुए। उसी समय वे काशी से हिमालय भी गये थे और वहाँ के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो गये थे।

सन् १९१६ ईसवी। हिन्दू विश्वविद्यालय में उद्घाटन-समारोह के उपलक्ष्य में महात्मा गांधी काशी आये थे और उस समारोह में उन्होंने एक बहुत ही प्रभावशाली भाषण किया था। अखबारों में उसे पढ़कर अन्य लोगों की ही भाँति विनोबा भी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने गांधीजी से मुलाकात की और बाद में पत्र लिखकर उस सम्बन्ध में उनसे कई बातें जाननी चाहीं। गांधीजी ने एक पत्र के उत्तर में सामने बातचीत करने के लिए विनोबा को आश्रम में आमन्त्रित किया। उस समय तक महात्मा गांधी का आश्रम साबरमती नहीं गया था। आश्रम अहमदाबाद के कोचरब मुहल्ले में था। विनोबा ने वहाँ जाकर महात्मा गांधी से भेंट की।

आश्रम की सहज सरल जीवन-यात्रा, कथनी और करनी में अभेद, देश-भक्ति एवं त्याग-तपस्या का जीवन देखकर विनोबा विशेष रूप से प्रभावित हुए। जिन दो बातों—क्रांति और आध्यात्मिकता—को लेकर उन्होंने

सन् १९१८ में बड़ौदा में इन्फ्लुएंजा की बीमारी संक्रामक रूप से फैली। इस बीमारी में विनोबा की माँ का स्वर्गवास हुआ। माँ मृत्युशय्या पर पड़ी थी। खबर पाकर विनोबा आश्रम से चलकर माँ की मृत्युशय्या के पास आ खड़े हुए। मृत्युशय्या पर पड़ी होने और बहुत दिन बाद प्रिय पुत्र से अन्तिम मिलन होने के बावजूद माँ ने कहा था : "काम-काज छोड़कर क्यों चले आये?" धन्य है ऐसी माता! माँ का स्वर्गवास हुआ। विनोबा श्मशान के ब्राह्मणों द्वारा माँ के मुख में अग्निक्रिया कराने के लिए राजी न हुए। वे माँ की शव-यात्रा में भी नहीं गये, माँ की आत्मा की शान्ति के लिए वे गीता-उपनिषद् का पाठ करते रहे।

सन् १९२१ में सेठ जमनालाल बजाज के अनुरोध पर महात्मा गांधी ने विनोबा को वर्धा में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना के लिए भेजा। पहले से ही जमनालालजी साबरमती आश्रम में आते-जाते थे। उनकी तीव्र इच्छा थी कि महात्मा गांधी वर्धा में आकर आश्रम की स्थापना करें। उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई, किन्तु विनोबा को पाकर वे धन्य हुए। विनोबा ने वहाँ आश्रम की स्थापना की। तब से वर्धा के सभी संगठनमूलक कार्य विनोबा की देखरेख में पूरे किये जाने लगे। साबरमती आश्रम में वे एक मौन साधक के रूप में थे। वर्धा में आकर वे आश्रम-संचालक बने। आश्रम का उद्देश्य था जीवन-पर्यन्त अहिंसाव्रती देशसेवकों की सृष्टि करना। इसलिए आश्रम-वासियों के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास की शिक्षा देना जरूरी था। विनोबा ने खूब सोच-विचार के बाद आश्रमवासियों के एकादश व्रत निश्चित किये और उन्हें श्लोक-रूप दिया। आश्रम की प्रातःकालीन एवं सायंकालीन प्रार्थनाओं में उन श्लोकों का पाठ होने लगा और इस प्रकार आश्रमवासियों के चरित्र-गठन का प्रयत्न चलने लगा। ये एकादश व्रत हैं सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, असंग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, अभय, सर्व धर्म समभाव, स्वदेशी और अस्पृश्यता-निवारण।

वर्धा में जमनालालजी और उनके परिवार के सभी लोगों के साथ विनोबा का अत्यन्त आन्तरिक और घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हो गया। जमना-लालजी ने उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मान लिया। विनोबा के आध्यात्मिक और नैतिक प्रभाव से जमनालालजी का जीवन उत्तरोत्तर त्यागमय होने

लगा। जमनालालजी ने पुत्र कमलनयन और पुत्री मदालसा को शिक्षा का भार विनोबा ने अपने हाथ में ले लिया। इस समय की एक घटना विनोबा के उच्च हृदय का परिचय देती है। विनोबा अपने नाम आनेवाले सभी पत्रों को पढकर रख देते थे, और जब बहुत सारे पत्र एकत्र हो जाते थे, तब एक दिन बैठकर उत्तर लिख देते थे और उन पत्रो को फाडकर फेंक देते थे। एक दिन उन्होंने एक पत्र पाया, उसे पढा और फाडकर फेंक दिया। इससे कमलनयन विस्मित हुए। उन्होंने पत्र के टुकडो को जोडकर देखा। वह महात्मा गांधी का पत्र था और उसमे लिखा था : "तुमसे बढकर उच्च आत्मा मेरी जानकारी मे नहीं है।" बापू का इतना बडा प्रशसापत्र और उसकी यह अवस्था। कमलनयन ने साश्चर्य विनोबा से पूछा "इसको आपने फाडकर फेंक क्यो दिया ?" विनोबा ने सहज भाव से उत्तर दिया : "यह मेरे काम नही आयगा, इसलिए फाडकर फेंक दिया।" कमलनयन बोले : "यह तो सग्रह करने योग्य वस्तु थी।" विनोबा ने पुन सहज भाव से उत्तर दिया "जो चीज मेरे काम नही आयगी, उसे क्यो भविष्य के लिए सँभालकर रखूँ ? यह तो बापू की महानता है कि उन्होने मुझे ऐसा समझा है। मेरे दोषो को तो उन्होने देखा नही है।" इन थोडी-सी बातो से ही विनोबा का चरित्र प्रकट हो जाता है। विनोबा कितने अन्तर्मुख है और उनकी प्रकृति आध्यात्मिकता से कितनी समृद्ध है, यह उसका एक उदाहरण है। विनोबा कितने उच्च स्तर के अपरिग्रही हैं, इसका एक दृष्टान्त यहाँ देना अप्रासगिक न होगा। पहले वे पुस्तक पर अपना नाम लिख देते थे। बाद में उनके मन में यह बात आयी कि 'पुस्तक पर अपना नाम क्यो लिखूँ ? पुस्तक तो सम्पत्ति है। पढ लेने के बाद पुस्तक को सग्रहीत रखना भी परिग्रह है। पुस्तक स्वय पढ लेने के बाद यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसे पढना चाहे, तो उसके प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।" उसी समय से उन्होंने पुस्तक पर नाम लिखने की आदत छोड दी। सन् १९१८ मे जब वे अपना सामान अपने सिर पर लेकर पदयात्रा करते थे, तब भी नयी पुस्तक लेना आवश्यक होने पर पुरानी पुस्तकें दूसरो को देकर वे अपना बोझ हल्का कर लेते थे।

सन् १९२३ में विनोबाजी ने वर्धा-आश्रम छोड नागपुर जाकर झडा-सत्याग्रह में भाग लिया और वहाँ उन्हें कुछ महीने के कारावास की सजा

मिली। जेल से बाहर आने पर सन् १९२४ के आरम्भ में, महात्मा गांधी के निर्देश पर उन्होंने केरल में वाईकोम-सत्याग्रह का नेतृत्व किया। वहाँ के सनातनी ब्राह्मण लोग मंदिरों के आसपास के मार्गों पर भी हरिजनों को नहीं चलने देते थे। कुछ समय के सत्याग्रह के बाद सरकारी पक्ष और सनातनियों ने हार स्वीकार कर ली। विनोबाजी पुन आश्रम में लौटकर मौन-साधना में लीन हो गये। विनोबा ने सन् १९३० के नमक-सत्याग्रह में भाग लिया और दुर्बल शरीर रहने पर भी उन्होंने ताड़ के पेड़ काटने का काम शुरू किया। सन् १९३२ के आन्दोलन में उन्होंने धुलिया आदि स्थानों में भाषण किये, जिसके कारण वे गिरफ्तार कर जेल में डाल दिये गये। वे धुलिया जेल में थे और सेठ जमनालाल बजाज, प्यारेलाल आदि उनके साथ थे। जेल में वे लोग एक साथ सूत कातते, गेहूँ पीसते और बैठकर विविध विषयों की चर्चा करते। जेल भी आश्रम के रूप में परिणत हो गया था। धुलिया जेल में विनोबाजी का सबसे बड़ा काम था—गीता पर प्रवचन। प्रति रविवार को एक अध्याय के हिसाब से उन्होंने गीता के १८ अध्यायों की अपूर्व व्याख्या की। वे ही प्रवचन आज 'गीता-प्रवचन' पुस्तक के रूप में सम्पूर्ण भारत में विख्यात हैं। उस समय विनोबाजी की आयु केवल ३७ वर्ष की थी। इसी आयु में आध्यात्मिक साधना में वे कितने ऊँचे उठ गये थे, इस बात का पता 'गीता-प्रवचन' का अध्ययन करने से लग जाता है। 'गीता-प्रवचन' का मूल मराठी भाषा से प्राय सभी भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और इसकी कई लाख प्रतियाँ बिक चुकी हैं। 'गीता-प्रवचन' एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमें इन्होंने गीता के आधार पर पूर्ण जीवन-दर्शन की व्याख्या की है। जो लोग इसका श्रद्धासहित अध्ययन करेंगे, उनका जीवन निश्चित रूप से सेवा और त्यागमय एवं ईश्वराभिमुखी हो जायगा। भूदान-यज्ञ आरम्भ होने के बीस वर्ष पूर्व ये प्रवचन किये गये थे। फिर भी उनका अध्ययन करने से भूदान-यज्ञ की भावधारा सहज ही हृदयगम होती है और उससे प्रेरणा मिलती है।

बाल्यकाल में, जब विनोबा गागोदा में थे, माता रुक्मिणीदेवी को गीता पढ़ने की तीव्र इच्छा हुई। गीता का मराठी पद्य या गद्य में जो भी अनुवाद उपलब्ध था, वह इतना कठिन था कि वे समझ ही नहीं पाती थीं। तब उन्होंने

सहज सरल भाव से विनोबा से गीता का पद्यानुवाद कर देने को कहा। पुत्र पर माँ का इतना अधिक विश्वास था। माँ के इस अगाध विश्वास ने ही विनोबा को असीम शक्ति प्रदान की। जो हो, माँ के जीवन-काल में विनोबा उनकी यह इच्छा पूरी न कर सके। सन् १९३२ में उन्होंने गीता के श्लोकों के अनुरूप छंद में एक अपूर्व 'समश्लोकी' मराठी अनुवाद किया। उन्होंने उसे 'गीताई' नाम दिया। मराठी भाषा में 'आई' शब्द का अर्थ 'माँ' है अर्थात 'गीताई' का अर्थ 'गीता-माँ' हुआ। गीता विनोबा के जीवन का एकमात्र पथप्रदर्शक रही। उन्होंने गीता की शिक्षा के अनुसार अपने जीवन को बनाया है। इसीलिए गीता उनके लिए मातृ-स्वरूप है। विनोबा ने अपनी 'विचार-पोथी' में लिखा है

"जब मैं गीता का अर्थ समझने लगा तब माँ नहीं रही। मुझे ऐसा लगा कि माँ मुझे गीता-माँ की गोद में सौंपकर चली गयी है। गीता-माँ, आज भी मैं तेरे ही दूध से पल रहा हूँ और भविष्य में भी तू ही मेरा आधार होकर रहेगी।" 'गीताई' को महाराष्ट्र में इतनी लोकप्रियता मिली है कि उसकी लाखों प्रतियाँ बिक गयी हैं।

धुलिया जेल में रहते समय ही विनोबाजी ने ग्राम-संघटन का काम करने का संकल्प लिया। जेल से छूटने पर वे ग्राम-ग्राम में घूम-घूमकर ग्रामवासियों को सूत-कताई, सफाई आदि की शिक्षा देते रहे। वर्धा की मगनवाडी में पहले सत्याग्रह-आश्रम स्थापित हुआ था। तदुपरान्त वह बजाजवाडी में सेठ जमनालाल बजाज के 'घास-बँगला' नामक बँगले में ले जाया गया। बँगले में आश्रम के उपयुक्त सारी व्यवस्था कर सकना सम्भव नहीं था। अतएव सन् १९३३ के प्रथमार्द्ध में वर्धा से दो मील दूर नालवाडी को ग्राम-संघटन के काम के उपयुक्त समझकर वहाँ नया आश्रम बनाकर "ग्राम-सेवा-मंडल" स्थापित किया गया और ग्राम-सेवा का काम व्यवस्थित रूप से शुरू हुआ। दो लाख की आबादीवाले वर्धा अंचल को छह भागों में विभक्त कर हर भाग की जिम्मेदारी एक-एक आश्रमवासी को सौंपी गयी। ये कार्यकर्ता दो-दो सप्ताह के अन्तर पर ग्रामों का भ्रमण कर आश्रम में लौटते थे, अपने काम का विवरण देते थे और परस्पर विचार-विमर्श करते थे। वहाँ एक दिन ठहरकर वे फिर ग्रामों को लौट जाते थे। सूत-कताई के

सम्बन्ध में विनोबा ने स्वयं ही कई प्रकार के परीक्षण किये हैं। सूत कताई में वे सिद्धहस्त हैं। उन्होंने तकली कातने की नवीन पद्धति का आविष्कार किया है। सूत-कताई को अत्यधिक प्रचलित करने के लिए उन्होंने तुनाई की नयी पद्धति निकालकर उसका परीक्षण किया और वह पद्धति सम्पूर्ण भारत में प्रचारित हो गयी। वे अपने ही हाथ से रुई का बीज निकालकर उसे धुनते। कपड़ा बुनने का भी काम वे स्वयं करते। प्रतिदिन आठ घंटे वे यह सब काम करते। सूत कातने के आर्थिक आधार की प्रतिष्ठापना के लिए उन्होंने ६ मास तक सूत कातकर उसकी आय से ही अपनी जीविका चलायी। इन सब कामों में उन्होंने इतनी दक्षता प्राप्त की है, जितनी भारत में और कोई नहीं कर सका है। सूत-कताई को मौलिक हस्तशिल्प मानकर उन्होंने इस विषय में एक मौलिक पुस्तक भी लिखी है।

भावी जीवन में सर्वोदय-ऋषि होनेवाला यह महापुरुष शुरू से ही कैसी धातु में ढला था, इसका पता उसकी तरुणाई की एक घटना से लगता है। यह १९२८ की बात है। उस समय वे वर्धा-आश्रम में थे। आम का मौसम था। एक दिन वे बाजार से छह आने में एक टोकरी छोटे देशी आम खरीद लाये। दो दिन बाद जब वे पुन बाजार गये, तो आम बेचनेवाली उसी वृद्धा को उस दिन भी आम बेचते देखा। उस दिन वृद्धा ने दो आने में ही एक टोकरी आम देने चाहे। आज मूल्य इतना कम क्यों है, यह विनोबा ने जानना चाहा। वृद्धा ने कहा "पिछले दिन आँधी में काफी आम गिरे थे, परन्तु खरीदार पर्याप्त न होने के कारण दाम इतना कम रखना पड़ा है।" विनोबा ने वृद्धा से पूछा : "एक टोकरी आम के लिए उसी दिन की भाँति इस बार भी परिश्रम करना पड़ा था या नहीं ?" वृद्धा ने कहा : "हाँ।" तब उन्होंने कहा "तब मैं कम दाम में क्यों लूं ?" कहकर उन्होंने एक टोकरी आम लेकर छह आने पैसे दे दिये।

सन् १९३६ में महात्मा गांधी ने वर्धा के निकट सेवाग्राम-आश्रम की स्थापना की। उसी समय ग्रामोद्योग-संघ की स्थापना हुई और खादी के अलावा दूसरे ग्रामोद्योगों के लिए प्रयत्न होने लगे। नालवाड़ी-आश्रम में विभिन्न शिल्पों का काम शुरू हुआ। साबरमती-आश्रम की महिला कार्यकर्त्रियों के वर्धा चले आने पर उन लोगों के लिए वहाँ एक महिलाश्रम की

भी स्थापना हुई। आश्रम का भार महात्मा गांधी ने विनोबा को सौंप दिया। विनोबा के संचालन-काल में आश्रम ने आशातीत उन्नति की। सन् १९३६ से १९४१ तक प्रत्येक वर्ष वर्धा जिले के कार्यकर्ताओं का सम्मेलन बुलाया जाता था। सम्मेलन में कई दिनों तक विभिन्न संघटन-मूलक कार्यों के विषय में विचार-विमर्श किया जाता था। विनोबाजी ने इसे 'खादी-यात्रा' नाम दे रखा था। अन्य धर्मों के प्रति समश्रद्धा का भाव रखने के लिए उन्होंने अरबी भाषा सीखी और इसी भाषा में लिखित 'कुरान-शरीफ' का गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन किया। कुरान के सम्बन्ध में उनका ज्ञान अगाध है। महात्मा गांधी द्वारा चलायी गयी बुनियादी शिक्षा या नयी तालीम की व्यवस्था और संघटन में भी उन्होंने बड़ी सहायता पहुँचायी। कुष्ठ-रोगियों की सेवा उनका बड़ा प्रिय काम है। उन्होंने अपने एक कार्यकर्ता को इसी कार्य के लिए तैयार कर उसे तीन कुष्ठ-सेवाश्रमों का काम सौंपा है।

नालवाड़ी-आश्रम में अत्यधिक परिश्रम करने के कारण सन् १९३८ में विनोबाजी का स्वास्थ्य बहुत गिर गया। इससे महात्मा गांधी ने उद्विग्न होकर उन्हें किसी स्वास्थ्यवर्द्धक स्थान में जाकर स्वास्थ्य-लाभ करने का परामर्श दिया। किन्तु विनोबाजी ने बाहर जाना पसन्द नहीं किया। नालवाड़ी से ४ मील दूर पवनार नदी के किनारे जमनालालजी का एक बँगला था। विनोबा ने वहीं आकर आश्रम स्थापित कर रहना शुरू कर दिया। वहाँ पर धाम नदी और पवनार नदी का संगम है और चूँकि बँगला धाम नदी के उस पार था, उन्होंने आश्रम का नाम रखा "परमधाम"।

गत महायुद्ध के समय सन् १९४० के वसंत में महात्मा गांधी ने इस उद्देश्य से व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया कि कोई भी व्यक्ति धन या जन से युद्ध में सहायता न पहुँचाये। उस सत्याग्रह में महात्मा गांधी ने विनोबाजी को प्रथम सत्याग्रही मनोनीत किया। सारे भारत ने इस बात को आश्चर्यपूर्वक सुना और तब से उनका नाम और सुयश सर्वत्र प्रचारित होने लगा। व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए उन्हें पहले तीन मास का कारावास-दंड मिला, किन्तु जेल से छूटने पर उन्होंने पुनः सत्याग्रह किया और उन्हें पुनः कारावास-दंड मिला। इस प्रकार इस आन्दोलन के डेढ़ वर्षों के अन्दर वे तीन बार गिरफ्तार हुए और तीन बार जेल गये।

सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय अन्य नेताओं की भांति विनोबा भी 'परमधाम'-आश्रम से गिरफ्तार कर अज्ञात स्थान में ले जाकर रखे गये और आश्रम जब्त कर लिया गया। एक वर्ष तक वे मद्रास के वेलोर जेल मे रखे गये थे। तदुपरान्त वे मध्यप्रदेश के सिवनी जेल में रखे गये। वेलोर जेल में रहते समय उन्होने तेलुगु, कन्नड, तमिल, मलयालम आदि भाषाएँ सीखी। विभिन्न भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की बात उनके मन में बचपन से ही थी। अतएव जो भी भाषा वे सरलतापूर्वक सीख सकते थे, सीख लेते थे। उन्होंने भारत की प्राय सभी प्रादेशिक भाषाएँ सीख ली हैं। इन प्रादेशिक भाषाओं में से बँगला पर उनका अच्छा अधिकार है।

नोआखाली की बीभत्स साम्प्रदायिक स्थिति को शान्त करने के लिए जब महात्मा गाधी वहाँ पद-यात्रा करने गये थे, तब विनोबाजी पवनार नदी के तीर पर स्थित 'परमधाम' आश्रम में ग्राम-सेवा की साधना में शान्ति-पूर्वक लीन थे। कितने ही व्यक्तियो ने उनसे नोआखाली जाने के लिए अनुरोध किया, किन्तु महात्मा गाधी के आदेश के कारण वे आश्रम से बाहर एक डग भी नही गये। उनका श्रृखला-बोध इतना अधिक दृढ था।

सन् १९४८ की ३० जनवरी को महात्मा गाधी इस ससार से विदा हो गये। इसके डेढ महीने बाद सेवाग्राम मे सम्पूर्ण भारत के गाधीवादी आदर्श मे विश्वास रखनेवाले कार्यकर्ताओ का एक सम्मेलन हुआ। गाधीजी के 'सर्वोदय' के स्वप्न को पूरा करने के लिए 'सर्वोदय-समाज' और 'सर्व-सेवा-सघ' की स्थापना हुई। गाधीजी के कार्यों का भारी बोझ विनोबाजी पर आ पड़ा। बहुत ही नम्रतापूर्वक उन्होने सब भार स्वीकार कर लिया और आश्रम के एकान्तवास को छोडकर बाहरी दुनिया मे आ गये।

महात्मा गाधी द्वारा इच्छित शान्ति-स्थापना का काम अब भी शेष था। शरणार्थियो की समस्या एक बडी समस्या के रूप में आकर खडी हो गयी। उन्होंने दिल्ली आकर शरणार्थियो की सेवा में अपने को लगा दिया। शिविर-शिविर में जाकर उन्होने उन्हे आत्मनिर्भरता की शिक्षा देना आरम्भ किया। शिविर शिविर में चरखा चक्की आदि की स्थापना हुई। मेव लोगो की समस्या सबसे जटिल थी। मेव कहलाते हैं दिल्ली, आगरा आदि क्षेत्रो के

मुसलमान किसान। पाकिस्तान की स्थापना होने पर वे उत्साहित हो पाकिस्तान चले गये थे, किन्तु वहाँ सुविधा न पाकर वे पुन: लौट आने को विवश हुए थे। इस बीच उनके घर-द्वार, जमीन-जायदाद आदि पर हिन्दू शरणार्थियों ने अधिकार जमा लिया था। विनोबाजी ने यह कठिन काम अपने हाथ में लिया और बहुत परिश्रम तथा प्रयत्नों के बाद वे मेव लोगों की कुछ जमीन लौटाने और कुछ बदलने की व्यवस्था करने में सफल हुए। साम्प्रदायिक शान्ति-स्थापना के लिए उन्होंने बीकानेर, अजमेर, हैदराबाद आदि स्थानों का भ्रमण किया और उनके नैतिक प्रभाव से उन स्थानों में शान्ति का वातावरण बना।

इसके बाद वे पुनः 'परमधाम' आश्रम में आकर एकान्त साधना में लीन हो गये। उत्पादन के लिए श्रम और स्वावलम्बन सर्वोदय का मूलतत्व है। स्वयं अपने जीवन में इस आदर्श की स्थापना न कर केवल जन-साधारण को इसकी शिक्षा देने के लिए आगे बढ़ना एक विडम्बना-मात्र है। यह बात सोचकर विनोबाजी और उनके आश्रम के साथी 'परमधाम' में 'कांचन-मुक्ति-योग' के व्रती बने। किन्तु, 'कांचन-मुक्ति-योग' है क्या?

कांचन-मुक्ति-योग

अर्थ और श्रम—यही दोनों शक्तियाँ संसार में विशेष रूप से क्रियाशील हैं। उत्पादक श्रम को छोड़कर लोग अर्थ पर अधिकाधिक निर्भर हैं, इसीलिए संसार में अधिक अनर्थ हो रहा है। पहले के समाज में ऐसा एक समय और अवस्था थी, जब सब लोग निर्विवाद रूप से स्वयं उत्पादन् करते थे और अपनी जरूरत की चीजें अपने श्रम से तैयार कर लेते थे। उस समय कोई भी सर्वथा निर्धन नहीं होता था, और न ही कोई बहुत अधिक धनवान् होता था। सब लोग समान सम्पत्तिवाले भले न हों, पर अधिक वैषम्य नहीं था, हो भी नहीं सकता था। किन्तु बहुत लोगों के उत्पादक श्रम से हट जाने के कारण ही धन का इतना वैषम्य पैदा हो गया है। सकटग्रस्त होने के कारण असहायावस्था का लाभ उठाकर मनुष्य अपने लाभ के लिए दूसरे व्यक्ति को नौकर रखने लगा और उसके श्रम पर आराम से जीवन बिताने लगा। इसी प्रकार उसके हाथ में भूमि और उत्पादन के अन्यान्य साधन,

जैसे, उत्पादन के यन्त्रादि जमा होने लगे। इस प्रकार विषमता की क्रमशः वृद्धि होने लगी और अधिक व्यापक तथा गम्भीर रूप उसने धारण कर लिया। धन से दूसरों का श्रम खरीदने में मनुष्य सुविधा देखने लगा। धन के द्वारा दूसरे के श्रम से अर्जित सामान की खरीद भी सुविधाजनक प्रतीत हुई। इस प्रकार अर्थ धन-वैषम्य की सृष्टि और वृद्धि का प्रधान अस्त्र बन गया। इसलिए लोग श्रम से छुटकारा पाने के लिए अर्थ-सचय में जुट गये। आज ससार मे कुछ लोगो के हाथ में, गैर उत्पादको के हाथ मे, भूमि और उत्पादन के जो दूसरे साधन केन्द्रीभूत हो गये हैं, उसका आधारभूत कारण यही है। इसी-लिए वर्तमान युग में श्रम तथा श्रमिक की प्रतिष्ठा नष्ट हो गयी है और अर्थ को गलत ढग से अत्यधिक महत्त्व मिल गया है। उत्पादक श्रम को पुन उसका अति सम्मानपूर्ण स्थान न मिलने से धनी और गरीब की विषमता दूर नही होगी और समान भाव से सब लोगो का कल्याण भी सम्भव नहीं। विनोबाजी कहते है "वर्तमान विकारग्रस्त समाज व्यवस्था में प्रत्येक वस्तु का मूल्य पैसे से आँका जाता है और इसलिए वस्तु का वास्तविक मूल्य दिखाई नही पडता। कहा जाता है कि यहाँ की जमीन का मूल्य अत्यधिक हो गया है, किन्तु जमीन की उदारता तो पूर्ववत् ही बनी हुई है। परसो बक्सर के गजेटियर मे पढा कि डेढ सौ वर्ष पूर्व वहाँ एक सेर गेहूँ एक पैसे में बिकता था, आज वही एक सेर गेहूँ दस आने में मिलता है। किन्तु, पहले एक सेर गेहूँ से जितने लोगो का पेट भरता था, आज भी उतने ही लोगो का पेट भरता है और उतनी ही पुष्टि मिलती है। आज पैसे के मायाजाल मे पडकर मरुभूमि को हमने जलाशय मान लिया है।" वे और भी कहते हैं : "जनता का हृदय शुद्ध है। जो कुछ गडबडी नजर आती है, वह सामाजिक अर्थ-व्यवस्था की बुराइयों के कारण। उत्पादन और श्रम के साथ पैसे का कोई निर्दिष्ट सम्पर्क नहीं रह गया है। पैसा सवदा अपना रूप बदलता रहता है। कभी वह एक रुपया बन जाता है, कभी दो रुपये और कभी चार रुपये। पैसा बदमाश और दुश्चरित्र है। उसीको हमने अपना कारबारी बना लिया है। बदमाश के पास ही हमने अपनी चाभी रख दी है।" इसलिए विनोबाजी ने कुछ दिन उपवास रखकर भगवान् के नाम मे सकल्प लिया कि वे अब पैसा ग्रहण नही करेंगे। अर्थ-वर्जन का सकल्प लेकर विनोबाजी और उनके साथी

परमधाम-आश्रम में शारीरिक श्रम के द्वारा अपनी जरूरत की चीजों का उत्पादन करते थे। वे आश्रम में आर्थिक सहायता स्वीकार नहीं करते थे। यदि कोई आश्रम की सहायता करना चाहता, तो केवल शारीरिक श्रम से सहायता कर सकता था। सर्वोदय के आदर्श की स्थापना के लिए इस आदर्श का अनुसरण आवश्यक है। उन्होंने इसीको 'कांचन-मुक्ति-योग' नाम दिया है। सर्वोदय-स्थापना के लिए 'कांचन-मुक्ति-योग' की साधना अपरिहार्य है।

सर्वोदय-दर्शन और सर्वोदय-समाज की स्थापना

अहिंसा के पथ पर देश का स्वाधीनता-आंदोलन चल रहा था। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद शोषणमुक्त, श्रेणीहीन अहिंसक-समाज की स्थापना की कल्पना भी महात्मा गांधी ने उसी समय कर ली थी और इसके लिए उन्होंने १८ सूत्री एक कार्यक्रम तय किया था। स्वाधीनता-आंदोलन के साथ-साथ यह काम भी देश के विभिन्न भागों में न्यूनाधिक मात्रा में चल रहा था। उक्त रचनात्मक कार्य के १८ सूत्र ये थे (१) हिन्दू-मुसलिम या साम्प्रदायिक एकता की स्थापना, (२) अस्पृश्यता-निवारण, (३) मादक-द्रव्य-निषेध, (४) खादी, (५) अन्यान्य ग्रामोद्योग, (६) ग्रामों की स्वास्थ्य-व्यवस्था, (७) नयी बुनियादी तालीम, (८) प्रौढ़-शिक्षा, (९) महिलाओं का उद्धार, (१०) स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी शिक्षा, (११) राष्ट्र भाषा-प्रचार, (१२) मातृभाषा के प्रति श्रद्धा-भाव, (१३) आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा के लिए चेष्टा, (१४) कांग्रेस-संघटन (स्वाधीनता-युद्ध के लिए राष्ट्रीय राजनीतिक संस्था, (१५) किसान-संगठन, (१६) मजदूर-संगठन, (१७) छात्र-संगठन और (१८) कुष्ठरोगी-सेवा और कुष्ठरोग-प्रतिकार। अवस्था और प्रयोजन के अनुसार इस तालिका में वृद्धि की जा सकती है।

रस्किन के अंग्रेजी ग्रंथ 'अनटु दिस लास्ट' का जो अनुवाद महात्मा गांधी ने किया था, उसे उन्होंने 'सर्वोदय' नाम दिया था। उस अनुवाद की भूमिका में उन्होंने लिखा है - "आधुनिक संस्कृति और उस पर आवृत समाज-व्यवस्था का सिद्धान्त यही है कि यथासम्भव अधिक संख्या में लोगों के लिए अधिकाधिक परिमाण में सुख-सुविधाओं की व्यवस्था की जाय। इस प्रधान सिद्धान्त से सहज ही यह उप-सिद्धान्त निकलता है कि यथासम्भव अधिक लोगों के लिए

अधिकाधिक सुख की व्यवस्था करने पर जो थोड़े लोग बच रहेंगे, उन्हें यदि दुःख-कष्ट भी हो, तो कोई क्षति नहीं। दस में से नौ आदमियों के सुख की व्यवस्था करने पर यदि एक व्यक्ति बच जाय, तो उसके बारे में चिन्ता करने की जरूरत नहीं। सिर्फ यही नहीं, बल्कि उसका अनिष्ट या नाश करने की भी जरूरत हो, तो वैसा कर देना चाहिए। ऐसे सिद्धान्त के आधार पर गठित समाज-व्यवस्था में विरोध, झगड़ा और अंत में ध्वंस अपरिहार्य हो, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। इसका कारण यह है कि इस समाज-व्यवस्था में जो बलवान् होता है, वह यही सोचता है कि दुर्बलों का नाश हो और उनके नाश के लिए वह प्रयत्नशील भी रहता है। किन्तु दुर्बल यह नहीं चाहता कि बलवान् की स्वार्थसिद्धि के लिए उसका नाश हो। दुर्बल होने से क्या? इस पृथ्वी पर ऐसा कोई नहीं है, जो यह चाहता है कि उसकी मृत्यु हो, अथवा वह न रहे। हर आदमी यही चाहता है कि वह जीवित रहे। इसका कारण यह है कि इस 'रहने' में या 'अस्तित्व' में मनुष्य एक प्रकार के आनन्द या सुख का अनुभव करता है। अतएव संघर्ष और सर्वनाश के प्रतिकार के लिए गठित समाज में हर कोई शान्ति और संतोष प्राप्त करेगा। ऐसे समाज की रचना के लिए यह स्पष्ट है कि '*यथासम्भव अधिक लोगों के लिए अधिकतम सुख-सुविधा*' वाली नीति को छोड़कर 'हर किसीके हर प्रकार के कल्याण' वाले सिद्धान्त के आधार पर सामाजिक जीवन को तैयार करना पड़ेगा। 'सबकी हित-सिद्धि' जीवन का तत्त्वज्ञान होना चाहिए।" यही तत्त्वज्ञान अहिंसक समाज-रचना के मूल में है। इसीलिए महात्मा गांधी की कल्पना की अहिंसक समाज-रचना का नाम पड़ा है 'सर्वोदय'। भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों ने समाज-व्यवस्था के इसी आदर्श का प्रचार किया है और इस तथ्य को एक श्लोक में प्रकट किया है : "सर्वे भवन्तु सुखिन" (सब लोग सुखी हों)।

रस्किन के उपर्युक्त 'अन्टु दिस लास्ट' ग्रन्थ का आधार है बाइबिल में वर्णित (St. Mathews ch 20) "Unto this Last" नामक नीतिमूलक कहानी (**Parable**)। यह कहानी इस प्रकार है : एक व्यक्ति ने किसी मजदूर को अपने अंगूर के बगीचे में एक पेनी मजदूरी तय कर काम करने के लिए भेज दिया। उस समय वहाँ एक मजदूर की दैनिक मजदूरी थी एक पेनी। दोपहर के समय इस व्यक्ति ने मजदूरों के अड्डे पर जाकर देखा

कि कुछ लोग वहाँ बेकार हैं। उसने उन लोगों को भी अपने बगीचे में काम करने के लिए भेजा और आश्वासन दिया कि उन्हें पूरी मजदूरी मिलेगी। सन्ध्या समय वह व्यक्ति फिर अड्डे पर गया और उसने देखा कि अब भी कुछ लोग बेकार बैठे हैं। उसने उन बेकार मजदूरों से पूछा : "तुम लोग यहाँ बेकार क्यों बैठे हो?" मजदूरों ने जवाब दिया : "हमें कहीं काम नहीं मिलता।" उसने कहा : "तुम लोग भी मेरे अंगूर के बगीचे में काम करने चलो। पूरी मजदूरी मिलेगी।" जब रात हुई, तब बगीचे के मालिक ने अपने सहकारी से कहा : "सब मजदूरों को बुलाकर पूरी-पूरी मजदूरी दे दो और सबसे अंत में जो मजदूर आये हैं, उन्हींसे पहले देना शुरू करो।" सबसे अंत में जो लोग आये थे, उन्हें जब एक-एक पेनी मिली, तब जो लोग पहले आये थे, उन्होंने सोचा कि उन्हें अधिक मजदूरी मिलेगी। किन्तु जब उन्हें भी एक-एक पेनी ही मिली, तो उन लोगों ने शिकायत करना शुरू किया। अंत में मालिक से उन लोगों ने कहा : "जो लोग सबसे अंत में आये हैं, उन लोगों ने केवल एक घंटा परिश्रम किया है और हम लोगों ने सारा दिन धूप में तपकर मेहनत की है। फिर भी हमें उन लोगों के ही बराबर मजदूरी मिली।"

खेत के मालिक ने उत्तर दिया : "मैंने तुम लोगों के प्रति कोई अन्याय नहीं किया है। तुम लोगों को एक पेनी देने का ही वादा था। तुम लोगों ने वादे के अनुसार एक-एक पेनी पायी है। अब तुम लोग घर जा सकते हो। जो तुम लोगों को दिया है, वही उन लोगों को भी दूँगा, जो सबसे अन्त में आये है।" ("Friend, I do thee no wrong. Dist not thou agree with me for a penny? Take that thine is. And go thy way. I will give unto this last even as unto thee.") इसमें मूलभूत नीति यह है कि 'प्रत्येक व्यक्ति से उसकी सामर्थ्यभर ग्रहण करो और उसकी जरूरत के अनुसार दो' (From each according to his capacity and to each according to his need.)। यही है आर्थिक और सामाजिक समानता की नीति। अतएव इस नीति के आधार पर रचित रस्किन के अमूल्य "अनटु दिस लास्ट" ग्रन्थ को पढ़कर महात्मा गांधी ने सर्वप्रथम सर्वोदय की प्रेरणा पायी और इसने उनकी जीवन-पद्धति में विप्लवी परिवर्तन ला दिये।

महात्मा गांधी के स्वर्गवास के बाद सन् १९४८ के मार्च महीने में विनोबाजी की प्रेरणा से सम्पूर्ण भारत के रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सेवाग्राम में सम्मेलन हुआ और सर्वोदय का कार्य सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए 'सर्वोदय-समाज' की स्थापना हुई। प्रत्येक वर्ष एक-एक राज्य में सर्वोदय-समाज का वार्षिक सम्मेलन हुआ। अप्रैल १९५१ के मध्य में हैदराबाद के निकटवर्ती शिवरामपल्ली गाँव में तृतीय वार्षिक 'सर्वोदय-सम्मेलन' सम्पन्न आ।

विनोबाजी की तेलंगाना-यात्रा

उस समय हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत तेलगाना नामक स्थान में भूमि-समस्या को लेकर हिंसात्मक आंदोलन चल रहा था। कम्युनिस्टों के रा अनेक भू-स्वामी मारे गये थे। भू-स्वामियों से छीनकर पर्याप्त भूमि कृषकों के बीच बाँट दी गयी थी। दूसरी ओर, उन लोगों को अधिकांशतः क्षतिग्रस्त करके फिर जमीन छीनी जा रही थी। सरकार सशस्त्र उपायों से इस संघर्ष का दमन करने की चेष्टा कर रही थी। दोनों ही पक्ष मार-काट के शिकार हो रहे थे। वहाँ भय, आतंक, हत्या और अग्निकाण्ड का जोर था। दोनों ही पक्षों के द्वारा सर्वसाधारण लोग पीड़ा, लांछना और अत्याचार के शिकार हो रहे थे। दिन में सशस्त्र पुलिस का अत्याचार—कम्युनिस्ट या कम्युनिस्टों के सहायक होने के सन्देह में पुलिस के हाथों लांछना और रात में जमींदार–मालगुजार–समर्थक अथवा पुलिस के सहायक होने के सन्देह में कम्युनिस्टों का अत्याचार। दोनों पक्षों के अत्याचार से लोग पागल जैसे हो गये थे।

विनोबाजी अस्वस्थ थे, इसलिए शिवरामपल्ली सर्वोदय-सम्मेलन में जाने की उनकी उतनी इच्छा नहीं थी। उसके पहले उड़ीसा के अंगुल नामक स्थान में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ था। वहाँ भी वे नहीं गये थे। श्री शंकरराव देव ने उनसे कहा: "यदि आप शिवरामपल्ली-सम्मेलन में नहीं जायेंगे, तो सब लोगों के वहाँ जाकर समय नष्ट करने का कोई अर्थ नहीं होता।" अस्वस्थ रहने पर भी विनोबाजी शिवरामपल्ली जाने को राजी हो गये और पैदल ही जाने का उन्होंने निश्चय किया। ८ मार्च को प्रस्थान कर ३०० मील पैदल चलकर वे वहाँ पहुँचे। शिवरामपल्ली सर्वोदय-सम्मेलन में भाग लेनेवाले सर्वोदय-कार्यकर्ताओं के मन पर तेलंगाना की घटनाओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। अहिंसा में विश्वास

करनेवाले कार्यकर्ताओं के लिए तेलगाना एक चुनौती के रूप मे था। शाति और प्रेम के मार्ग से देश की भूमि-समस्या तथा आर्थिक समस्या का समाधान न कर पाकर केवल मुख से अहिंसा की बातें करना कोई अर्थ नही रखता।

महात्मा गाधी की मृत्यु के बाद विनोबाजी आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा के प्रयोगार्थ अन्वेषण कर रहे थे। एक शाति-सैनिक के रूप में उन्होंने तेलगाना का भ्रमण करने का निश्चय किया। उन्होंने कहा "मै सर्वोदय-समाज का सेवक हूँ। मेरे लिए 'सर्वोदय' शब्द भगवान् के नाम के समान है। सर्वोदय का अर्थ सब लोग समझते हैं। अतएव कम्युनिस्ट भी इसके अपवाद नहीं हैं।" इसीलिए पहले ही उन्होने हैदराबाद जेल मे जाकर कम्युनिस्ट बदियो से मुलाकात की और दो-तीन घटे तक उनसे बातचीत की। उन्होंने कहा "कम्युनिस्ट भाइयो की विचारधारा क्या है, यही जानने और समझने के लिए मैंने जेल में उन लोगो से भेंट की।" इसके बाद १६ अप्रैल को उन्होने अपने कुछ साथियो सहित तेलगाना-भ्रमण के लिए पैदल ही प्रस्थान किया। तेलगाना-भ्रमण के निश्चय की क्या पृष्ठभूमि थी और उन्होने पैदल-भ्रमण क्यो किया, इस सम्बन्ध में उन्होंने का गल (हैदराबाद) नामक स्थान मे २५ मई, १९५१ को अपने प्रार्थना-प्रवचन में प्रकाश डालते हुए कहा "गाधीजी के स्वर्गवास के बाद सोचता था कि अब मुझे क्या करना चाहिए ? मैं विस्थापितो की सेवा मे लग गया। किन्तु, यहाँ के (तेलगाना के) कम्युनिस्टों के बारे में मैं बराबर चिन्तित रहा। यहाँ की हत्या आदि की सभी घटनाओ के समाचार मुझे मिलते थे। फिर भी मेरे मन में निरुत्साह का कोई भाव नही आया क्योंकि मानव-जीवन की विकास-धारा के सम्बन्ध में मुझे कुछ ज्ञान है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि जब-जब मानव-जीवन नवीन संस्कृति ग्रहण करता है, तब-तब कुछ सघर्ष होता है, रक्त की धारा भी बहती है। इसलिए निरुत्साहित न होकर शात मन से चिन्तन करना होगा और शान्तिपूर्ण मार्ग की खोज करनी होगी।

"यहाँ शान्ति-स्थापना के लिए सरकार ने पुलिस भेजी है। किन्तु, पुलिस विचार नहीं करती। पुलिस के पास शस्त्र होता है और वही उसका एकमात्र साधन होता है। अतएव पुलिस को जगल में बाघ का उपद्रव शात करने के लिए भेजा जाना चाहिए। पुलिस को बाघ का शिकार करके बाघ से लोगो की

रक्षा करनी चाहिए। किंतु, कम्युनिस्टों का उपद्रव बाघ का उपद्रव नहीं है। वह मनुष्यों का उपद्रव है। उन लोगों की कार्यपद्धति कितनी भी गलत क्यों न हो, उन लोगों के जीवन में कोई-न-कोई विचार-धारा है। इस मामले को केवल पुलिस भेजकर हल नहीं किया जा सकता। सरकार इस बात से अनभिज्ञ नहीं है। यह जानते हुए भी अपना कर्तव्य समझकर सरकार ने पुलिस भेजी है। इसके लिए मैं सरकार को दोष नहीं देता।

"मैं वर्तमान समस्या के बारे में इसी प्रकार सोचता था। इससे मेरे मन में यह बात आयी कि मैं इस क्षेत्र में भ्रमण करूँ। किन्तु, यदि भ्रमण करना है, तो कैसे भ्रमण करूँ? मोटर आदि सवारियाँ विचारशोधक नहीं, बल्कि समय-शोधक हैं—वे केवल दूरी कम कर सकती हैं। जहाँ चिन्ता-धारा का शोधन करना हो, वहाँ शांतिपूर्ण उपायों का अवलम्बन आवश्यक है। प्राचीन काल में तो ऊँट घोड़े आदि थे। लोग उनका व्यवहार करते थे और रातभर में दो सौ मील तक की यात्रा कर लेते थे। शंकराचार्य, महावीर, बुद्ध, कबीर, नामदेव आदि ने भारत-भ्रमण किया था और पैदल ही भ्रमण किया था। उन लोगों ने तीव्रगामी सवारियों की सहायता नहीं ली, क्योंकि विचार-धारा में संशोधन करना उनका उद्देश्य था और विचार-धारा में परिवर्तन लाने के लिए उत्तम उपाय है—पैदल यात्रा करना। आजकल पैदल घूमना पसन्द नहीं किया जाता, किन्तु यदि शांतिपूर्वक विचार किया जाय, तो यह बात समझ में आती है कि पैदल भ्रमण करने के सिवा और कोई चारा ही नहीं है।"

भूदान-यज्ञ का जन्म

दो दिन बाद १८ अप्रैल को विनोबाजी नलगुंडा जिले के पोचमपल्ली ग्राम में पहुँचे। वहीं से दण्डकारण्य आरम्भ होता है। ग्रामवासियों ने बड़े समारोह से आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। नलगुंडा और वारंगल जिले कम्युनिस्ट उपद्रवों के लिए बदनाम थे और पोचमपल्ली ग्राम कम्युनिस्टों का केन्द्र माना जाता था। उस क्षेत्र में दो वर्षों के अन्दर २० व्यक्तियों की हत्या की गयी थी। उस ग्राम में १०-१२ कम्युनिस्ट रहते थे। गाँव में लगभग ३ हजार की आबादी थी और खेती के काम की जमीन ढाई हजार एकड़ थी। फिर भी तीन हजार लोगों में से दो हजार भूमिहीन थे। वहाँ पहुँचने के दो घंटे बाद

विनोबाजी गाँव की प्रदक्षिणा के लिए निकले। वे हरिजनों की बस्ती देखने गये। हरिजन अत्यन्त गरीब थे। उनके पास जमीन तो नहीं ही थी, उन्हें पूरा काम और भरपेट भोजन भी नहीं मिलता था। भूमिवालों की जमीन पर मजदूर काम करते थे और मजदूरी के रूप में उन लोगों को पैदा हुई फसल का बीसवाँ भाग, कम्बल और एक जोड़ा जूता मिलता था। विनोबा को देखकर उन लोगों ने समझा कि सम्भवतः महात्मा गांधी की तरह कोई महापुरुष आये हैं। उन लोगों ने सोचा कि उन्हें अपने अभावों की बात बताने से कोई व्यवस्था हो सकती है और यही सोचकर उन्होंने विनोबाजी से जमीन माँगी। विनोबाजी ने उनसे पूछा कि उन्हें कितनी जमीन चाहिए। उन लोगों ने बताया कि ४० एकड़ नीची जमीन और ४० एकड़ ऊँची जमीन, कुल ८० एकड़ जमीन मिलने से उन लोगों का काम चल जायगा। विनोबाजी ने उनसे जानना चाहा कि जमीन मिलने पर वे साथ मिलकर खेती करेंगे या अलग-अलग? अपने बीच कुछ विचार-विमर्श करने के बाद उनके मुखिया ने कहा कि वे लोग मिलकर खेती करेंगे। विनोबाजी ने उन लोगों को उसी भाव का एक आवेदनपत्र देने को कहा। उन्होंने सोचा था कि वे सरकार से उन्हें जमीन दिला देने की चेष्टा करेंगे। इसी बीच गाँव के और लोग वहाँ आ गये। विनोबाजी ने उन लोगों से पूछा कि यदि सरकार से जमीन न मिले या मिलने में देर हो, तो क्या गाँव के कोई सज्जन गरीबों के लिए कुछ जमीन देंगे? ग्रामीणों में से एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने कहा कि वे अपनी और अपने भाइयों की ओर से ५० एकड़ ऊँची और ५० एकड़ नीची भूमि, कुल १०० एकड़ भूमि गरीब भाइयों के लिए देना चाहते हैं। उस दिन संध्या समय प्रार्थना-सभा में विनोबाजी ने इस दान की घोषणा की। उन्होंने जमीन पायी और उन भूमिहीन हरिजनों को दे दी। उन लोगों के चेहरे पर हर्ष फूट पड़ा।

किन्तु, विनोबाजी ने सोचा : "यह क्या हुआ! जहाँ मनुष्य ३ कट्ठा जमीन के लिए लड़ाई-झगड़ा करता है, वहाँ माँगने से ही १०० एकड़ जमीन कैसे मिल गयी! कितनी जमीन चाहिए यह भी तो उन्होंने नहीं कहा था। जरूरत थी ८० एकड़ जमीन की और मिली १०० एकड़ जमीन। तब क्या आज भगवान् ने श्री रामचन्द्र रेड्डी के माध्यम से भारत की भूमि-समस्या के समाधान के लिए संकेत दिया है? तब क्या महात्मा गांधी की आत्मा ने श्री रामचन्द्र रेड्डी

में प्रविष्ट होकर भूमि-समस्या के शान्तिमय ढंग से समाधान के लिए निर्देश दिया है ?" इस प्रकार याचना के द्वारा भूमि-संग्रह करके भूमि-समस्या के समाधान की बात उनके मन में आयी। इस प्रकार भूदान-यज्ञ की गंगोत्री फूट पड़ी। उन्होंने उसे 'भूदान-यज्ञ' नाम दिया। उन्होंने भूदान-यज्ञ का संदेश लेकर हिंसा-विध्वस्त, रक्तस्नात तेलंगाना के द्वार-द्वार घूमने का संकल्प लिया। किन्तु, क्षणभर के लिए उनके मन में शंका उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में कहा था : "जिस दिन मुझे पहला दान मिला, उस रात मैं सोचने लगा—क्या इस तरह भूमि माँग-माँगकर मैं सभी भूमिहीनों की समस्या का समाधान कर सकूँगा ? मुझे साहस नहीं मिल रहा था, क्योंकि इतिहास में इस तरह का कोई उदाहरण उपलब्ध नहीं था। किन्तु, भीतर से शक्ति मिली। अंदर से आवाज आयी : 'डरो मत। भूमि माँगते चलो।' *तब मेरे मन में यह बात आयी कि जब 'वे' मुझे भूमि माँगने की प्रेरणा दे रहे हैं, तब 'वे' अवश्य ही दूसरों को भूमि-दान करने की भी प्रेरणा देंगे, क्योंकि वे कभी अधूरा काम नहीं कर सकते।"* विनोबाजी ने गत ८ अगस्त, १९५५ को आन्ध्र के श्रीकाकुलम् जिले के पार्वतीपुरम् ग्राम में प्रार्थना-प्रवचन में कहा : "जिस दिन मैंने प्रथम दान (१०० एकड़) पाया, उसी दिन रात में सोचने लगा कि इस घटना का कोई अर्थ है क्या ? मेरे मन में आया कि संसार में मनुष्य केवल अपने विचार से ही काम नहीं कर सकता। संसार में उसके लिए विचार पहले से ही तैयार रहते हैं। आज संसार में वातावरण तैयार हो गया है। मैं तो निमित्त-मात्र हूँ ? मैंने और भी सोचा : यह काम पूरा करने की शक्ति मुझमें है क्या ? तब अन्तर से आवाज आयी : मैं शक्तिरहित हूँ ! किन्तु, शक्ति-रहित होने पर भी मैं विश्वास-शून्य नहीं हूँ। इसलिए यदि मैं अभिमान शून्य हो जाऊँ, तो रामावतार के समय जिन्होंने बन्दरों से काम कराया, वे मेरे द्वारा भी काम करा लेंगे। दूसरे दिन मैंने दूसरे गाँव में जाकर कहा : 'यदि आपके चार पुत्र हैं, तो मैं आपका पाँचवाँ पुत्र हूँ। मुझे पंचमांश दीजिये।' कोई इस प्रकार भी माँग सकता है, इसके लिए वहाँ के लोग तैयार नहीं थे। हिरोशिमा में अणु बम गिरने का जो फल हुआ था, वैसा ही फल मेरी बात का भी उन पर हुआ। मुझे २५ एकड़ जमीन मिल गयी और इस प्रकार भूदान-यज्ञ का आरम्भ हुआ।" इसी प्रकार अत्यन्त विनय एवं भक्तिपूर्वक वे भूदान

मांगते-मांगते आगे बढ़े। जून महीने के मध्य तक, अर्थात् दो महीने तक वे तेलगाना में इसी प्रकार द्वार-द्वार घूमे। इन दो महीनो के अन्दर उन्हें दरिद्रनारायणों के लिए १२ हजार एकड भूमि दान में मिली। फिर वर्षा ऋतु आ गयी। चातुर्मास्य पालनार्थ एव 'काञ्चन-मुक्ति' साधना के लिए वे अपने परमधाम आश्रम में लौट गये।

अनेक लोगो की आँखें खुली। भारत की आर्थिक स्वतन्त्रता का द्वार खुल गया है। भारत की भूमि-समस्या के शान्तिमय समाधान का मार्ग मिल गया है। किन्तु, फिर भी कुछ लोगो के मन में यह सन्देह रहा कि तेलगाना मे जमीन्दारो और मालगुजारो ने इसलिए कुछ-कुछ भूमि दान में दी कि वे कम्युनिस्टों के अत्याचारो से उत्पीडित थे। साधारण अवस्था में इस प्रकार भूमि का मिलना सम्भव नही है। विनोबाजी ने सोचा: भूमि तो केवल जमीन्दारो और मालगुजारों ने नही दी। बहुत-सी जमीन तो साधारण किसानो से मिली है। तब यह सन्देह क्यो होता है? आशका करनेवालो की बातो का यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रेम-मार्ग के द्वारा काम पूरा करने के लिए यह जरूरी है कि पहले हिंसा का प्रयोग किया जाय। किन्तु, यह तो अहिंसा का मार्ग नही है। उन्होंने निश्चय किया कि जहाँ तेलगाना की स्थिति नही है, अर्थात् जहाँ हिंसात्मक आंदोलन नही चलते रहे हैं, वहाँ भूदान-यज्ञ की परीक्षा की जानी चाहिए।

भूदान-यज्ञ का क्रमिक विकास

भगवान् ने यह सुयोग उन्हें प्रदान किया। अहिंसक-समाज की स्थापना-सम्बन्धी अपने विचार राष्ट्रीय आयोजना आयोग के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए श्री जवाहरलाल नेहरू ने उनसे दिल्ली जाने का अनुरोध किया। विनोबाजी जाने को सहमत हुए, किन्तु पैदल ही जाने का निश्चय किया। अपनी जन्म-तिथि के दूसरे दिन १२ सितम्बर, १९५१ को उन्होंने मध्यप्रदेश होकर दिल्ली के लिए प्रस्थान किया और वे भूदान-यज्ञ का प्रचार करते-करते और भूमि-दान मांगते हुए चले। दो महीनें में ५५० मील का मार्ग तय करके वे दिल्ली पहुँचे। इन दो महीनो में उन्होंने १८ हजार एकड भूमि प्राप्त की। जिस राह वे गये थे, उधर किसी प्रकार का हिंसात्मक आंदोलन कभी नहीं चला था। उस *अञ्चल में उस समय कोई हिंसात्मक दल भी सक्रिय नहीं था। तेलंगाना में उन्हें*

दो महीने में १२ हजार एकड़ जमीन मिली थी, इस शांतिपूर्ण क्षेत्र में उन्हें दो महीने में १८ हजार एकड़ मिली। आशंका करनेवालों की शंका दूर हो गयी।

दिल्ली का काम समाप्त हो जाने पर उत्तरप्रदेश के सर्वोदय-प्रेमी कार्यकर्ताओं ने विनोबाजी से अनुरोध किया कि वे उत्तरप्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में भूदान-यज्ञ की परीक्षा करें। विनोबाजी अपने आश्रम न लौटकर पैदल ही उत्तरप्रदेश के लिए रवाना हुए और उत्तरप्रदेश का भ्रमण करने लगे। इन दिनों वहाँ आम चुनाव की हलचल थी। अधिकांश कार्यकर्ता तीन महीने तक चुनाव के काम में व्यस्त रहे। फिर भी उन्हें जन-साधारण का सहयोग मिलता रहा और ६ महीने में उन्हें एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त हुई। अगले साल १९५२ में अप्रैल के तीसरे सप्ताह में सर्वोदय-सम्मेलन बनारस के निकट सेवापुरी-आश्रम में किया गया। विनोबा उस समय तक ६ महीने की अवधि में एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त कर चुके थे। सेवापुरी सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि भूदान-यज्ञ आंदोलन सारे देश में चलाया जाय और दो वर्षों के अंदर सारे देश में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त की जाय। भारत में ५ लाख गाँव हैं। प्रत्येक गाँव में एक भूमिहीन किसान परिवार को ५ एकड़ जमीन देने के लिए और उसे 'सर्वोदय-परिवार' की संज्ञा देने के लिए भी २५ लाख एकड़ जमीन अनिवार्यतः चाहिए। इसी आधार पर २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का संकल्प लिया गया। विनोबाजी के निर्देशानुसार सर्व-सेवा-संघ ने प्रत्येक राज्य में राज्य भूदान-यज्ञ समिति बनायी। सारे भारत में भूदान-यज्ञ आंदोलन शुरू हुआ। विनोबाजी को तेलगाना में औसतन प्रतिदिन दो सौ एकड़ दिल्ली के रास्ते में प्रतिदिन तीन सौ एकड़ सेवापुरी-सम्मेलन तक ६ महीनों में प्रतिदिन पाँच सौ एकड़ और सेवापुरी-सम्मेलन के बाद प्रतिदिन एक हजार एकड़ भूमि मिली। सब श्रेणी के लोगों ने उन्हें भूमि दान दी। हिंदुओं ने भी भूमि दी, मुसलमानों ने भी और अन्यधर्मावलम्बियों ने भी। स्त्रियों ने भी अत्यधिक श्रद्धा और भक्ति के साथ दान किया है। बड़े-बड़े जमीन्दारों और मालगुजारों ने भी भूदान दिया है और छोटे-छोटे किसानों ने भी। ऐसे-ऐसे गरीब किसानों ने भूदान-यज्ञ में अपनी आहुतियाँ दी हैं कि वे शर्तें विनोबाजी की मधुर स्मृतियाँ बनकर रह गयी हैं। इसका उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा है : "इस यज्ञ में कुछ शबरियों ने अपने बेर दान किये हैं और कुछ सुदामाओं ने अपने चावल।

ये मेरे लिए चिरस्मरणीय भक्तिगाथाएँ बन गयी हैं।" कांग्रेस, समाजवादी दल, कृषक-मजदूर प्रजा पार्टी (वर्तमान प्रजा-समाजवादी दल), भारतीय जन-संघ आदि राजनीतिक दलों ने भूदान-यज्ञ-आंदोलन का समर्थन किया है।

बरसात के दिनों में विनोबा काशी विद्यापीठ में ठहरे। १२ सितम्बर, १९५२ को उन्होंने पुन: भ्रमण आरम्भ किया और दो दिन उत्तरप्रदेश का भ्रमण करने के बाद १४ सितम्बर को प्रात:काल बिहार में प्रविष्ट हुए। उस समय तक उत्तरप्रदेश में उन्हें तीन लाख एकड़ भूमि मिल चुकी थी। बिहार में भी आशा के अनुरूप ही भूमि मिलने लगी। दो वर्षों के अन्दर अर्थात् सन् १९५४ के मार्च महीने तक सारे भारत में जो २५ लाख एकड़ भूमि एकत्र करने का संकल्प लिया गया था, उसमें से ४ लाख एकड़ भूमि बिहार के हिस्से में थी। निश्चय हुआ था कि बिहार का ६ महीने तक भ्रमण करने के उपरान्त विनोबा सन् १९५३ के ७ मार्च को दिनाजपुर जिले के रायगंज नामक स्थान के पास पश्चिम बंगाल में प्रवेश करेंगे और ७० दिन के भ्रमण के बाद बाँकुड़ा जिला होते हुए बंगाल छोड़ देंगे और १६ मई, १९५३ को बिहार के मानभूम जिले में प्रवेश करेंगे। वे फिर एक महीने बिहार का भ्रमण करेंगे और तदुपरान्त उड़ीसा का भ्रमण आरम्भ करेंगे। किन्तु, बिहार में भ्रमण करते-करते उन्होंने अपने सारे कार्यक्रम में परिवर्तन कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि बिहार की भूमि-समस्या का समाधान हुए बिना वे बिहार नहीं छोड़ेंगे। उन्होंने बिहार की कृषि-योग्य भूमि का षष्ठांश ३२ लाख एकड़ भूमि बिहारवासियों से माँगी। विनोबाजी के इस निश्चय के पीछे क्या तथ्य था, यह समझना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है : "भूमि-समस्या का समाधान होने से चिन्तनधारा में क्रान्ति आयगी। इसीलिए मैं सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर रहा हूँ और अन्य कुछ लोग भी कर रहे हैं। किन्तु, मैंने अनुभव किया है कि एक राज्य में व्यापक रूप से उसका प्रयोग करके यह देखना आवश्यक है कि किस प्रकार समस्या का समाधान होता है। इसीलिए मैं बिहार से ३२ लाख एकड़ भूमि माँग रहा हूँ।" इसके उपरान्त राज्य के किसी एक जिले में काफी संघटित रूप से काम करने का निश्चय किया गया। भगवान् बुद्ध की विचरण भूमि समझकर गया जिले को इस कार्य के लिए चुना गया। गया को इस कार्य के लिए चुनने का एक कारण यह भी था कि जितने प्रकार की भूमि बिहार में

है, वह सब गया जिले में उपलब्ध है। समतल, ऊँची-नीची, जंगली, पर्वतीय, बालू-भरी और पथरीली, सब तरह की भूमि इस जिले में है। यहाँ बहुत कीमती जमीन भी है और बहुत सस्ती भी। इस प्रकार भूमि के मामले में गया जिला बिहार का प्रतिनिधित्व करता है। भारत के विभिन्न स्थानों से आकर कार्यकर्ता यहाँ एकत्र हुए और काम में लगे।

सन् १९५२ के दिसम्बर महीने में विनोबाजी अस्वस्थ हो गये। उस समय वे मानभूम जिले का भ्रमण कर रहे थे। अस्वस्थता के कारण उन्हें मानभूम जिले के चांडील ग्राम में प्रायः तीन महीने तक विश्राम करना पड़ा। इसीलिए इस वर्ष का सर्वोदय-सम्मेलन भी चांडील में ही हुआ। चांडील-सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि सेवापुरी-सम्मेलन में किये गये निश्चय के अनुसार दो वर्षों के अन्दर, अर्थात् सन् १९५४ के मार्च महीने तक, सम्पूर्ण भारत में २५ लाख एकड़ भूमि का संग्रह तो किया ही जाय, सन् १९५७ ईसवी तक सम्पूर्ण भारत की कृषि-योग्य भूमि का पष्ठांश ५ करोड़ एकड़ भूमि भूदान-यज्ञ में संग्रहीत हो। इसी उद्देश्य से आगामी पाँच वर्षों के लिए—कम-से-कम एक वर्ष का समय एकाग्रभाव से भूदान-यज्ञ में देने के लिए कार्यकर्ताओं से अनुरोध किया गया। सन् १९५७ तक ५ करोड़ एकड़ भूमि-दान का संग्रह कर भारत की भूमि-समस्या का समाधान कर लेने का संकल्प विशेष अर्थपूर्ण था। सन् १७५७ में पलासी के युद्ध से भारत परतन्त्रता के बन्धन में बँधा था, सन् १८५७ में 'सिपाही विद्रोह' के माध्यम से पराधीनता के बन्धन काट फेंकने के लिए क्रांति का सूत्रपात हुआ और सन् १९५७ में सामाजिक और आर्थिक समानता की स्थापना कर भारत की स्वतन्त्रता को पूर्ण बनाने का निश्चय किया गया। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है : "मैं समझता हूँ कि आर्थिक क्रांति अनिवार्य है। सन् १७५७ में पलासी की लड़ाई हुई थी, १८५७ में क्रांति हुई और १९५७ में आर्थिक और सामाजिक क्रांति हो।"

सेवापुरी-सर्वोदय-सम्मेलन में दो वर्षों के अन्दर भूदान-यज्ञ में २५ लाख एकड़ भूमि एकत्र करने का निश्चय हुआ था। दो वर्ष बाद १९-२० अप्रैल, १९५४ को बोधगया में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ। इस समय तक सम्पूर्ण भारत में २,३७,०२२ दाताओं से २८,२५,१०१ एकड़ भूमि प्राप्त हो चुकी थी। इस प्रकार सेवापुरी सम्मेलन का संकल्प पूरा हुआ, यद्यपि कई राज्यों में उनके

लिए निश्चित किये गये 'कोटे' पूरे नहीं हो सके। फिर भी दो वर्षों के अन्दर इतने अधिक दाताओं से इतनी जमीन का प्राप्त होना कल्पनातीत बात है। इसके अतिरिक्त बहुत-से समग्र ग्रामदान मिल गये। इसका अर्थ यह कि गाँव में जिसके पास कम या बेशी जो भी जमीन थी, वह उसने भूदान-यज्ञ में अर्पित कर दी। इस प्रकार भूदान-यज्ञ का प्रथम अध्याय सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। अभी दूसरा अध्याय चल रहा है, जिसके अनुसार सन् १९५७ तक ५ करोड एकड भूमि प्राप्त करना है। इसका काम भी चल रहा है। बोधगया-सम्मेलन के बाद से सारे देश में इसी लक्ष्य को सामने रखकर कार्य आरम्भ हो गया है। इसके अतिरिक्त बोधगया-सम्मेलन के बाद भूमि-वितरण के काम पर विशेष जोर दिया गया और अब तक जो भूमि प्राप्त हुई थी, उसे सुव्यवस्थित ढंग से और शीघ्र भूमिहीनों में बांटकर ग्राम-राज्य की स्थापना का आधारभूत कार्य तत्परता के साथ किया जा रहा है।

दान में प्राप्त भूमि का परिमाण था १ लाख ८१ हजार एकड और दाताओं की संख्या थी ५९ हजार ३ सौ। इसमें से ९ हजार दाताओं से ५९ हजार एकड जमीन केवल कोरापुट जिले में ही प्राप्त हुई थी। सर्वस्व ग्रामदानों की संख्या थी ९१। २० अगस्त, १९५५ तक उडीसा में कुल ४९८ ग्राम दान में पाये गये थे। इसमें से कोरापुट जिले में ही ४०० ग्राम दान में मिले हैं। आज तक उड़ीसा में कुल २ लाख ९ हजार ६८१ एकड जमीन दान में मिली है।

मार्च, १९५५ के अंतिम सप्ताह में पुरी में सातवां सर्वोदय-सम्मेलन किया गया। उस सम्मेलन में सन् १९५७ तक भूमि-क्रांति को सफल बनाने का निश्चय दुहराया गया। इसके अतिरिक्त सर्व-सेवा-संघ ने सर्वोदय तथा अहिंसा में निष्ठा रखनेवाले सभी लोगों से सविनय निवेदन किया कि सन् १९५७ तक भूमि-क्रांति को सफल करने के लिए, अहिंसक पद्धति की इस कठिन परीक्षा में, अपने सभी कामों को छोडकर वे अपनी सम्पूर्ण बुद्धि, शक्ति और कार्यक्षमता का उपयोग इस काम में करें। अगस्त, १९५५ तक सारे भारत में ४ लाख ९३ हजार ६५९ दाताओं से ४० लाख १४ हजार ६२९ एकड भूमि दान में मिली है। इसमें से २ लाख ११ हजार २०४ एकड़ भूमि का ७२,३५२ परिवारों के बीच वितरण किया जा चुका है।

उडीसा की पैदल-यात्रा समाप्त करने के बाद १ अक्तूबर, १९५५ को विनोबाजी ने आंध्र राज्य में प्रवेश किया और वहां पूरे तीन महीने तक पैदल-यात्रा करने के बाद उन्होंने जनवरी, १९५६ के पूर्व ही हैदराबाद राज्य में पैदल-यात्रा आरम्भ की। उडीसा में पैदल-यात्रा के समय विनोबाजी ने तीन दिन (८ अगस्त से १० अगस्त, १९५५) तक उडीसा के सीमावर्ती आंध्र राज्य के इलाकों का भ्रमण किया। हैदराबाद से वे पुन. ११ मार्च, १९५६ को आंध्र राज्य में पधारे और वहां दो महीने तक उन्होंने पैदल-यात्रा की। इस प्रकार तीन बार में उन्होंने आंध्र राज्य की पांच महीने से कुछ अधिक समय तक यात्रा की। आंध्र राज्य में विनोबाजी की पद-यात्रा के समय वहां के कार्यकर्ता विशाल आंध्र आंदोलन को लेकर व्यस्त थे और वहां सबका सक्रिय सहयोग प्राप्त न हो सका, फिर भी उनके पद-यात्रा-काल में वहां लगभग ६३ हजार एकड भूमिदान, वार्षिक १ लाख ३५ हजार रुपये का सम्पत्तिदान, २० सर्वस्वदानी ग्राम और ११ गृहदान मिले।

भूदान-यज्ञ-आंदोलन को संघ के बन्धन में न रखकर जन-आंदोलन का

रूप देने की बात उड़ीसा जाने के समय विनोबाजी के मन में उठी थी। आंदोलन को संस्था की सीमा में बांध रखने से क्रांति ला सकना सम्भव नहीं है। इसलिए उन्होंने सोचा कि आंदोलन का दायित्व अब जनसाधारण के हाथ में सौंपना होगा और ऐसा लोकमानस तैयार करना होगा, जिसमें कि लोग स्वतः प्रवृत्त होकर एक दिन निश्चित करके सारे भारत में भूमि-वितरण कर डालें। उड़ीसा-भ्रमण के अपने अन्तिम पड़ाव पर विनोबाजी ने सर्व-सेवा-संघ के कुछ विशिष्ट सदस्यों के समक्ष अपना मनोभाव रखा। इसके बाद १६ और १७ दिसम्बर, १९५५ को आंध्र-अंतर्गत विजयवाड़ा नगर में सर्व-सेवा-संघ की जो बैठक हुई, उसमें इस बारे में विशेष रूप से विचार हुआ। उक्त बैठक में इस सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकट करते हुए विनोबाजी ने कहा: "जैसे सम्पूर्ण देश में एक ही दिन होली मनाते हैं और एक ही दिन दीवाली, उसी तरह जन-साधारण एक दिन तय करे और उस दिन सारे देश में सर्वत्र भूमि-वितरण कर डाले। ऐसी क्रांति जन-आंदोलन के द्वारा ही सम्भव है। संचित धन से आर्थिक सहायता लेने, न लेने का प्रश्न गौण है। मुख्य बात यह है कि आंदोलन का आधार व्यापक बनाना होगा।" विनोबाजी आगे कहते हैं कि इस बात के आधार पर यह सोचना उचित है कि प्रादेशिक भूदान-समिति आदि का अस्तित्व रहे या नहीं? उनके मत से प्रत्येक प्रान्त में सर्व-सेवा-संघ का एक शाखा-कार्यालय रहे। वहीं दानपत्र आदि जमा रहें। वहीं दान-संग्रह, साहित्य-प्रचार आदि के काम हों। बाकी सम्पूर्ण आंदोलन जन-साधारण पर छोड़ दिया जाय। सर्व-सेवा-संघ ने इसका समर्थन किया। यह निश्चय हुआ कि अभी प्रादेशिक भूदान-समिति आदि तो बनी रहेंगी, परन्तु संगठन को, जितना सम्भव होगा, विकेन्द्रित किया जायगा और संचित धन से आर्थिक सहायता लेना धीरे-धीरे कम किया जायगा। तदनुसार ही आवश्यक व्यवस्था की जा रही है और इस निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने के प्रयत्न चल रहे हैं।

आंध्र में विनोबाजी की पद-यात्रा ने अपूर्व सफलता प्राप्त की। उनकी आंध्र की पद-यात्रा का यह सर्वश्रेष्ठ पराक्रम है। सत्य पर आवृत अहिंसात्मक आंदोलन में इस सफलता की आशा करना दुराशा नहीं है। आंध्र राज्य के अनेक कम्युनिस्ट कार्यकर्ता इस आंदोलन की विचारधारा से अनुप्राणित हुए हैं और उन्होंने भूदान-यज्ञ के काम में अपने आपको लगा दिया है। यहां के भूदान-

कार्यकर्ताओं में श्री गोराजी का नाम विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है। गोराजी और उनके सम्पूर्ण परिवार ने अपने को भूदान-यज्ञ के रंग में रँग दिया है। उनके पुत्र श्री लवणम्, प्रार्थना सभा में विनोबाजी द्वारा दिये जानेवाले भाषण का हिन्दी से तेलुगु में अनुवाद करके सुनाते थे। इस काम में उन्होंने इतनी असाधारण योग्यता का परिचय दिया कि सब लोग चकित रह गये।

१३ मई, १९५६ को विनोबाजी ने आंध्र से तमिलनाड (मद्रास) में पदार्पण किया। उसके दो सप्ताह बाद २७ से २९ मई तक तीन दिन, तमिलनाड-अंतर्गत भारत के सात महातीर्थों में से एक और अन्यतम महातीर्थ कांचीपुरम् में आठवां सर्वोदय-सम्मेलन सम्पन्न हुआ। सन् १९५७ तक आंदोलन की अभीष्ट सिद्धि के लिए संकल्प ग्रहण किया गया है। इस अवधि के पूरे होने में केवल १८ महीने बाकी हैं। अतएव इस सम्मेलन में विनोबाजी ने आंदोलन की तब तक हुई प्रगति का सिंहावलोकन किया। सर्व-सेवा-संघ के प्रस्ताव में भी उसका उल्लेख किया गया। पांच वर्षों से चल रहे इस आंदोलन की प्रगति के परिणामस्वरूप कई ऐसे दृष्टांत उपलब्ध हुए हैं, जिनका अनुसरण कर जन-साधारण निष्ठा और एकाग्रता के साथ निरंतर प्रयत्न करके संकल्पित अवधि के अन्दर अभीष्ट प्राप्त कर सकता है। वे दृष्टान्त हैं (१) बिहार में २४ लाख एकड़ भूमिदान प्राप्त होने से यह सिद्ध हुआ है कि अहिंसात्मक उपाय से कोई भी प्रदेश भूमि-समस्या का बहुत हद तक समाधान कर सकता है। (२) उड़ीसा में बहुत-से ग्रामदान प्राप्त हुए हैं। इससे भूमि पर मालकियत की जड़ कमजोर पड़ी है। इसके अतिरिक्त इससे ग्रामराज की स्थापना की कल्पना सामने आयी है और उस सम्बन्ध में कुछ विचार भी किया गया है। विनोबाजी कहते हैं कि व्यापक ग्रामदान के द्वारा संसार के समक्ष एक नवीन मार्ग का उदय हुआ है। (३) बिहार में एक दिन में ही दो सौ ग्रामों में ग्रामवासियों ने आत्मप्रवृत्त होकर भूमि-वितरण कर लिया है। उड़ीसा के सर्वस्वदानी चार-पांच सौ ग्रामों में प्रायः एक ही समय भूमि-वितरण किया गया है। विनोबाजी कहते हैं कि इससे वितरण की कुञ्जी हमारे हाथ में आयी है। (४) मध्यप्रदेश में भूदान की प्रगति ठीक तरह से नहीं हो रही थी। स्थिति को सुधारने के लिए मध्यप्रदेश के कार्यकर्ताओं ने सघन सामूहिक पद-यात्रा का कार्यक्रम अपनाया और उसमें भारी सफलता प्राप्त की। इससे इस आशा का संचार

हुआ है कि जहाँ साधारण कार्यकर्ता अकेले-अकेले काम करके भूमिदान, सम्पत्ति-दान इत्यादि कार्यक्रम पूर्ण नहीं कर पाते हैं, वहाँ उनके सामूहिक प्रयत्न से सफलता प्राप्त की जा सकती है। (५) व्यापक सम्पत्तिदान के सम्बन्ध में अनेक लोगों के मन में सन्देह था, किन्तु बिहार की एक जनसभा में, जिसमें जयप्रकाशनारायणजी उपस्थित थे, कई हजार सम्पत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए। उड़ीसा के छोटे-छोटे ग्रामों में भी बड़ी संख्या में सम्पत्तिदान-पत्र प्राप्त हुए हैं।

भूदान-आरोहण में भूदान-यज्ञ 'सम्पूर्ण ग्रामदान' की सीढ़ी तक पहुँचा है। विनोबाजी के कथनानुसार—भूदान का चरम उत्कर्ष ग्रामदान है। किन्तु, वह क्रांति की सर्वोच्च सीढ़ी नहीं है। क्रांति के 'एवरेस्ट' शिखर तक पहुँचने में अभी और बहुत-कुछ बाकी है। केवल भूमि-क्रांति होने से ही आर्थिक क्रांति नहीं हो जायगी। भूमि-क्रांति के साथ-साथ उद्योग-सम्बन्धी क्रांति भी होनी चाहिए अर्थात् खादी और ग्रामोद्योग-समूह की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। आर्थिक क्रांति के साथ-साथ सामाजिक क्रांति की भी पूर्ण परिणति होनी चाहिए। इसके लिए जाति-भेद का अंत अत्यधिक आवश्यक है। क्रांति को सुगम बनाने के लिए शिक्षा-व्यवस्था भी क्रांति के अनुकूल और उसकी सहायिका होनी चाहिए। अतएव 'नयी तालीम' शिक्षा-पद्धति का व्यापक प्रचलन आवश्यक है। इसीलिए विनोबाजी ने कांचीपुरम् सर्वोदय-सम्मेलन में घोषणा की कि भारत के दक्षिणी प्रदेश में वे क्रांति का पूर्ण विकास देखना चाहते हैं और इसलिए वे तमिलनाड में भूदान के काम के साथ, (१) खादी और ग्रामोद्योग, (२) जातिभेद-उन्मूलन और (३) नयी तालीम, इन तीन कामों में योगदान करेंगे। इस कारण वे तमिलनाड में अनिश्चित काल तक रहेंगे। उन्होंने अभी इन तीन कामों को क्यों ग्रहण किया, इस सम्बन्ध में उन्होंने पांडीचेरी में (८ जुलाई, १९५६ को) कहा "एक प्रदेश में लाखों एकड़ भूमि-दान प्राप्त किया जा सकता है, यह बिहार ने सिद्ध कर दिया है। एक प्रदेश में सैकड़ों ग्रामदान मिल सकते हैं, और मालकियत मिट सकती है, यह बात उड़ीसा ने साबित कर दी है। इसलिए एक तरफ मेरा काम समाप्त हो गया है। भूदान के मार्ग से क्या हो सकता है, यह साबित हो चुका है। इससे अधिक केवल एक मनुष्य और क्या

कर सकता है ? अपने बारे में मुझे यही कहना है कि मेरी ओर से भूदान-कार्य को पूर्ण परिणति हो गयी है। इसलिए अब से मैं यहाँ अपने भूदान के काम के साथ ग्रामोद्योग, नयी तालीम, जातिभेद-उन्मूलन आदि कामों को जोडकर ग्राम राज्य की कल्पना को मूर्त रूप देना चाहता हूँ।" इस महान् कार्य को आरम्भ करने के पूर्व उन्होंने चित्तशुद्धि और गम्भीर चिन्तन के लिए काचीपुरम् में सम्मेलन समाप्त होने के बाद तीन दिन (१ जून से ३ जून, '५६) तक उपवास रखा। साधारण तौर पर तीन दिनो के उपवास के लिए विशेष-कुछ चिन्तित होने की बात नहीं है, किन्तु विनोबाजी की पाकस्थली बहुत क्षतिग्रस्त है और उन्हें तीन-चार घटे के अतर पर अवश्य कुछ भोजन चाहिए। फलत उनके उपवास ने बडी चिन्ता उत्पन्न की, किन्तु हर्ष की बात है कि ईश्वर की कृपा से उपवास के कारण उनके स्वास्थ्य में विशेष-कुछ अतर नहीं आया। उपवास टूटने के बाद केवल तीन दिन तक विश्राम करने के उपरान्त ७ जून से उन्होंने तमिलनाड में पुन पद-यात्रा आरम्भ कर दी। अब प्रश्न यह है कि तमिलनाड में ही इस काम को करने का सकल्प विनोबाजी ने क्यों लिया ? इस समय क्राति के अतिम पर्याय का विकास करने का अवसर उपस्थित हुआ है और इसका प्रयोजन तमिलनाड में उनकी पद-यात्रा के बीच में ही प्रकट हुआ है। अतएव अहिंसात्मक समाज-रचना के इन तीन अति आवश्यक कामों को तमिलनाड में उन्होंने शुरू किया है, यह समझना स्वाभाविक है। पर विनोबा कहते हैं कि उन्हें आशा है कि इस प्रदेश में उन्हें विशेष समर्थन प्राप्त होगा। प्राचीन धर्मग्रन्थों में उनका विश्वास है। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि जब ससार में कहीं भी भक्ति शेष नहीं रह जायगी, तब भी द्रविड प्रदेश में भक्ति का अभाव नहीं रहेगा। तमिलनाड के प्राय प्रत्येक गाँव के मध्य में एक बडा मन्दिर है। इससे श्रीमद्भागवत की यह उक्ति सही जान पडती है। इसके अलावा उनका खयाल है कि तमिलनाड में खादी का जो काम हो रहा है वह व्यवसाय की दृष्टि से नहीं हो रहा है। ग्राम-सगठन की ही दृष्टि से वह काम हो रहा है। वहाँ कितने ही रचनात्मक कार्य हो रहे हैं। इसलिए उनके काम के लिए तमिलनाड का वातावरण अधिक उपयुक्त है। इस बात ने भी उन्हें ऐसा सोचने के लिए प्रभावित किया होगा। तमिलनाड में क्राति के कार्य की प्रगति कैसी होती है, इस बात की ओर सभी लोग ध्यानपूर्वक देखेंगे।

मई, १९५६ के अंत तक सारे भारत में ५ लाख ३७ हजार दानपत्रों के द्वारा ४१ लाख ८२ हजार एकड़ भूमिदान और २१ हजार ८ सौ दानपत्रों के द्वारा वार्षिक ७ लाख ८१ हजार रुपये का सम्पत्तिदान प्राप्त हुआ है। आज तक सारे भारत में १,१०९ सम्पूर्ण ग्रामदान प्राप्त हुए हैं। इसमें से १,०४५ ग्राम उड़ीसा के हैं। अबतक १,८७७ व्यक्तियों ने जीवनदान दिया है।

भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान

विनोबाजी कहते हैं कि भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान हैं। एक सोपान से दूसरे सोपान पर चढ़ते-चढ़ते भूदान-यज्ञ विनोबाजी के उड़ीसा-भ्रमण-काल में पाँचवें सोपान पर पहुँचा। उनकी व्याख्या के अनुसार भूदान-यज्ञ के पाँच सोपान ये हैं :

(१) तेलंगाना में भूमिहीन दरिद्रों और भूमि के मालिकों के बीच विद्वेष-विवाद आदि के फलस्वरूप वहाँ जो भयानक परिस्थिति उत्पन्न हो गयी थी, उसका प्रतिकार अत्यन्त आवश्यक था। उसी अवस्था में वहाँ भूदान-यज्ञ आरम्भ हुआ और उसका अच्छा परिणाम आया। वहाँ की भयानक स्थिति भी शांत हुई। इसका प्रभाव सारे देश पर पड़ा और देश की विचार-धारा में भूदान-यज्ञ ने एक विशेष स्थान प्राप्त किया। यह भूदान-यज्ञ का पहला सोपान था।

(२) तेलंगाना के हंगामे में हजारों भूमि-स्वामी और उनके पक्ष के आदमी मारे गये थे। वहाँ लूटमार, डकैती और गृहदाह की घटनाएँ अबाध गति से घट रही थीं। बहुत लोग सोचते हैं कि वैसी अवस्था में वहाँ भू-स्वामियों से अनुकूल परिणाम प्राप्त करना कठिन न था। किन्तु, सम्पूर्ण देश के लिए विशेषकर जहाँ सामान्य अवस्था है, अर्थात् जहाँ कोई हिंसात्मक आंदोलन नहीं चल रहा है, भूदान-यज्ञ उपयोगी है या नहीं और ऐसे स्थानों पर उसका अनुकूल परिणाम निकलेगा या नहीं, इसमें सन्देह है। इसीलिए एक ऐसे क्षेत्र में भूदान-यज्ञ की परीक्षा लेना आवश्यक था, जहाँ बिलकुल सामान्य स्थिति हो। विनोबाजी के दिल्ली जाने के मार्ग में यह परीक्षा की गयी और भूदान-यज्ञ सफल साबित हुआ। सम्पूर्ण देश की दृष्टि उस ओर आकर्षित हुई। भूदान-यज्ञ की चारों ओर चर्चा होने लगी। यह हुआ भूदान-यज्ञ का दूसरा सोपान।

(३) इसके बाद कार्यकर्ताओं के मन में आत्म-विश्वास पैदा करने की आवश्यकता हुई, जिससे कि वे आत्म-विश्वास लेकर देशव्यापी आंदोलन को

चलाने में सफल हो। सेवापुरी-सर्वोदय-सम्मेलन में दो वर्षों के अन्दर सारे देश मे २५ लाख एकड भूमि और उत्तरप्रदेश में ५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का निश्चय किया गया। ये दोनो ही संकल्प पूरे हुए और कार्यकर्ताओ के मन में आत्मनिष्ठा उत्पन्न हुई। इस प्रकार भूदान-यज्ञ तीसरे सोपान पर चढा।

(४) देशभर में जितनी भूमि है, उसका छठा हिस्सा प्राप्त करने से ही सभी भूमिहीनो को भूमि दे सकना सम्भव है। पहले एक प्रान्त में खूब जोर-शोर से काम करके वहाँ की षष्ठांश भूमि प्राप्त कर लेने से अन्य प्रान्तों पर भी उसका प्रभाव पडेगा। तब देशभर में भूमि का षष्ठांश प्राप्त कर सकना सहज होगा। इस बात को सोचकर बिहार की षष्ठांश भूमि, अर्थात् ३२ लाख एकड भूमि संग्रह करने का निश्चय किया गया। वहाँ २३ लाख एकड से कुछ अधिक भूमि प्राप्त हो चुकी है। इस समय कार्यकर्ता भूमि वितरण के काम पर विशेष जोर दे रहे हैं इसलिए भूमि-प्राप्ति की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। बिहार में जितनी भूमि दान में मिली है उससे अधिक महत्त्व की बात यह है कि वहाँ कितने लोगों ने भूमि-दान किया है। वहाँ तीन लाख व्यक्तियों ने भूमिदान किया है। एक प्रान्त में किस प्रकार लाखों व्यक्ति लाखो एकड भूमि दान में दे सकते हैं इसके लिए बिहार द्रष्टव्य है। लाखों व्यक्तियो ने अत्यन्त श्रद्धा के साथ दान किया। बिहार मे जो दान मिले हैं, उनमें अधिकांश सात्त्विक दान हैं। यह भूदान-यज्ञ का चौथा सोपान है।

(५) भूमि पर से व्यक्तिगत मालकियत की समाप्ति से ही भूमि-क्रांति सफल होगी। सभी ग्रामों में व्यक्तिगत मालकियत मिट जाय और ग्राम ही सारी भूमि का स्वामी बने। सारा ग्राम एक परिवार के रूप में रहे। इसे विनोबाजी ने 'ग्राम-परिवार' नाम दिया है। विनोबाजी ने उडीसा के कोरापुट जिले में जब पैदल-यात्रा शुरू की, तब वहाँ ग्राम-दान-आंदोलन बडी तेजी से चल रहा था। अगस्त, १९५५ तक उडीसा में ५०० से अधिक ग्रामदान मिले। इसमें से केवल कोरापुट जिले में ही ४०० से अधिक ग्रामों का समग्र दान मिला। भूदान-यज्ञ में षष्ठांश दान से अधिक महत्त्व सर्वस्व दान का है। इस प्रकार उडीसा में भूदान-यज्ञ पाँचवें सोपान पर पहुँचा।

विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ के पाँच सोपानों का नामकरण किया है। पहले सोपान में स्थानीय अशांति का दमन हुआ। इसलिए उन्होंने इसे 'अशांति-

दमन' नाम दिया है। दूसरे सोपान में सम्पूर्ण देश का ध्यान भूदान-यज्ञ की ओर आकृष्ट हुआ। इसलिए इसे 'ध्यानाकर्षण' नाम मिला है। तीसरे सोपान में कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। इसलिए इसका नाम रखा है : 'निष्ठानिर्माण'। चौथे सोपान में यह परीक्षा की गयी कि किसी एक प्रान्त में किस प्रकार पर्याप्त भूमि का संग्रह किया जा सकता है। इसलिए इसे 'व्यापक भूमिदान' नाम मिला। पाँचवें सोपान में गाँव को एक परिवार के रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया गया। अतएव इसे नाम मिला : 'भूमि-क्रांति'।

इसीलिए विनोबाजी ने कहा है कि भूदान-यज्ञ आंदोलन नहीं, वरन् आरोहण है।

बापू जैसा ही दृश्य

विदेशी शासन समाप्त कर हमने जो स्वाधीनता प्राप्त की है, वह केवल राजनीतिक स्वाधीनता है। वह सम्पूर्ण स्वराज नहीं है। राजनीतिक स्वाधीनता एक सुयोग-मात्र है। इस सुयोग का सदुपयोग करके आर्थिक और सामाजिक साम्य-प्रतिष्ठा कर सकने से ही देश सम्पूर्ण स्वराज प्राप्त करेगा। महात्मा गांधी ने अपने १८ सूत्री रचनात्मक कार्यक्रम में इसी स्वराज का चित्र आँका है। आर्थिक साम्य-स्थापना उक्त १८ सूत्री रचनात्मक कार्यों में सर्वोपरि है। किन्तु परिस्थिति ऐसी है कि भूमि-समस्या का समाधान तथा आर्थिक साम्य-स्थापना आजकल के युगधर्म के रूप में उपस्थित है और महात्मा गांधी का वह अधूरा काम भगवान् ने विनोबाजी के हाथ में सौंपा है। महात्मा गांधी में जिस विभूति का प्रकाश हमने देखा था, विनोबाजी में वैसी ही विभूति का विकास परिलक्षित हो रहा है। और ऐसा लगता है कि गांधीजी की आत्मा विनोबाजी के माध्यम से काम कर रही है। कृपालानीजी ने बिहार में विनोबाजी के साथ भेंट करके उनकी कार्य-पद्धति का अवलोकन किया था और उन्होंने ऐसा अनुभव किया था। उन्होंने कहा था : "बापू के साथ चम्पारण में रहकर मैंने जो दृश्य देखा था, वही विनोबाजी के पास भी वही दृश्य देख रहा हूँ। बापू जिस प्रकार काम करते थे, विनोबाजी भी उसी प्रकार काम कर रहे हैं। मैं तो इस प्रकार काम नहीं करता, क्योंकि मेरी प्रकृति ही दूसरे ढंग की है। किन्तु जो मनोभाव लेकर, जिस पद्धति से, जिस प्रकार बापू काम करते थे, उसी प्रकार विनोबाजी

भी काम कर रहे हैं। गांधीजी जिस तरह ग्रामवासी भाइयों के साथ बात-चीत करते थे, विनोबाजी भी उसी तरह उनके साथ बात करते हैं। ऐसा मन में लग रहा है और आशा भी हो रही है कि बापूजी की वही आत्मा हम लोगों के बीच आकर काम कर रही है। इतने दिनों तक अनुभव कर रहा था कि उन्होंने जो-कुछ सिखाया था, वह उनके चले जाने के बाद, लोग भूलते जा रहे हैं। किन्तु, इन सब कामों को देखकर ऐसा लगता है कि महात्माजी की आत्मा विनोबाजी के माध्यम से हम लोगों के बीच काम कर रही है और गांधीजी का काम चालू है—वह बन्द नहीं हुआ है। केवल विदेशी शासन का अवसान ही उनका लक्ष्य नहीं था। हम लोगों में जो लोग राजनीतिज्ञ हैं, वे विदेशी शासन की समाप्ति को ही क्रांति समझते थे, किन्तु उनके लिए यह क्रांति की दिशा में एक कदम-मात्र ही था। उन्होंने स्वाधीनता की सहायता लेकर दरिद्रता की समस्या को हल करना चाहा था।"

सम्पूर्ण ग्रामदान या भूमि का ग्रामीकरण

आंदोलन के प्रारम्भिक काल में विनोबाजी ने कहा था : "मैं छोटा परिवार नहीं चाहता, इसलिए बड़े परिवारों की रचना करने जा रहा हूँ। मैं सम्पूर्ण ग्राम को एक परिवार में बदलना चाहता हूँ।" उन्होंने यह भी कहा था : "इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए मेरा आंदोलन आगे बढ़ रहा है और सफलता मिलने तक यह आंदोलन चलता रहेगा।" इसके बाद १९५३ के मध्य में रांची में आयोजित एक कार्यकर्ता शिविर में उन्होंने बिहार प्रदेश के कार्यकर्ताओं को भूमि-व्यवस्था के अंतिम स्वरूप के बारे में समझाया

'हम लोगों की अन्तिम अवस्था ऐसी होगी। भारतभर में जितनी जमीन है सब एक साथ मिलाकर आबाद की जायगी, ऐसा नहीं। व्यक्ति के हाथ में जमीन रहेगी, किन्तु ग्राम-पंचायत के हाथ में भूमि की मालकियत रहेगी। प्रत्येक परिवार को ५ एकड़ के हिसाब से जमीन खेती के लिए मिलेगी और बाकी जमीन सामूहिक रहेगी। मालगुजारी सामूहिक जमीन की फसल से दी जायगी। शिक्षा, चिकित्सा-व्यवस्था आदि का खर्च सामूहिक जमीन से पूरा किया जायगा। इस प्रकार गाँव के सभी सार्वजनिक कार्य सामूहिक जमीन से पूरे किये जायँगे और खाद्योत्पादन के लिए सभी लोगों के पास थोड़ी-थोड़ी जमीन

रहेगी। प्रत्येक आठ-दस वर्ष पर जमीन का पुनर्वितरण होगा। जिसके घर में अधिक लोग होंगे, उसे अधिक जमीन दी जायगी और जिसके घर में कम लोग होंगे, उसे कम जमीन दी जायगी। इस अवधि के लिए यही व्यक्ति जमीन का मालिक होगा, अर्थात् इस काल में इससे जमीन छीनी नहीं जायगी। हर आदमी यही सोचकर काम करेगा कि यह दायित्व उसका है और जमीन उसकी है। इस प्रकार सामूहिक जमीन भी उन्हीं लोगों की है—ऐसा सोचकर लोग उस जमीन पर भी काम करेंगे। सब जमीन हम लोगों की है। हमें जरूरत पड़ने पर और जमीन मिल भी सकेगी और वापस भी ली जा सकेगी—ऐसा मनोभाव रहेगा। यद्यपि पिता-पुत्र के बीच अटूट सम्बन्ध रहता है, तथापि कोई पिता ऐसा नहीं कहता है कि 'मैं अपने पुत्र का मालिक हूँ'। पिता कहता है कि 'मालिक भगवान् है। हम दोनों ही उसके सेवक हैं'। अर्थात् उसे अपनी सन्तान के प्रति ममता तो है, किन्तु उस पर मालिकाना अधिकार नहीं है। इसी प्रकार जमीन के प्रति ममता तो रहेगी, किन्तु उस पर मालिकाना अधिकार नहीं रहेगा। जमीन की बिक्री नहीं होगी। भला कोई अपने बच्चे को बेचता है? बच्चे को किसीकी सहायता के लिए दिया जा सकता है। जमीन का मूल्य पैसे से नहीं चुकाया जा सकता। वह अमूल्य वस्तु है।"

आरम्भ से विनोबाजी के मन में सम्पूर्ण ग्रामदान की बात थी। किन्तु, उन्होंने शुरू से सम्पूर्ण ग्रामदान पर जोर नहीं दिया, क्योंकि महान् विचार प्रकट करना एक बात है और उसे वास्तविकता में परिणत करना दूसरी बात। आंदोलन की प्रगति के साथ-साथ उसके लिए अनुकूल अवस्था की सृष्टि होनी चाहिए। बुंदेलखण्ड के यशस्वी नेता दीवान शत्रुघ्न सिंह के सत्प्रयास से उत्तर-प्रदेश के मँगरोठ ग्राम के निवासियों ने विनोबा की इस कल्पना को मूर्त रूप दिया। उन्होंने मँगरोठ ग्राम का समग्रदान कर दिया। भारत में वही पहला सम्पूर्ण ग्रामदान था। इसके बाद बिहार में १३ ग्राम और उड़ीसा में २५ ग्राम सम्पूर्ण ग्रामदान के रूप में मिले। उड़ीसा में धीरे-धीरे सम्पूर्ण ग्रामदान की संख्या बढ़ने लगी। विनोबाजी ने कहा था कि उड़ीसा में उनके भ्रमण का उद्देश्य होगा 'भूमि-क्रांति'। सम्पूर्ण ग्राम के सर्वस्वदान के द्वारा भूमि-क्रांति होगी। विनोबाजी के उड़ीसा-भ्रमण-काल में कोरापुट जिले में सम्पूर्ण ग्रामदान तेजी से होता रहा। यह ध्यान भूदान-यज्ञ-आंदोलन की महती सम्भावनाओं की ओर निर्देश करती है।

सर्वस्वदानी ग्रामों की भूमि-व्यवस्था कैसी होगी और किस प्रकार इन ग्रामों में पुनर्निर्माण के काम होंगे, उसकी विस्तृत व्याख्या विनोबाजी ने कोरा-पुट जिले के भ्रमण के समय ग्रामवासियों के समक्ष की। उन्होंने कहा : "जमीन के मालिक भगवान् हैं। ग्राम भगवान् की ओर से जमीन के ट्रस्टी होंगे। कानून भी किसी व्यक्ति को जमीन के मालिक के रूप में नहीं मानेगा। ग्राम को ही जमीन का मालिक माना जायगा। परिवार में कितने लोग हैं, यह देखकर प्रत्येक व्यक्ति पर एक एकड के हिसाब से जमीन खेती के लिए दी जायगी। प्रत्येक पाँच या दस वर्षों पर परिवार के सदस्यों की संख्या को देखते हुए जमीन का पुनर्वितरण होगा। ग्राम में थोडी-सी सामूहिक जमीन रहेगी। इस जमीन की आय से ग्राम की समस्त जमीन की मालगुजारी दी जायगी और ग्राम के सभी उत्थानमूलक कार्य किये जायेंगे। कुछ वर्षों के परीक्षण के उपरान्त यदि ग्रामवासी चाहें तो वे सारी जमीन को सामूहिक रूप दे सकेंगे। अब केवल सुविधा के लिए वे लोग अलग-अलग खेती करेंगे। यदि किसीके खेत में बहुत अधिक काम पड जायगा, तो गाँव के सभी लोग मिलकर काम कर देंगे। यदि कोई व्यक्ति कष्टपीडित होगा या उसकी जमीन में कम फसल होगी, तो उसे सहायता दी जायगी। कोई किसीको ऋण नहीं देगा, क्योंकि सम्पूर्ण ग्राम एक परिवार के रूप में रहेगा।

"साथ-ही-साथ कुटीर-उद्योगों की स्थापना की जायगी और ग्राम के स्वावलम्बी होने और उसे पैसे की माया से मुक्त करने की चेष्टा की जायगी। पहला काम यह होगा कि सब ग्रामवासी मिलकर यह निश्चय करेंगे कि उनके ग्राम में बाहर से कपडा नहीं आयेगा। कपास पैदा करने से लेकर कपडा तैयार करने तक का सारा काम ग्राम में ही होगा। इसके द्वारा गाँव के सभी लोग काम पायेंगे और गाँव की लक्ष्मी गाँव में ही रहेगी। इसके अतिरिक्त गाँव को जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, उन्हें गाँव में ही पैदा करने की व्यवस्था की जायगी। गाँव में किसीकी भी व्यक्तिगत दूकान नहीं होगी। ग्राम की ओर से ही एक दूकान रहेगी। वह दूकान ही आवश्यकता के अनुसार बाहरी चीजें खरीदेगी और ग्राम की जरूरतों की पूर्ति के बाद अपने यहाँ उत्पादित वस्तुओं को बाहर बेच देगी।

"गाँव के सभी बच्चे एक-सी शिक्षा पायेंगे। शिक्षक सबेरे एक घंटा बच्चों

को और शाम को एक घंटा वयस्को को शिक्षा देंगे। दिन के बाकी घंटो मे वे अपना काम करेंगे। भारत की शिक्षण-व्यवस्था में शिल्प तथा ब्रह्मविद्या, दोनों का ही स्थान होना चाहिए। इससे अपनी योग्यता के अनुसार काम मिलेगा और बुद्धि का ठीक ढंग से विकास होगा। प्रतिदिन शाम को गाँव के सब लोग एक जगह इकट्ठे होंगे और वहाँ गीता, रामायण आदि धर्मग्रन्थो का पाठ होगा तथा ग्रामोन्नति के बारे में विचार-विमर्श किया जायगा। आजकल शराब, बीडी, सिगरेट आदि के सेवन के कारण ग्रामो की अवस्था बहुत खराब हो गयी है। इसलिए सभी ग्रामवासी मिलकर भगवान् को साक्षी रखकर यह निश्चय करेंगे कि वे शराब, बीडी आदि का सेवन नहीं करेंगे। गाँव में जिस व्यक्ति पर कर्ज है, उसे माफ कर देने के लिए या ब्याज छोड देने के लिए महाजन से अनुरोध किया जायगा। भविष्य में यदि किसीको कर्ज की जरूरत पडेगी, तो गाँव की ओर से मिलेगा। सरकार से भी कर्ज लिया जा सकेगा। गाँव में होनेवाले सारे विवाहो की व्यवस्था गाँव की ओर से ही की जायगी—किसी परिवार-विशेष पर बोझ नही रहेगा। इसीलिए विवाह के लिए ऋण लेने की कोई जरूरत नही रहेगी।

"सामाजिक क्षेत्र में जातिभेद, अस्पृश्यता, स्त्री-पुरुष-भेद, आदि सभी भेद-भाव दूर कर दिये जायँगे। प्रत्येक व्यक्ति को परमेश्वर का पुत्र माना जायगा और उस दृष्टि से सबके समान अधिकार होंगे। सब प्रकार के शिल्प तथा सब तरह के समाजहितकारी कार्यों की सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रतिष्ठा एक-सी मानी जायगी। गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार माना जायगा और आदर्श यह होगा कि सब लोग कुछ देर खेत में काम करें। कारण यह है कि खेती के काम को छोड देने पर मानव-जीवन पूर्णता नही प्राप्त कर सकता। गाँव के जुलाहे, चमार, कुम्हार, सभी गाँव के लोगो की आवश्यकता के अनुसार काम करेंगे। उसका हिसाब नही रखा जायगा। बरसात के अन्त में जब फसल होगी, तब किसान लोग अपनी-अपनी फसल का कुछ अंश उन शिल्पियों को दे आयेंगे। पहले ग्रामो में ऐसा ही होता था। इस प्रकार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आरम्भ 'ग्राम-परिवार' से ही होगा।"

सर्वस्वदानी ग्रामों की भूमि-व्यवस्था से व्यक्तिगत मालकियत तो समाप्त हो जाती है, परन्तु व्यक्तिगत मालकियत की सुविधाएँ ग्रामवासियों को

मिलती रहती है, अर्थात् अलग-अलग वे खेती कर सकते हैं। सपूर्ण ग्रामदान के बारे में विनोबाजी कहते हैं कि भूदान-यज्ञ का पहला कदम यह है कि गाँव में कोई भूमिहीन नही रहेगा और उसका अंतिम कदम यह होगा कि गाँव में भूमि का मालिक कोई नही रहेगा।

विनोबाजी कहते हैं कि सम्पूर्ण ग्रामदान के चार सुपरिणाम है : (१) आर्थिक, (२) सास्कृतिक, (३) नैतिक और (४) आध्यात्मिक। इस सम्बन्ध में व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

(१) आर्थिक—"सम्पूर्ण ग्रामदान का पहला सुपरिणाम है—आर्थिक क्राति। व्यक्तिगत स्वामित्व का अत होने से गाँव की सब जमीन एक जगह हो जायगी और इससे गाँव की श्री-वृद्धि होगी। इसके कारण ये है : (क) गाँव में किस फसल की किस परिमाण में आवश्यकता है, सको दृष्टि में रखकर खेती की व्यवस्था होगी, (ख) कृषि की उन्नति के लिए पूरी चेष्टा की जायगी, (ग) सरकारी और बाहरी सहायता पा सकना आसान होगा और (घ) व्यक्तिगत रूप से किसीको ऋण लेने की जरूरत नही पड़ेगी। मोटे तौर पर ,इससे ग्राम-आयोजना में विशेष सुविधा होगी। इस प्रकार गाँव में आर्थिक क्राति होगी।

(२) सास्कृतिक—"गाँव के एक परिवार के रूप में रहने से परस्पर प्रेम और सौहार्द मे वृद्धि होगी। सुख या दु ख में अन्य साझीदार होने से सुख बढता है और दु ख घटता है। इसलिए सम्पूर्णदानी ग्रामो के लोगों का सुख बढेगा और दु ख घटेगा। इसके अतिरिक्त इन सम्पूर्णदानी ग्रामो की परिवार-मूलक और व्यक्तिमूलक मनोवृत्ति दूर हो जायगी और ग्रामवासियो के विचार बहुत-कुछ खिलाडियो की तरह हो जायेंगे, जिन्हें अपने समूह की सफलता-असफलता की चिन्ता रहती है। खिलाडी अकेले न खेलकर अपने दल के साथ खेलता है और पूरे दल की सफलता पर हर्षित होता है। सामूहिक नृत्य मे नर्तक के साथ भी यही बात रहती है। इसी प्रकार सर्वस्वदानी ग्रामो के लोग एक परिवार के रूप में सहयोगपूर्वक रहेंगे और सुख की बात होने पर विशेष सुख पायेंगे और दु ख की बात होने पर कम दु ख अनुभव करेंगे।

(३) नैतिक—' ग्रामीकरण के फलस्वरूप ग्रामीणो का नैतिक विकास होगा। झगडा, गाली-गलौज, चोरी, व्यभिचार आदि समाप्त हो जायेंगे।

भला कोई अपने घर में भी चोरी करता है? मनुष्य ने अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अलग परिवार और अलग सम्पत्ति की सृष्टि की है। इस व्यक्तिगत स्वामित्व-भावना के कारण ही समाज का नैतिक अध पतन हो रहा है। एक भिखारी दो-चार पैसे और एक टुकडा साबुन भी अपने फटे चिथडे में यत्नपूर्वक बाँधकर रखता है। इसी प्रकार कोई कुछ आने, कोई कुछ रुपये और कोई हजार-हजार रुपये अपनी थैली में जमा करके बैठा है। लोगो का मन इतना सकीर्ण हो गया है और लोगो ने अपने घर का दायरा अत्यधिक सीमित कर लिया है। उनकी परिवारमूलक धारणा बहुत सकीर्ण हो गयी है। आज सारे ससार के झगडो की जड यही है। जब भूमि या सम्पत्ति की मालकियत की प्रथा समाप्त हो जायगी, तब लोगो का और समाज का नैतिक धरातल ऊँचा उठेगा। इसमे सदेह नही। यही सम्पूर्ण ग्रामदान का सर्वोत्कृष्ट सुपरिणाम है, 'तब सारा ससार आनन्द से नाचने लगेगा। आज सारा ससार दु खी है। स्वार्थ-सिद्धि के लिए परस्पर सघर्ष ही दु ख का कारण है। इसके फलस्वरूप हिंसा बढ रही है। यदि गाँव की भूमि और सम्पत्ति गाँव की ही हो जाय, तो ससार को नैतिक उन्नति करने का एक मार्ग मिल जायगा।

(४) आध्यात्मिक—"आध्यात्मिक महत्त्व की बात सबसे अत में कह रहा हूँ, पर इसके कारण इसका गुरुत्व कम नही है। लोग जब बोलते है, तो कहते है। 'यह मेरा घर है', 'वह मेरी जमीन है' आदि। इसी 'मेरा' और 'मेरी' के भाव ने मनुष्य को आसक्ति का दास बना दिया है। जब मनुष्य 'मैं' और 'मेरा' के रूप में सोचना बन्द कर देगा, और यह समझेगा कि ससार में जो कुछ है, वह हर किसीका है और ऐसा कुछ भी नही है, जो केवल मेरे 'भोग' के लिए है, तब वह शीघ्र ही मुक्ति-लाभ कर लेगा। आज हर किसीका मन बन्धन में बँधा है, क्योंकि 'मैं', 'मेरा' से लोग छुटकारा नही पा रहे हैं। इसी वजह से ऋषि-मुनियो द्वारा बताये गये मुक्ति के मार्ग पर चलने पर भी मुक्ति या मुक्ति नही मिल पा रही है। ऐसा प्राय कहा जाता है कि यदि मनुष्य सर्वस्व त्याग कर दे—घर छोडकर चला जाय, तब 'मैं' और 'मेरा' की भावना चली जायगी। किन्तु, ऐसे निषेधात्मक मार्ग से मुक्ति-लाभ नहीं किया जा सकता। साधारण तौर पर जिसे घर कहा जाता है, उसे हम अपना प्रकृत घर मानना छोड दें, तभी हमारी मुक्ति का मार्ग प्रशस्त होगा। हम इस

बात का दृढ़ विश्वास होना चाहिए कि सारा गाँव हमारा घर है और जिस घर में हम रहते हैं—जिसे हम अपना मकान सम्बोधित करते हैं, वह सबके लिए है। 'मैं किसीके लिए नहीं हूँ, और 'कोई मेरे लिए नहीं है'—इस भ्रान्त धारणा से मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती। 'मैं सबके लिए' और 'सब मेरे लिए'—ऐसा विचार रखने से ही मुक्ति मिल सकेगी।

"अतीत काल में मुक्ति साधना के लिए इसी भाव को ग्रहण करने के बहुत प्रयत्न हुए हैं कि 'मेरा कुछ नहीं है'। इसीलिए संसार को छोड़कर चले जाने और लोक-संसर्ग से दूर जाकर एकान्तवास करने का शौक इस देश में रहा है। ऐसा समझा जाता रहा है कि मुक्ति पाने का यही सरलतम उपाय है। किन्तु मुक्ति प्राप्ति का ऐसा कोई सीधा रास्ता नहीं है। मनुष्य सब छोड़कर चला तो जाता है, फिर भी 'लँगोटी' पर उसकी आसक्ति रह ही जाती है। इससे कुछ काम नहीं होता। इसलिए हमें यह विचार ग्रहण करना पड़ेगा कि हमारा जो कुछ है, वह सब गाँव का है। यही नहीं, हम स्वयं भी गाँव के हैं और गाँव हमारा है। इस विश्वास से ही शीघ्र मुक्ति प्राप्त कर सकना सम्भव होगा।"

प्रेम और आत्मत्याग-भाव का विकास

साधारण तौर पर देखने से संसार स्वार्थी प्रतीत होता है। जिधर भी दृष्टि जाती है, उधर स्वार्थपरता, ईर्ष्या और हिंसा की लीलाएँ दिखाई पड़ती हैं। व्यक्ति-व्यक्ति में, परिवार-परिवार में, जाति-जाति में वर्ग-वर्ग में देश-देश में स्वार्थपूर्ण संघर्ष, परस्पर ईर्ष्या भाव तथा हिंसा का विकट स्वरूप दिखाई पड़ता है। ऐसी अवस्था में, इतने कम समय में, समस्या की तुलना में बहुत कम होने पर भी, कैसे इतनी भूमि भूदान-यज्ञ में प्राप्त हो सकी?

मनुष्य में जिस प्रकार लोभ, अहिंसा और ईर्ष्या पायी जाती है उसी प्रकार उसमें आत्मत्याग का भाव भी विद्यमान रहता है। अपने जीवन में धीरे-धीरे हिंसा, ईर्ष्या और लोभ को दूर कर अहिंसा और प्रेमको अपनाने का प्रयत्न मनुष्य करता आ रहा है। मनुष्य और पशु के बीच यही अन्तर है। पशु आरम्भ में जैसे थे, वैसे ही अब भी हैं। किन्तु हिंसात्मक शक्ति के ह्रास एवं प्रेम शक्ति के विकास के द्वारा मनुष्य अपने में आश्चर्यजनक परिवर्तन ले आया है। इसी

तरह मानव-सभ्यता का स्वाभाविक विकास होता रहा है। अफ्रिका के गहन जंगलों में मनुष्य का जो नमूना अब भी दिखाई पड़ता है, अंडमान के गहन जंगलों में जखाज नामक जाति की जो हिंस्र मूर्ति अब भी दृष्टिगोचर होती है, उन सबसे उपर्युक्त कथन की सचाई का पता चलता है। मानव-सभ्यता के इतिहास में किसी-किसी मनुष्य ने तो प्रेम और आत्मत्याग-भावनों के क्षेत्र में इतनी अधिक प्रगति की कि उसे 'नर-नारायण', 'ईश्वर का अवतार' आदि संज्ञाओं से विभूषित किया गया। यह विशिष्ट लोगों की बात है।

किन्तु, साधारण क्षेत्र में प्रेम और अहिंसा को अपनाने के मामले में मानव-सभ्यता का विकास परिवार तक ही सीमित है। इसीलिए साधारण मनुष्य में त्याग और प्रेम का विकास सदा पाया तो जाता है, पर वह अपने परिवार और परिजनों तक ही सीमित रहता है। लोग अपने परिवार के लोगों के लिए कितना अधिक त्याग करते हैं, कितना अधिक दुःख-कष्ट सहने को तैयार रहते हैं। घर-घर में प्रेम और त्याग की अनुपम मनोवृत्ति देखी जाती है। माता-पिता पुत्र-पुत्री के लिए, सन्तान माता-पिता के लिए, पत्नी पति के लिए, पति पत्नी के लिए जो आत्मत्याग करता है, जो कष्ट सहता है, उसे देखकर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। यदि मनुष्य सम्पूर्ण ग्राम को अपना परिवार समझ ले, यदि मनुष्य गरीब को अपने परिवार का एक सदस्य और गरीब भूमिहीन को अपने परिवार का एक अन्यतम भागीदार समझ ले, तो भूदान-यज्ञ अविलम्ब ही पूर्ण सफलता प्राप्त कर लेगा। मानव-सभ्यता के इतिहास में मनुष्य ने जितनी भी संस्थाओं की सृष्टि की है, उनमें परिवाररूपी संस्था सर्वोपरि है। यहाँ मनुष्य ने दूसरे के लिए त्याग करने और दुःख-कष्ट सहने की शिक्षा पायी है। दूसरे में अपने को विकसित और प्रसारित करने की शिक्षा पायी है। दूसरे को अपने सदृश समझने की शिक्षा पायी है। किंतु, मानव-सभ्यता की प्रगति यहीं अवरुद्ध हो गयी है, क्योंकि मनुष्य ने परिवार में आत्म-त्याग और आत्म-विकास करने की जो शिक्षा पायी है, उसे अपने परिवार में, अपने पुत्र-परिजनों तक ही सीमित रखा है—उसे ग्राम या समाज तक फैलने नहीं दिया है। इसीलिए भूदान-यज्ञ का उद्देश्य मानव-सभ्यता को—प्रथमतः भारतीय सभ्यता को उच्च स्तर पर ले जाना है। भूदान-यज्ञ का उद्देश्य है—परिवार की विस्तार-सम्बन्धी धारणा को बदलना, प्रेम और त्याग के क्षेत्र को विस्तृत करना; ग्राम को-

सारे समाज को, अपना परिवार समझना और गरीब को—गरीब भूमिहीन को, अपना छठा पुत्र मानना। इसीलिए विनोबाजी ने कहा है। "मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि आप लोग अपनी सन्तान के प्रति जैसा स्नेह-भाव रखते हैं, वैसा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार दूसरों की सन्तान के साथ भी करें।" मनुष्य की आत्मिक शक्ति, मनुष्य के प्रेम और आत्मत्याग की शक्ति अपरिमित है। किन्तु, अभी अपने परिवार-परिजन की सीमा में ही यह शक्ति सोयी पडी है। इस सुप्त शक्ति को किस प्रकार जगाया जा सकता है ?

इस सुप्त शक्ति को जगाने के लिए पहले लोकमानस में विचार-क्रांति लाना आवश्यक होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति-बोध के आधार पर ही वर्तमान समाज-व्यवस्था कायम है। अतएव यह विचार-क्रांति होगी लोक-मानस से स्वामित्व-भाव को दूर करने से। किस प्रकार यह विचार-क्रांति समाज में आयगी ?

जिस प्रकार आत्मा की शक्ति अपरिमित है, उसी प्रकार विचार या चिन्तन की शक्ति भी अपरिमित है। कोई चिन्तन-धारा किसी व्यक्ति के मन में इस प्रकार बैठ जाती है कि वह उसके जीवन में क्रांति की सृष्टि कर देती है। ऐसा देखा जाता है कि किसी-किसी मनुष्य की विचारधारा में इतनी शक्ति रहती है कि वह दूसरे मनुष्यों के जीवन में, बल्कि सम्पूर्ण समाज के जीवन में आमूल परिवर्तन ला देती है। इसके लिए यह जरूरी है कि विचारधारा सत्य पर आधृत हो। भूदान-यज्ञ में निहित विचारधारा सत्य पर आधृत है और भारतीय समाज की वर्तमान अवस्था में जिन बातों की आवश्यकता है, उनके अनुकूल है। इस विषय को थोडा और स्पष्ट रूप में समझ लिया जाय। साधारण तौर पर धर्म-प्रचार और क्रांति (जिसे विनोबाजी "धर्म-चक्र-प्रवर्तन" कहते हैं) की चेष्टा—दोनों अलग-अलग चीजें हैं। ऋषि-मुनिगण ने तो सदा ही धर्म की शिक्षा दी है और उसका प्रचार भी किया है। किन्तु, समय की आवश्यकता क्या है, युग की पुकार क्या है—इसे पहचानकर इसके साथ धर्मविचार को संयुक्त करना दूसरी बात है। वही क्रांति का मार्ग है। वही 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' की पद्धति है। अर्थात् सत्पुरुष आते हैं और दिनानुदिन के प्रयोजन के लिए धर्म-प्रचार करते हैं। ऐसा चिरकाल से हो रहा है, पर इससे व्यापक रूप से कोई हृदय-परिवर्तन नहीं होता। किन्तु, जब कोई धर्म-विचार युग की माँग के साथ

जुड जाता है, तब हृदय-परिवर्तन होता है। इसीलिए महात्मा गाधी देश को सामुदायिक अहिंसा के पथ पर ले जाने में समर्थ हुए। विरोधी के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करना और अहिंसात्मक ढग से सघर्ष करना पुरानी बात है। किन्तु, उस समय युग की माँग थी स्वराज। यदि उस समय वे उसे स्वराज के साथ जोड नही देते, तो उन्हें कितने अनुयायी मिलते? अग्रेज बहुत शक्तिशाली थे और उनकी शस्त्र-शक्ति भी बहुत अधिक थी। हम थे नि शस्त्र। इसलिए अहिंसात्मक पथ से अग्रेजों के साथ युद्ध करना समीचीन था। किन्तु, केवल इससे ही काम नही चलता। देश की परिस्थिति भी अनुकूल थी। इस प्रकार आतरिक धर्म-विचार की शक्ति और परिस्थिति की शक्ति, दोनो को जोडकर वे देश को अहिंसा की शिक्षा देने में समर्थ हुए। उसी प्रकार भूमिहीन गरीबो को आज भूमि चाहिए। केवल इस देश के ही नही, बल्कि सारी दुनिया के, विशेष-कर एशिया के भूमिहीन गरीबो को भूमि चाहिए। जमीन न मिलने से वे किसी प्रकार भी शात नहीं रहेंगे—स्थिति यही है। इसके साथ ही आज एक धर्मबोध जाग्रत हो रहा है—भूमि पर सबका समान अधिकार है। क्षुधा-पीडित भूमिहीन पडोसी को भूमि देनी चाहिए। सबको उत्पादन के लिए मेहनत करनी होगी, तभी स्वाभाविक शातिपूर्ण समता आयेगी। उत्पादक के श्रम की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। यदि पाँच सौ वर्ष पूर्व इस धर्म-विचार का प्रचार किया जाता, तो कोई भी इस बात को न सुनता। किन्तु, आज की परिस्थिति इस धर्म-विचार को सुनने और अनुसरण करने के अनुकूल है। इस धर्म-विचार की शक्ति और वर्तमान परिस्थिति की शक्ति एक साथ जुड गयी है। बाहरी परिस्थिति के फलस्वरूप धर्म विचार सहज ही हृदय पर असर करता है और उससे हृदय-परिवर्तन होता है। साथ ही हृदय-परिवर्तन होने का प्रभाव बाहरी परिस्थिति पर भी पडता है। एक-दूसरे पर क्रिया-प्रतिक्रिया करता है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार फल से बीज होता है और बीज से फल।

किन्तु, इस विचारधारा के समाज में व्यापक रूप से प्रसार के लिए एक और वस्तु की आवश्यकता होती है। इस विचारधारा का प्रवर्तन कौन कर रहा है? केवल उच्च और शुद्ध जीवन ही दूसरे के जीवन को सुधारने और ऊँचा उठाने में समर्थ होता है। यदि ससार में एक भी शुद्ध सत्याग्रही रहता है, तो उसका प्रभाव सारे विश्व पर पडता है और सबका हृदय उसके प्रभाव से द्रवित

हो उठता है। तब यह जरूरी है कि उसके (सत्याग्रही के) हृदय मे सारे ससार के प्रति प्रेम-भाव रहे। हम लोगो के बीच समय-समय पर ऐसे पुरुषो का आविर्भाव होता है जिनका एकमात्र काम और उद्देश्य ससार का कल्याण होता है जिनके जीवन मे दूसरो की सुख-सुविधाओ के लिए आत्म त्याग छोडकर और कुछ नही होता, जिनका प्रेम सवव्यापी होता है और जो "आत्मौपम्य" विचार से सम्पन्न होते है अर्थात जो दूसरो के सुख दुःख को अपना सुख-दुःख मानते हैं और सवत्र समबुद्धिसम्पन्न होते हैं—मोटे तौर पर जो जन्मजात सत्याग्रही होते हैं। ऐसे मनुष्य को हम 'महापुरुष', 'महात्मा आदि नाम देकर अपने अन्तर की श्रद्धा प्रकट करते हैं। ऐसे मनुष्य के आह्वान से उसके दर्शन से और उसकी वाणी से हमारे हृदय मे निहित त्याग वृत्ति उदबुद्ध होती है हमारी सुप्त आत्म-शक्ति जागती है, हमारे अन्तर मे स्थित सकीर्णता का भाव नष्ट होता है और हमारे अन्तर में प्रकाश फूट पडता है। वे जिस चिन्तनधारा को ग्रहण करने के लिए मनुष्य का आह्वान करते हैं वह मनुष्य के जीवन पर शीघ्र ही अपूर्व प्रभाव डाल देती है। उनके त्याग या दुःख-कष्ट अपनाने के आह्वान पर हजारो, लाखो मनुष्य त्याग का व्रत ले लेते हैं और समाज कल्याण के पथ पर अग्रसर होता है और समाज में क्राति आती है। ऐसे एक महामानव हमारे बीच में थे—महात्मा गाधी। उनके आह्वान पर सम्पूण भारत त्याग-मत्र से, दुःख-कष्ट दूर करने के मत्र से उद्बुद्ध हो उठा था। वे चले गय है। आज उनके सर्वश्रेष्ठ अनुगामी आचार्य विनोबा भावे में अनुरूप विभूति का विकास हो रहा है। इसीलिए उनके द्वारा प्रवर्तित विचार इतने थोडे दिनो के भीतर ही सब श्रेणी और सब वग के लोग ग्रहण करने को आतुर हो उठे हैं। देश के बालकों और बालिकाओ को भी भूदान-यज्ञ के विषय में जानकारी हो गयी है। थोडे ही दिनो के भीतर देश के अनेक स्थानो म उसने क्रातिकारी वातावरण की सृष्टि कर दी है। हमारी विशाल समस्या की तुलना में बहुत कम होने पर भी थोडे ही दिनो के भीतर लोगो से प्रेमपूर्वक ४० लाख एकड भूमि उपलब्ध की जा सकी है।

इस विषय को और भी गम्भीर भाव से मनन करने की आवश्यकता है। अभी ऊपर जो महात्मा और महापुरुष की बात कही गयी है वास्तव म वे कौन हैं ? आत्मा अनन्तगुणसम्पन्न है। आत्मा में अनन्त शक्ति भरी है। समय और परिस्थिति के अनुसार समाज में उत्पन्न समस्या के समाधान के लिए आत्मा में

अहिंसात्मक प्रतिकार और सत्याग्रह का आविष्कार हुआ। महात्मा गांधी उसके निमित्त बने। मैंने कई बार यह बात कही है कि यदि महात्मा गांधी का आविर्भाव न होता, तो उनके स्थान पर अन्य किसीका आविर्भाव होता। किन्तु इस शक्ति के आविर्भाव से ही ऐसा होता। आवश्यकता थी इस शक्ति के ही आविर्भाव की, क्योंकि परिस्थिति और काल की यही मांग थी। लोगों ने देखा कि अहिंसा एक विराट् शक्ति है, जिसकी सहायता से उतनी बड़ी साम्राज्य-वादी शक्ति का विरोध कर सकना सम्भव हुआ और उसे हारकर चला जाना पड़ा। इससे एक चमत्कार यह प्रकट हुआ कि अत्याचारी और अत्याचार-प्रताड़ितों के बीच प्रेमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुए। अत्याचारी अत्याचारी नहीं रहा। दोनों ही परस्पर मित्र बन गये। इस प्रकार की शक्ति का आविर्भाव हुआ और उसके द्वारा हमने स्वाधीनता प्राप्त की। स्वाधीनता के लिए अनेक देशों ने अनेक प्रकार से प्रयत्न किये, किन्तु भारत ने यह नया आविष्कार किया। इससे मानव हृदय में नवीन शक्ति का आविर्भाव हुआ। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अब भारत की आर्थिक स्वाधीनता, दरिद्रता-निवारण और समता-स्थापना की समस्या उपस्थित है। इसीलिए आर्थिक क्षेत्र में तदुपयोगी शक्ति के आविष्कार की आवश्यकता आ पड़ी है और उसी शक्ति का आविर्भाव हो रहा है। इस शक्ति का नाम है 'सर्वोदय'। सर्वोदय की स्थापना के लिए जिस बुनियादी शक्ति की आवश्यकता है, उसका विकास आज सन्त विनोबा के माध्यम से हो रहा है। यहाँ विनोबाजी निमित्त-मात्र हैं। इसलिए यह कहना ठीक नहीं होगा कि जो बात अभी तक नहीं हुई है, वह भविष्य में कैसे होगी ?

इस विषय की एक अन्य प्रकार से भी व्याख्या की जा सकती है। जब-जब इस प्रकार की आत्मिक शक्ति के आविर्भाव की आवश्यकता होती है, तब-तब भगवान् एक मंत्र के रूप में उसे प्रदान कर देता है। विनोबाजी कहते हैं कि मंत्र का अवतार ही वास्तविक अवतार है। जिस मनुष्य विशेष के माध्यम से यह मंत्र सफल होता है, उसे हम लोग अवतार मान लेते हैं, किन्तु वास्तव में वह निमित्तमात्र का ही अवतार होता है।

जब यह समझा गया कि देश के सभी दुःखों का मूल पराधीनता है और केवल छोटे-छोटे दुःखों को दूर करने से काम नहीं चलेगा, तब दादाभाई नौरोजी

ने स्वराज्य का मंत्र देश के समक्ष उपस्थित किया। तब से इस मंत्र की साधना होती आ रही थी। किन्तु, एक बहुत ही शक्तिशाली जाति इस देश पर शासन करती थी। शासकों के हाथ में शस्त्रास्त्र थे और इस देश को उन लोगों ने निःशस्त्र कर रखा था। इसीलिए महात्मा गांधी ने सामुदायिक अहिंसा के आधार पर "भारत छोड़ो" मंत्र का उच्चारण किया। वह विराट् जन-आंदोलन में परिणत हुआ। सरकार ने उसके दमन के लिए यथासम्भव चेष्टा की। ऐसा लगता था कि आंदोलन का दमन हो रहा है, किन्तु वास्तव में वैसा नहीं हुआ। मंत्र का कभी भी दमन नहीं होता। उसके पीछे दर्शन रहता है—शक्ति रहती है। वह सूर्य-किरण की भाँति सर्वत्र पहुँचता है और सबके हृदय में स्थान-लाभ करता है। इस मामले में भी वही हुआ। इस महान् मंत्रोच्चारण के पाँच वर्षों के बाद ही अंग्रेजों को भारत छोड़कर चला जाना पड़ा। मंत्र सफल हुआ और हमने स्वराज प्राप्त किया। एक मंत्र की पूर्ति हुई और भगवान् ने हम लोगों को एक दूसरा मंत्र प्रदान किया। समाज का काम इसी प्रकार चलता रहता है।

इस प्रकार के मंत्र के तत्त्व की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं : "परमेश्वर एक परम तत्त्व है। इस तत्त्व से ही मंत्र स्फुरित होता है। मंत्र से महापुरुष प्रेरणा ग्रहण करते हैं। महापुरुषों के विचार समाज को चेतना प्रदान करते हैं। परमेश्वर प्रेरणा का क्षेत्र और मंत्र का मूल होता है। मंत्र के रूप में परम तत्त्व प्रकट होता है। एक अवतार का काम पूरा होने पर दूसरा अवतार प्रकट होता है। उसमें संसार सब समय तेजपूर्ण रहता है। यह ईश्वर की लीला है। रामचंद्र के समय एक मंत्र आया था। श्रीकृष्ण के समय दूसरा मंत्र आया। बुद्ध के समय तीसरा मंत्र आया। इसी प्रकार एक के बाद एक मंत्र आते गये और संसार उन्नति करता गया।

"एक मंत्र दूसरे मंत्र को जन्म देकर चला जाता है। इस प्रकार बीज से फल उत्पन्न होता है और फल से बीज। एक बीज लुप्त हो जाता है, दूसरा बीज अंकुरित होता है। इसी प्रकार एक मंत्र पूरा होता है, तब अन्य मंत्र का आविर्भाव होता है। संसार में किसी भी वस्तु का नाश नहीं होता, यह विज्ञान की मान्यता है। स्वराज भगवती अवतार की पूर्ति हो गयी, तब महात्मा गांधी ने एक और मंत्र देश को प्रदान किया। उन्होंने इस मंत्र को पहले से ही तैयार कर रखा था। इसका नाम है 'सर्वोदय'। इस मंत्र का बीज स्वराज-

आंदोलन-काल में ही बोया गया था। स्वराज-प्राप्ति के बाद वह अंकुरित हुआ है।"

सर्वोदय का रूप विशाल और व्यापक है। उसका एक-एक भाग लेकर हम लोग काम कर सकते हैं। भूमि-समस्या सर्वोदय की बुनियाद है। आज विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ का मंत्र देश को दिया है।

भारत में आत्मज्ञान का विकास

इस प्रसंग में एक और बात गम्भीरतापूर्वक समझनी आवश्यक है। भूदान-यज्ञ सत्य पर आधृत एक महान् विचार या सिद्धान्त है और यही विचार देश की वर्तमान आवश्यकता के अनुकूल है। इसके अतिरिक्त इसके प्रवर्तक और प्रचारक एक आत्मत्यागी एवं विश्वप्रेमी सन्यासी महापुरुष हैं। किन्तु, क्या केवल इन्हीं तीन कारणों से इतनी अल्पावधि में भूदान-यज्ञ इतना आगे बढ़ गया है, अथवा इन तीन कारणों को छोड़कर ऐसा कुछ भी है, जिसके कारण यह सम्भव हुआ है? हाँ, एक दूसरी बात भी है। भारतीय चरित्र में ऐसी एक विशिष्टता है, जिसके कारण भारतीय जनसाधारण भूदान-यज्ञ को इतने सहज भाव से अपना रहा है। वह विशिष्टता यह है कि भारत का हृदय, अर्थात् भारतीयों का हृदय, निर्मल और अविकृत है। महात्मा गांधी ऐसा कहते थे, और विनोबाजी भी कहते हैं। इसी कारण भूदान-यज्ञ के विचार को जन-साधारण ने इसने सहज भाव से और इतनी अल्पावधि में समझ लिया है और इसने सहज ही जन-हृदय का स्पर्श किया है। हृदय के पवित्र और विकार-रहित होने के क्या लक्षण हैं? हम लोग मस्तिष्क-प्रसूत बुद्धि के द्वारा किसी बात को समझते हैं। किन्तु, किसी सद्विचार को समझने और तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने से ही मनुष्य तदनुसार आचरण नहीं करने लगता। केवल वे ही लोग ज्ञान-प्राप्ति के साथ-साथ तदनुरूप आचरण करते हैं, जिनका हृदय स्वच्छ और निर्मल होता है। इतने दिनों तक जो उस व्यक्ति ने ऐसा आचरण नहीं किया, इसका कारण यह है कि अब तक उसे इस सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त नहीं था। किन्तु, जिसका हृदय स्वच्छ और निर्मल नहीं है, वह व्यक्ति समझ-ज्ञान पर अपनी बुद्धि से समझ तो लेगा, परन्तु तदनुसार आचरण नहीं कर पायेगा। इस सम्बन्ध में उसका ज्ञान शाब्दिक ज्ञान-मात्र होगा। यह ज्ञान उसके हृदय पर

सहज ही असर नहीं डालेगा। दूसरे को अपने समान समझना और उसके ति तदनुरूप आचरण करना 'आत्मौपम्य' वृत्ति है। अपने पड़ोसी को अपने समान समझना और तदनुरूप आचरण करना सर्वोदय की मूल बात है और यही भूदान-यज्ञ की प्रेरक भावना है। इसका मर्म यही है कि हम अपने को केवल शरीर तक ही सीमित न समझें। केवल पड़ोसी ही नहीं, बल्कि सारा समाज हम लोगों का व्यापक रूप है। साधारण तौर पर भारतीयों का हृदय निर्मल और शुद्ध है, किन्तु उनका आत्मज्ञान संकुचित हो गया है, क्योंकि उन्हें आत्मज्ञान की व्यापकता की शिक्षा नहीं दी गयी है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने व्यक्तिगत धर्म की शिक्षा दी, सामुदायिक धर्म की नहीं। इसीलिए हृदय के स्वच्छ और निर्मल रहने पर भी भारत में इतने दिनों तक सामुदायिक क्षेत्र में इस 'आत्मज्ञान' धर्म का आचरण नहीं किया जा सका। विनोबाजी कहते हैं : "मैं ग्राम-ग्राम में जाकर एक ही बात समझाता हूँ। उसका सार यही है—अपने को अपने शरीर तक ही सीमित न समझिये। भारत में इस प्रकार के वेदान्त का प्रचार कम नहीं हुआ है। आत्मा सर्व-व्यापक है—यह बात तो इस देश के सभी लोग कहते हैं, किन्तु शाब्दिक ज्ञान एक बात है और उस विचार का जीवन में प्रयोग करना दूसरी बात। भारत में शाब्दिक ज्ञान इतनी दूर तक पहुँच चुका है कि केवल मनुष्यों में ही नहीं, सभी प्राणियों में एक ही आत्मा विराजमान है, ऐसा कहा जाता है। किन्तु, व्यवहार में दृष्टिकोण इतना संकुचित है कि अपने शरीर और आसपास को छोड़कर और किसी बात की चिन्ता नहीं की जाती। भारत का आत्मज्ञान इतना संकुचित हो गया है। माँ अपनी सन्तान के लिए त्याग करती है, क्योंकि वह उसमें अपना स्वरूप देखती है। उसका आत्मज्ञान अपनी सन्तान तक ही सीमित रहता है। माँ अपनी सन्तान को प्यार करती है, परन्तु दूसरों की सन्तान के प्रति उसका वह प्रेम नहीं होता, क्योंकि वह उसमें अपनी आत्मा का अनुभव नहीं करती। बात करते समय तो वह आत्मज्ञान की बातें कर जाती है, परन्तु फिर वह अनुभव करती है कि उसकी आत्मा केवल उसकी सन्तान तक ही सीमित है। संस्कृत में बच्चे को सन्तान या संतति कहा गया है। संतति का अर्थ है विस्तार। माँ समझती है कि सन्तान मेरा ही विस्तार है, मेरा ही एक रूप है। इतने तक ही उसका आत्मज्ञान सीमित है। किन्तु, अब

से उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि अपना स्वरूप इतना छोटा नही होता, वह व्यापक है।" आज भूदान-यज्ञ के माध्यम से भारतवासियो को अपने आत्म-ज्ञान का विस्तार करने की शिक्षा दी जा रही है और इसीलिए जहाँ खूब लगन से काम किया जाता है, वहाँ लोग बहुत शीघ्र भूदान-यज्ञ को हृदय से ग्रहण कर लेते हैं। अवश्य ही इसके पीछे महात्मा गांधी की शिक्षा की महान् पृष्ठ-भूमि है। वास्तविक रूप में भूदान-यज्ञ का आधार महात्मा गांधी द्वारा प्रदत्त शिक्षा ही है।

भारत के आत्मज्ञान-विकास के सम्बन्ध में विनोबाजी ने और भी कहा है : "किन्तु, मेरा विश्वास है कि हमारे हृदय में वैसी कुछ खराबी नही है। यदि वैसा होता, तो भूदान-यज्ञ का इतना व्यापक प्रचार न होता। इसी-लिए मैं सोचता हूँ कि भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल है। किन्तु, हमारा आत्मज्ञान सकुचित हो गया है। बच्चो का हृदय स्वच्छ और निर्मल होता है, किन्तु उनमे ज्ञान नही होता। इसीलिए वे दूसरो को कष्ट दे सकते हैं। एक कुत्ता दूसरे कुत्ते से भोजन छीन लेता है, क्योकि उसका आत्मज्ञान बहुत सकुचित होता है। उसे अपने शरीर का तो ज्ञान रहता है, परन्तु आत्मा का नही। बच्चो की भी यही अवस्था रहती है। केवल खाने की बात बच्चे जानते हैं, क्योकि उनका हृदय निर्मल तो रहता है, पर आत्मा का ज्ञान उन्हें नही होता। जहाँ आत्मा का ज्ञान उन्हें सिखा दिया जाता है, वहाँ वे बहुत जल्दी समझ जाते हैं। मैंने देखा है कि जिन बच्चो को अपने माता-पिता से आत्मज्ञान की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि दूसरो को चीज देनी चाहिए, वे दूसरो को कुछ देते समय आनन्द का अनुभव करते हैं। बच्चा जन्म-ग्रहण करने के बाद अपने शरीर तक ही सीमाबद्ध रहता है। शरीर से भी बड़ी कोई चीज है, यह वह नही सोच पाता, क्योकि उसे आत्मा का ज्ञान नहीं होता। किन्तु, जभी उसे आत्मज्ञान की शिक्षा दे दी जाती है, तभी वह उसे समझ जाता है। उसे केवल सस्कार की आवश्यकता पड़ती है। इसी प्रकार भारत का हृदय शुद्ध और निर्मल तो है, किन्तु उसे सस्कार की आवश्यकता है। भारतवासियो को यह समझाने की आवश्यकता है कि 'भाई, तुमने अपने को अपने शरीर तक ही सीमित रखा है, यह गलत है। सम्पूर्ण समाज आत्मा का व्यापक रूप है—अपनी ही सन्तति है।' यह बात समझाने से लोग समझ रहे हैं, ऐसा मेरा अनुभव है।"

भारतवासियों के आत्मज्ञान के सम्बन्ध में विनोबाजी के जिन दो प्रवचनों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमें असामजस्य प्रतीत हो सकता है। वह यह है। विनोबाजी ने एक स्थान पर कहा है : "भारत में वेदान्त का कम प्रचार नहीं हुआ है। आत्मा सर्वव्यापक है, यह बात तो इस देश के सभी लोग कहते हैं। केवल मनुष्यों में ही नहीं, सभी प्राणियों में एक आत्मा विराजमान है। किन्तु वह शाब्दिक ज्ञान-मात्र है। इसीलिए वह हृदय पर असर नहीं कर पाता।" किन्तु, अन्यत्र उन्होंने कहा है : "हमारा आत्मज्ञान सकुचित हो गया है, किन्तु भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल है। इसीलिए भूदान-यज्ञ के विचार के माध्यम से जनसाधारण को आत्मज्ञान की शिक्षा देने-मात्र से ही उनके हृदय पर इतनी जल्दी असर हो रहा है।" जरा गम्भीरतापूर्वक सोचने से इस बात का पता चल जायगा कि इनमें असामजस्य नहीं है। आत्मा सर्वव्यापक है—इसकी शिक्षा देना या इसका ज्ञान होना एक बात है और इस आदर्श का जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोग करने की प्रक्रिया और कौशल की शिक्षा देना दूसरी बात। माँ यदि अपने बच्चे को यह शिक्षा दे भी कि केवल मनुष्यों में ही नहीं, बल्कि प्राणिमात्र में एक ही आत्मा विराजमान है, तब भी शिशु दूसरे प्राणियों को कष्ट देने में दुविधा का अनुभव नहीं करेगा। किन्तु माँ यदि बच्चे को यह शिक्षा दे कि अपनी चीज दूसरे को देने के बाद भोजन करना चाहिए, तब वह वैसा ही आचरण करने लगेगा। साधारण तौर पर किसी महान् आध्यात्मिक आदर्श की शिक्षा देने पर मनुष्य उसे बोलना और मन में अनुभव करना तो सीख जायगा, पर हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल रहने पर भी वह उसे जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र में प्रयुक्त करना सहज ही नहीं सीख पायेगा। आत्मज्ञान के महान् आदर्श का प्रयोग किस प्रकार जीवन में किया जाय, इसकी शिक्षा देना ही आत्मज्ञान की शिक्षा देने का वास्तविक अर्थ है। इसीलिए भारत में वेदान्त का काफी प्रचार होने और भारत का हृदय स्वच्छ, शुद्ध और निर्मल रहने के बावजूद वेदान्त का ज्ञान सात्त्विक ज्ञान ही बना रहा। किन्तु जब भूदान-यज्ञ की विचारधारा के माध्यम से आत्मज्ञान की शिक्षा प्रचारित होने लगी, तब भारत उसे इतनी जल्दी और सहज भाव से अपने व्यावहारिक जीवन में ग्रहण कर रहा है।

क्रान्ति की अभिव्यक्ति के क्रम

तीन क्रमो से 'विप्लव' या 'क्राति' की अभिव्यक्ति होती है। प्रथम चिन्तन से, द्वितीय वचन से और तृतीय आचरण या कार्य से। तीन पर्यायो से क्राति की परिणति भी होती है। प्रथमत विशिष्ट या विशेष-विशेष लोगो के जीवन में, द्वितीयत जन-समुदाय के जीवन में और अत मे समाज में दृढता-पूर्वक प्रतिष्ठापना में। इसका अर्थ यह हुआ कि पहले हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन और अत में समाज-परिवर्तन होता है। विनोबाजी ने अपने एक भाषण में यह बात अनुपम ढग से कही है "जो कोई भी क्राति हो, पहले चिन्तन में आती है, फिर वह वचन में प्रकाशित होती है—सकल्प के रूप में आती है। इसके बाद कार्य-क्षेत्र में उसका विकास होता है। यह काम भी पहले व्यक्तिगत रहता है, फिर सामूहिक होता है। इसके बाद उस पर सारे समाज की मुहर लगती है। इसी प्रकार धर्म-विचार पहले किसी व्यक्ति के चित्त में अकुरित होता है और बाद में सारे समाज में स्मृति या विधान के रूप में स्थायी रूप से प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। तदुपरान्त उसे रूढ आचार या धर्मनिष्ठा के रूप में माना जाता है। मैं एक उदाहरण दे रहा हूँ। आज चोरी करना अन्याय माना जाता है। सारा समाज और विधान उसके विरुद्ध है। किन्तु, चोरी के विरुद्ध विधान है, इसीलिए लोग चोरी नही करते, ऐसा कहना ठीक नहीं है। चोरी करना मानवता के विरुद्ध है, इसे मानव की विवेक-बुद्धि ने मान लिया है। इसीलिए इस भावना ने धर्मस्मृति और कानून, दोनो में स्थान पा लिया है। आरम्भ मे यह विचारधारा नही थी, किन्तु जैसे-जैसे नीति-विचार बढा, वैसे-वैसे निष्ठा भी बढी। मैंने सामाजिक निष्ठा का एक उदाहरण दिया। इसी प्रकार अपनी जरूरत के अतिरिक्त जमीन नहीं रखनी चाहिए, विशेष सचय करना उचित नहीं है—अधिक सग्रह करना चोरी करने-जैसा ही पाप है यह धर्म विचार हमें ग्रहण करना पडेगा। यह विचार कोई नया नहीं है—बहुत पुराना है। महर्षि लोग अपने जीवन में इसका प्रयोग करते थे। व्यक्तिगत रूप से इस विचार का अपने जीवन में प्रयोग करनेवाले महात्मा और साधु-सन्त हुए हैं। किन्तु, जनसाधारण में चोरी के विरुद्ध जैसा मनोभाव है, सग्रह करने के विरुद्ध वैसा दृढ और तीव्र मनोभाव नहीं है। वैसे मनोभाव

की अभी सृष्टि करनी होगी। इसीलिए मैंने इस आदोलन को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है, क्योकि इसके द्वारा एक विचारधारा को सामाजिक क्षेत्र मे प्रतिष्ठित करना होगा। असग्रह और अपरिग्रह केवल ऋषियो और साधु-सन्यासियो के लिए आचरणीय है, ऐसा ही अब तक माना गया है। किन्तु, यह साधारण लोगो का भी, गृहस्थो का भी, जीवन का मूलाधार होना चाहिए। ऐसा न होने से शोषण का अत नही होगा। इस धर्मविचार को सामाजिक निष्ठा के रूप में प्रतिष्ठित करना होगा। इसका आरम्भ विचार-क्राति मे और परिणति सामाजिक क्राति में होगी।" इस प्रकार शातिपूर्ण ढग से सद्भावना जाग्रत कर क्राति की सृष्टि करना भूदान-यज्ञ-आदोलन का चरम लक्ष्य है। वे कहते हैं, "मैं न्याय और प्रेम, दोनो को एकत्र करना चाहता हूँ। इसे सूर्य-चन्द्र कह लीजिये। दोनो ही ईश्वर के दो नेत्र हैं। दोनो चक्षुओ के एक साथ मिलने से ही सम्पूर्ण तेज प्रकट होगा।"

भूदान-यज्ञ का मूल तत्त्व

यही भूदान-यज्ञ का मूलभूत सिद्धान्त है। सर्वोदय-विचार का मूल भी यही है। यह कोई खड-विचार भी नही है। यह जीवन का समग्र महान् सिद्धान्त है और जीवन में इसके प्रयोग के उपाय है। मोटे तौर पर, वैदिक धर्म का सार इसीमें निहित है और यही सूत्ररूप में 'ईशावास्य' के मत्रो में सचित है। "ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्य स्विद्धनम्।" ससार में जो कुछ है, सब ईश्वरमय है—सब ईश्वर का है। वही एकमात्र स्वामी है। यह समझकर हमें सब कुछ उन्हें अर्पित कर देना चाहिए और जो कुछ उनसे मिले, उसे उनका प्रसाद मानकर, उसीसे सतुष्ट होना चाहिए। यहाँ मेरा कुछ नही है, सब कुछ भगवान् का है—यह भावना जीवन में प्रतिष्ठित करनी पड़ेगी। जो व्यक्ति यह समझकर जीवन-यापन करेगा, उसे किसीके धन की अभिलाषा नही रहेगी। ईश्वर को समर्पण, उनसे जो कुछ प्राप्त हो, उसे प्रसाद मानकर ग्रहण करना, ईर्ष्या न करना और धन की लालसा न रखना—यह एक स्वय सम्पूर्ण धर्मविचार है और यही साधना का उपाय है। इसीको सामुदायिक धर्म के रूप में, समाज-निष्ठा के रूप में, ग्रहण करना होगा। हमारे देश में अनेक साधु-सन्तो ने

जन्म लिया है। साधुओं ने ध्यान-जप आदि की शिक्षा दी है, किन्तु सामूहिक धर्म क्या है, इसकी उन्होंने शिक्षा नहीं दी। इस सम्बन्ध में प्रजा-समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायणजी ने जो कहा है, वह यहां उल्लेखनीय है। "आप लोग यह प्रश्न कर सकते हैं—'आप जिस विषय को उठा रहे हैं, उसके विषय में तो ऋषि-मुनियों ने बहुत-कुछ किया, किन्तु उससे समाज में परिवर्तन क्यों नहीं हुआ?' इसके उत्तर में मैं कहूंगा : उनकी असफलता का कारण यह है कि उनका सिद्धान्त एकांगी था। उन लोगों ने केवल व्यक्ति पर मनोयोग दिया था। वे समझते थे कि जो कुछ भी खराबियां हैं, वे सब व्यक्ति में ही हैं। बुद्ध का निदान यह है कि तृष्णा ही सब दुःखों की जड़ है। एक तरह से यह सत्य है। किंतु एक बच्चे का राजा के घर जन्म हो और एक का गरीब के घर में—इसका कारण तो तृष्णा नहीं है। इसी प्रकार हम समाजवादी समाज के परिवर्तन पर विशेष जोर देते हैं। ऋषि-मुनि समझते थे कि सब कुछ अंतः-करण में ही है और हम ऐसा समझते हैं कि बाहर ही सब कुछ है। मेरे विचार में ये दोनों ही विचार एकांगी होने के कारण दोषी हैं। मैं चाहता हूँ कि इन दोनों का समन्वय हो। यदि इनमें से किसी एक को हम छोड़ दें, तो उत्तम समाज-रचना नहीं की जा सकेगी। दोनों को ग्रहण करने से ही अच्छे समाज की प्रतिष्ठा सम्भव हो सकती है।"

महात्मा गांधी ने देश को सामुदायिक धर्म की शिक्षा देने का व्रत लिया था। व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन एक और अविभाज्य है, यह समझा-कर उन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में सत्य और अहिंसा के प्रयोग की शिक्षा दी और अहिंसक समाज-रचना के उद्देश्य से देश को तैयार करने के लिए रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था की। जीवन के एक क्षेत्र में प्रतिष्ठित होने पर अहिंसा स्वयमेव अन्यान्य क्षेत्रों में प्रसारित हो जाती है। देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का प्रयोग हुआ था। किन्तु, उस समय की परिस्थिति में वह अहिंसा दुर्बलों की—लाचारों की अहिंसा थी। इसलिए राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा प्रतिष्ठित नहीं हुई। आज राजनीतिक क्षेत्र में उसके प्रयोग के लिए समय नहीं है। देश और काल की परिस्थिति के प्रयोजन को देखते हुए आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में अहिंसा का प्रयोग करने का समय आ गया है। गांधीजी की अनुपस्थिति में उस महान् काम को भगवान् ने विनोबाजी के हाथ में सौंपा है।

अभी प्रश्न यही है कि इस सामुदायिक धर्म की प्रतिष्ठा करने का उपाय क्या है? आज जन-साधारण द्वारा निर्वाचित सरकार स्थापित है। क्या उसके माध्यम से इस महान् उद्देश्य की पूर्ति सम्भव है? पहले ही कहा गया है कि इस धर्म को समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए विचार और आचार की महान् क्रांति की सृष्टि करनी होगी। राजसत्ता विचार-विप्लव या निष्ठा-विप्लव करने में अक्षम है। राजसत्ता केवल अनुसरण करनेवाली हो सकती है—वह समाज की पथ-प्रदर्शिका नहीं हो सकती। किसी मौलिक भावधारा की सृष्टि वह नहीं कर सकती। जब किसी विचार को मनुष्य की विवेक-बुद्धि मान लेती है और उसके अनुसार आचरण होने लगता है, तभी कोई राष्ट्र विधान बनाकर और उस पर अपनी मुहर लगाकर उसे कानून का रूप दे सकता है—साथ ही, दण्डशक्ति के सहारे उसे सार्वजनिक रूप दे सकता है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है : "विचार-प्रचार तो नेताओं और विचार-प्रवर्तकों का काम है। क्रांतिकारी विचार जब लोग मान लेते हैं, तब सरकार को उसके प्रयोग की व्यवस्था करनी पड़ती है और यदि सरकार ऐसा नहीं करती है, तो उसे बदल दिया जाता है। 'शून्य' का जो मूल्य है, मैं सरकार का वही मूल्य समझता हूँ। जनशक्ति के साथ सरकार की शक्ति मिलने से ही सरकार का मूल्य बढ़ता है। जब विचार प्रचारित हो जाता है, तब उसके अनुकूल राज्य का गठन होता है। ऐसा न होने पर राज्यक्रान्ति हो जाती है। जब मार्क्स ने विचार-प्रवर्तन किया, तब लेनिन के नेतृत्व में रूस में क्रान्ति हो गयी। रूसो और वाल्टेयर द्वारा प्रवर्तित विचार-क्रांति ने फ्रांस में राज्यक्रान्ति करा दी। मेरा खयाल है कि हमारी विचार-धारा के आधार पर जनमत संगठित होने मात्र से सरकार उसे मान लेगी। यदि सरकार उसे नहीं मानेगी, तो उसे समाप्त होना पड़ेगा और मेरा मुझे दुःख नहीं होगा।"

दिखा देना और वह पथ ठीक कर देना ही उनका काम है। "बैलगाडी मे दो बैल जुते रहते हैं। मैं यदि तीसरा बैल बनकर गाडी में कधा लगाऊँ, तब क्या गाडी को विशेष सुविधा होगी ? उससे अच्छा तो यह होगा कि जिस रास्ते जाना है, उसीको ठीक कर दूं। इससे गाडी का सर्वाधिक उपकार कर सकूँगा।" उन्होने राज्यसत्ता को 'दडशक्ति' नाम दिया है। विनोबाजी कहते हैं 'आज हमारी जो सरकार है, उसके हाथ में हमने 'दडशक्ति' सौप दी है। हिंसा इस 'दडशक्ति' का अश बन गयी है, फिर भी हम उसे हिंसा नही कहना चाहते है। हम उसे हिंसा से पृथक् एक श्रेणी में रखना चाहते हैं। हम उसे हिंसाशक्ति से अलग 'दडशक्ति' कहना चाहते है, क्योंकि सम्पूर्ण जनगण ने यह शक्ति सरकार के हाथ में सौप दी है। इसीलिए वह हिंसाशक्ति नही, बल्कि दडशक्ति है।"

राष्ट्र-नायकों की करुण अवस्था

विनोबाजी की धारणा है कि देश के कर्णधारो की अहिंसा मे आस्था है। उनका हृदय यह अनुभव करता है कि अहिंसा के अलावा समस्या के समाधान का और कोई मार्ग नही है। किन्तु, जब वे अपनी बुद्धि से चिन्तन करते हैं, तब वे अपने दायित्व का विवेचन करते हुए ऐसा अनुभव करते है कि अहिंसा पर निर्भर करने का साहस उनमें नही है। बुद्धि के निर्देश पर वे काम करते है। उनकी बुद्धि उन्हें कह देती है: "हम सेनाओ को नही हटा सकते। हम जिस जनता के प्रतिनिधि हैं, उसमें उतनी शक्ति नही है—बिना सैनिक सहायता के चलने की उसमें योग्यता नही है। इसीलिए उसके प्रतिनिधि-स्वरूप हम अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि हमें अपनी सेनाओ का सृजन, वृद्धि और सगठन करना चाहिए।" इस प्रकार उनका हृदय एक बात को मानता है, किन्तु उनकी यथार्थ स्थिति से प्रभावित बुद्धि उल्टी बात बता देती है। हृदय और बुद्धि के परस्पर विरोध की स्थिति में उन्हें विवश होकर सैन्यबल का आश्रय ग्रहण करना पडता है। उनका हृदय रचनात्मक काम में विश्वास करता है, किन्तु उनकी बुद्धि यह कहने का साहस नही करती कि चरखा या अन्य ग्राम्य शिल्प युद्ध-यत्र को मजबूत बना सकते हैं। यह उन लोगो का प्रपच नही है, बल्कि उनकी नितान्त करुण अवस्था है। विनोबाजी ने कहा है: "आत्म निरी-

क्षण करते हुए मैं कहता हूँ कि जो लोग आज अधिकारी-पदों पर आसीन हैं, यदि उनके स्थान पर हम होते, तो वे लोग जो कुछ कर रहे हैं, उससे बहुत भिन्न हम कुछ कर लेते, ऐसी बात नहीं है। यह स्थान ही ऐसा है। ये जादू के आसन हैं। इन आसनों पर जो कोई बैठेगा, उस पर एक संकुचित, सीमाबद्ध, अस्वाभाविक और अस्वाधीन सीमा का दृष्टिकोण रखकर सोचने का भार आ पड़ेगा। जिसे मैंने अस्वाधीन नाम दिया है, उसी सीमाबद्ध स्थान में असहाय अवस्था में रहकर, संसार स्रोत जिस दिशा में बह रहा है, उसी दिशा में दृष्टि रखकर सोचने का भार आ पड़ेगा।" इस अवस्था से त्राण पाने का उपाय क्या है? विनोबाजी ने कहा है कि देश के कर्णधार ऐसा कहते हैं कि "हम लोग जो काम कर रहे हैं, वह आप लोग न करें। इस काम में आप अपने को न उलझायें, बल्कि हम जो अभाव अनुभव कर रहे हैं, वह यदि आप लोग पूरा कर सकते हैं, तो करें।" विनोबाजी कहते हैं "इसी आशा में वे लोग हमारी ओर देख रहे हैं। यह हम लोगों को अच्छी तरह समझना होगा और इस दृष्टि से मैं जिसे 'स्वतंत्र लोकशक्ति' कहता हूँ, उसके निर्माण में सबको आत्मार्पण करना पड़ेगा। वैसा करके ही हम राज्यशक्ति को वास्तविक सहायता पहुँचायेंगे और देश की समुचित सेवा करेंगे।"

दंड-निरपेक्ष जनशक्ति

यह 'स्वतंत्र लोकशक्ति' क्या है? यह 'राज्यसत्ता' या 'दंडशक्ति' नहीं है। यह दंड-शक्ति से भिन्न है। इसके अतिरिक्त यह हिंसा-विरोधी है। विनोबाजी ने चांडील-सर्वोदय-सम्मेलन में अपने प्रथम भाषण में इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार प्रकट किये थे। पहले कहा गया है कि क्रांति पहले चिन्तन में उदित होती है और बाद में कार्य में या रूढ़ आचरण में परिणत होती है। इसके अतिरिक्त क्रांतिमूलक आचरण पहले विशेष-विशेष व्यक्ति में सीमाबद्ध रहता है और अंत में सम्पूर्ण समाज में समाजनिष्ठा के रूप में प्रतिष्ठित होता है। अतएव क्रांति की यह अन्तिम परिणति जब रूढ़ आचरण और सम्पूर्ण समाज में प्रतिष्ठा के रूप में होती है, तब वही 'स्वतंत्र लोकशक्ति' की अभिव्यक्ति कहलाती है। शांति और प्रेम के मार्ग से ही यह सम्भव है। यह समाज की मनस्तात्त्विक अवस्था मात्र नहीं है। इसके अतिरिक्त रूढ़ सामाजिक

निष्ठामूलक आचरण मे यह प्रकट होती है। ऐसी अवस्था मे सार्वजनिक रूप से इसका आचरण विधान या कानून पर निर्भर नही करता। शांतिपूर्वक विचार-प्रचार करने से लोगो मे एक ऐसी मनोवृत्ति की सृष्टि होगी, जिसके फलस्वरूप कानून हो या नही, लोग विचार-बुद्धि की प्रेरणा से वैसा काम करेंगे—लोग जमीन का बँटवारा कर लेंगे। इस प्रसंग मे विनोबाजी कहते हैं : "माता क्या किसी कानून से बाध्य होकर बच्चे को दूध पिलाती है ?" इससे हम अहिंसक क्रांति और जनशक्ति का स्वरूप समझ सकते हैं। हिंसा तो दूर की बात है, दडशक्ति का प्रयोग करने की भी आवश्यकता न रहे, समाज में ऐसी परिस्थिति पैदा करनी होगी और इसमें सफलता प्राप्त करना सर्वोदय-प्रेमियों का ही काम है।" विनोबाजी कहते हैं : "यदि हम वैसा कर सके, तब हमें समझना चाहिए कि हमने अपना धर्म पहचान लिया है और तदनुसार आचरण करना सीख लिया है। यदि हम वैसा न कर सकें और दडशक्ति के प्रयोग से जितनी सेवा सम्भव है, उतने तक ही अपने को सीमित रखें, तो हमसे विशेष कार्य की पूर्ति की जो आशा की जाती है, उसे हम पूरा नही कर सकेंगे। इतना ही नहीं, हम बोझ-स्वरूप हो जायँगे, ऐसी सम्भावना है।"

समस्या के समाधान में कानून का स्थान

कानून के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान करने के बारे में विनोबाजी कहते हैं : "मुझसे अनेक लोग प्रश्न करते हैं कि 'सरकार पर आपका प्रभाव है, ऐसा प्रतीत होता है। आप इसके लिए सरकार पर दबाव क्यो नही देते कि बिना मुआवजा के भूमि-वितरण के मार्ग को वह खोल दे। आप अपने प्रभाव का उपयोग इस दिशा मे क्यों नही करते ?' ऐसा प्रश्न अनेक लोगो ने मुझसे किया है। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि भाई, कानून-निर्माण के मार्ग में मैं बाधा नही दे रहा हूँ। आप लोग जैसा चाहते है, उसी दिशा मे एक कदम और अग्रसर होने को मुझसे कहते हैं, तो मैं कहता हूँ कि जिस पथ पर मैं बढ़ रहा हूँ, यदि इसमे मैं पूर्ण सफलता यानी सोलह आने सफलता प्राप्त न कर बारह आने या आठ आने भी सफलता प्राप्त कर सका, तो इससे भी कानून-निर्माण में मदद मिलेगी। पहली बात तो यह कि मैं कानून-निर्माण के मार्ग में बाधा नहीं दे रहा हूँ। दूसरी बात यह कि, मैं कानून-निर्माण के लिए सुविधा दे

कर रहा हूँ। उसके लिए मैं अनुकूल वातावरण बना रहा हूँ, जिसमें कि कानून सहज ही बन सके। किन्तु, यदि इससे भी एक कदम आगे मैं आपकी ओर अग्रसर होऊँ और यह रटता रहूँ कि 'कानून के बिना यह काम नहीं होगा, कानून बनाना ही होगा' तो मैं स्वधर्मच्युत समझा जाऊँगा। वह मेरा धर्म नहीं है, बल्कि यह विश्वास करना मेरा धर्म है कि बिना कानून के सहारे के ही जनता के हृदय में ऐसी भावधारा की सृष्टि कर सकूँगा, जिसके फलस्वरूप कोई कानून न बनने पर भी लोग भूमि-वितरण कर लेंगे। माता किसी कानून के भय से सन्तान को दूध नहीं पिलाती। मनुष्य के हृदय में ऐसी एक शक्ति है, जिससे उसका जीवन समृद्ध होता है। प्रेम ही मनुष्य के जीवन का एकमात्र आधार है। प्रेम से ही उसका जन्म होता है, प्रेम के वातावरण में ही उसका लालन-पालन होता है और अंत में जब उसे इस संसार से जाना पड़ता है, तब वह एक प्रेमपूर्ण दृष्टि अपने चारों ओर डाल लेता है और यदि उसका प्रेमी उससे मिलने के लिए आया होता है, तो उसे देखकर सानन्द शरीर-त्याग कर इस संसार से चला जाता है। अतएव प्रेम की इस शक्ति को अनुभव करने पर भी उसे अधिक सामाजिक रूप में विकसित करने का साहस न रखकर यदि हम कानून के लिए चिल्लाते रहें, तो जनशक्ति का निर्माण कर राष्ट्र की सहायता करने की जो हमसे आशा की जाती है, वह विफल हो जायगी। इसीलिए मैं 'दंडशक्ति' से अलग 'जनशक्ति' का निर्माण करना चाहता हूँ। उसका निर्माण हमें करना ही होगा। हम 'जनशक्ति' की रचना करना चाहते हैं, वह 'दंडशक्ति' की विरोधिनी होगी, ऐसी बात भी नहीं है। किन्तु, इतना है कि यह शक्ति हिंसा के विरुद्ध होगी। यह जनशक्ति दंडशक्ति से भिन्न होगी।" कानून के सम्बन्ध में उन्होंने और भी कहा है: "कानून एक अलग चीज है। हिंसा और अहिंसा, दोनों से उसका सम्बन्ध है। कानून के पीछे भौतिक या नैतिक शक्ति रहनी चाहिए। मेरे काम के लिए एक ऐसे वातावरण की रचना हो रही है, जिससे सरकार को कानून बनाने में सुविधा होगी। उस नैतिक वातावरण के तैयार न होने पर भी यदि कानून बनाया जायगा, तो उसे अमल में लाने के लिए दंडशक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। यदि हमें अपने घर की समस्याओं के समाधान के लिए सैन्यबल के प्रयोग की आवश्यकता पड़ती है, तो अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में हमारी क्या दशा होगी, जरा एक बार मनोयोगपूर्वक सोचिये तो।" वे और

भी कहते हैं : "लोग कानून बनाने की बात उठाते हैं, किन्तु वे नहीं जानते कि कानून तो पीछे से आयगा ही। मेरे कार्य से जो वातावरण बनेगा, उसकी सहायता के लिए सरकार को निश्चित रूप से कानून बनाना पड़ेगा। ऐसा न होने पर यह सरकार समाप्त हो जायगी, दूसरी सरकार आयगी।"

माना, कानून बने और जल्दी बने, किन्तु यदि इस काम में सर्वोदय-कार्यकर्ता लग जायँगे, तो वे अपना काम न कर दूसरे का काम करनेवाले बन जायँगे। विनोबाजी कहते हैं : "हम लोगों का धर्म होगा ग्राम-ग्राम का भ्रमण करना और विचार पर विश्वास रखना। हम ऐसा नहीं कहेंगे : 'अरे, विचार सुनने-सुनाने से कहीं काम होता है ?' विचार अन्तर में आने से ही काम होगा, क्योंकि हमारा काम विचार के द्वारा ही सम्भव होगा।" दंड निरपेक्ष जिस विचारबोध के द्वारा जनशक्ति का काम पूरा होता है, उसे विनोबाजी ने 'विचारशासन' नाम दिया है।

जो लोग सर्वोदय के इस दृष्टिकोण को नहीं मानते हैं, उनकी बात मानकर यदि यह सोचें भी कि कानून के बिना भूमि-समस्या का समाधान नहीं होगा—कानून बनाना ही पड़ेगा, तब भी क्या अभी उपयुक्त कानून का निर्माण सम्भव होगा ? पहले पश्चिम बंगाल की ही बात लीजिये। पश्चिम बंगाल में जमींदारी-उन्मूलन कानून पास हो चुका है और जमीन का एक निर्दिष्ट अंश उसके वर्तमान मालिक के हाथ में छोड़कर बाकी जमीन सरकार द्वारा ग्रहण किये जाने का कानून बन चुका है। प० बंगाल सरकार का अन्दाज है कि इस कानून के फलस्वरूप ४ लाख एकड़ आबाद और आबादी-योग्य भूमि भूमिहीनों के बीच वितरण के लिए सरकार के हाथ में आयगी। किन्तु, इधर भूमि-मालिकों ने कानून के कार्यान्वयन के मार्ग में बाधा पहुँचाने के उद्देश्य से निर्दिष्ट 'सीलिंग' से अधिक भूमि अनामी लोगों को हस्तांतरित कर दी है। इस तरह के हस्तांतरण को बन्द करने के लिए भी सरकार ने कानून बनाया है, फिर भी ऐसे हस्तांतरण को बंद करना सम्भव नहीं हुआ है। इस प्रकार इसमें संदेह मालूम होता है कि चार लाख एकड़ जमीन सरकार के हाथ में आयगी। सरकार को भी यही आशंका है। जो हो, यदि यह मान भी लिया जाय कि चार लाख एकड़ जमीन सरकार को भूमि-हीनों में वितरण के लिए मिल जायगी, तो क्या होगा ? वर्तमान जनगणना के अनुसार प० बंगाल में खेती पर निर्भर रहनेवाले लोगों

(४) भूदान-यज्ञ समाज में विचार-क्रांति की सृष्टि करेगा। भूदान-यज्ञ का सर्वाधिक क्रांतिकारी सुफल होगा स्वामित्व-विसर्जन। कानून के द्वारा जमीन छीनी जा सकने पर भी स्वामित्व-विसर्जन की मनोवृत्ति पैदा कर सकना सम्भव नहीं है, क्योंकि कानून विधायक शक्तिहीन होता है। अधिक-से-अधिक यह कि कानून खराब कामों को रोक सकता है, किन्तु सत्प्रेरणा जाग्रत करने में वह अक्षम है।

(५) भूदान-यज्ञ में धनी-गरीब का कोई भेद न रखते हुए सबसे जमीन ली जाती है, किन्तु कानून के द्वारा निर्धारित सीमा से अधिक जमीन-मात्र ही ली जा सकती है।

भूदान-यज्ञ कानून नहीं चाहता। भूदान-यज्ञ चाहता है धनी लोगों को पड़ोसी-धर्म की दीक्षा देना, उनके आत्मज्ञान का विकास करना और उनकी आत्मा को परिवार की परिधि से बाहर ले जाना। धनी लोग, अपने परिवार से बाहर जो दरिद्र लोग हैं, उन्हें अपने परिवार का भागीदार समझना आरम्भ करें। उनके परिवार से बाहर जो भूमिहीन गरीब हैं, उन्हें वे अपना पुत्र मानें और उन्हें उनका हिस्सा दें। माँ जब सन्तान को अपनी गोद में उठाती है, तो उसे थोड़ा झुकना पड़ता है। आज धनी अपनी गरीब भूमिहीन सन्तान को गोद में उठा लें। इसके लिए उन्हें झुकना पड़ेगा, अर्थात् अपनी जीवन-यात्रा के मान को उन्हें थोड़ा गिराना पड़ेगा। युग-परिवर्तन हो रहा है। धनी लोग युग के संकेत को समझ लें। आज गरीबों का भगवान् जाग गया है। इस युग में जमीन धनी लोगों के हाथ से गरीबों के हाथ में जायगी ही। प्रश्न यही है कि किस मार्ग से यह काम होगा? आज यदि प्रेम के मार्ग से, शांति के मार्ग से धनी लोग अपनी जमीन भूमिहीन गरीबों को अर्पित कर दें और माँ सन्तान को स्तनपान कराते समय जो परम आनन्द अनुभव करती है, वो लोग गरीबों के लिए भूमि देते समय वही परम आनंद का अनुभव करें, तो धनी लोगों के सम्मान और मर्यादा की रक्षा होगी। सिर्फ यही नहीं, उनका सम्मान और मर्यादा बढ़ेगी और वे समाज के वास्तविक सेवक और नेता हो सकेंगे। धनी लोगों के पास विद्या, बुद्धि और वित्त-धारणा है, किन्तु आज उनका समाजसेवा में उपयोग नहीं हो रहा है। उनकी बुद्धि-वृत्ति और हृदय-वृत्ति त्यागपूर्ण हो—पवित्र हो। तभी वे

गणदेवता की अर्चना के श्रेष्ठ अर्घ्य होंगे। युग-परिवर्तन होने पर उनके पास अधिक भूमि या सम्पत्ति नहीं रहेगी। आज जो राजा हैं, वे काल-प्रवाह के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कल राजा नहीं रहेंगे। तब वे चिरकाल तक जन-मानस में राजर्षि-स्वरूप विराजमान रहें। इससे उनका और सम्पूर्ण समाज का कल्याण होगा। आज गरीब भूमिहीन धूलि-धूसरित हैं। धनी लोगों के स्वेच्छया त्याग से गरीब लोग समाज में सम्मानित स्थान प्राप्त करेंगे। समाज में द्रोहरहित उत्पादक श्रम की मर्यादा पुनः प्रतिष्ठित होगी। धनी भी त्याग-धर्म से दीक्षित होकर लोक-हृदय में सम्मानपूर्ण श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करेंगे। यही भूदान-यज्ञ का मुख्य लक्ष्य और उद्देश्य है।

भारत की दरिद्रता का मूल और वर्तमान विश्व-परिस्थिति

समाज में दरिद्रता क्यों है ? समाज में दरिद्रता, शोषण और आर्थिक विषमता का मूल कहाँ है ? उपादानों के आधार, साधन और यन्त्रों पर उत्पादकों का पूर्ण अधिकार और स्वामित्व रहना चाहिए, अन्यथा उत्पादक को उत्पादन-श्रम करने का अवसर खोना पड़ता है, अथवा उसे अपने श्रम से प्राप्त होनेवाली सम्पत्ति से वंचित रह जाना पड़ता है। उत्पादन का मौलिक साधन या क्षेत्र भूमि है। जो व्यक्ति अपने हाथ से जमीन आबाद करके फसल का उत्पादन करेगा, जमीन पर उसीका अधिकार रहना चाहिए। जो शिल्पी श्रमिक यन्त्रों की सहायता से माल-उत्पादन करता है, उसका भी उत्पादन-यन्त्र पर अधिकार रहना चाहिए। यही वास्तविक और न्याय-संगत नियम है। जब तक इस नियम का ठीक-ठीक पालन हो रहा था, तब तक सब लोग श्रम करते थे और सभी धन पैदा करते थे। कोई शोषित नहीं था। कोई दरिद्र नहीं था। और, कोई बहुत अधिक धनी भी नहीं था। जैसे ही इस नियम में व्यतिक्रम होना शुरू हुआ, वैसे ही समाज में शोषण, दरिद्रता और आर्थिक विषमता का सूत्रपात हुआ। अर्थात् उत्पादन का मौलिक साधन भूमि जब तक उत्पादक किसान के हाथ में थी, तब तक किसान गरीब नहीं थे। जैसे ही वह अनुत्पादक उपभोक्ता के हाथ में गयी, वैसे ही उत्पादक किसान असहाय, परमुखापेक्षी और परभाग्योपजीवी हो गये। ऐसी अवस्था में किसान को शोषण और उत्पीड़न के आगे झुकना पड़ा, और उसे बेकार और भूखा रहना पड़ा।

तब से वह अपने श्रम से उपार्जित सम्पत्ति का भोग करने से वंचित रहने लगा। केवल कुछ भाग उसे नसीब हुआ। उसके श्रम से उपार्जित सम्पत्ति का अधिकांश भाग धनी मालिकों के अधिकार में जाने लगा। उद्योग-धंधा में भी ऐसी ही अवस्था हुई। जब तक वस्त्र-निर्माण के लिए सूत-उत्पादन का यंत्र चरखा उत्पादक श्रमिक ग्रामीणों के हाथ में था, तब तक शोषण और दरिद्रता नहीं थी। जैसे ही वह चरखा बड़ी मशीन के रूप में अनुत्पादक धनी पूंजीपतियों के हाथ में चला गया, वैसे ही बेकारी, दरिद्रता और शोषण का आरम्भ शुरू हो गया। जब तक वस्त्र-उत्पादन का यंत्र करघा बुनकरों के हाथ में था, तब तक दरिद्रता और शोषण नहीं था, किन्तु जैसे करघा बड़ी मशीन के रूप में अनुत्पादक पूंजीपतियों के हाथ में गया, वैसे ही गांवों में बेकारी और दरिद्रता का जन्म हुआ। जब तक तेल-उत्पादन का यंत्र घानी ग्रामीण तेली के हाथ में रही, तब तक दरिद्रता नहीं थी, किन्तु जैसे ही वह बड़ी तेल-कल के रूप में धनी कारखानेवालों के पास गयी, वैसे ही गांव में बेकारी और दरिद्रता बढ़ी। जब तक धान कूटने का यंत्र ढेंकी ग्राम की विधवाओं और छोटे किसानों के पास रहकर उन्हें काम देती रही, तब तक गांवों में इतना अभाव और असहायावस्था नहीं आयी, परन्तु जैसे ही ढेंकी छोटी-बड़ी चावल कूटने की मशीनों के रूप में अनुत्पादक धनियों और मध्यवित्तों के हाथ में गयी, वैसे ही विधवाओं की आंखों में उत्तप्त अश्रुजल दिखाई पड़ने लगे और गरीब किसानों के हृदय भग्न होने लगे। इसी तरह के और भी अनेक उदाहरण हैं।

हम लोगों के देश की स्थिति क्या है? अतीत काल में भारत की तरह समृद्धिशाली देश संसार में और कहीं नहीं था। भारत की धन-सम्पत्ति की बात सारे संसार में प्रसिद्ध थी। भारत के वैभव के लोभ से बाहर से दल बनाकर लुटेरे आते थे और आक्रमणकारी भी। उस समय देश में प्रायः सभी लोगों के पास जमीन थी। आज जमीन का जैसा असम वितरण है, उसका लेशमात्र भी उस समय नहीं था। उस समय जन-संख्या भी कम थी। किन्तु लोग केवल जमीन पर निर्भर नहीं रहते थे। इस देश में सैकड़ों गृह-उद्योग थे। अधिकांश लोग आधे समय में खेती करते थे और बाकी आधा समय एक या अधिक उद्योग-धंधों में लगाते थे। भारत का वस्त्र-उद्योग सर्वाधिक उन्नत था। ढाका की मलमल की ख्याति सारे संसार में थी। वस्त्र के मामले में भारत केवल स्वाव-

लम्बी ही नहीं था, बल्कि यूरोप आदि सुदूरवर्ती देशों में प्रचुर परिमाण में वस्त्र का निर्यात भी करता था। इसके बाद अंग्रेज इस देश में आये—अंग्रेजों का राज्य कायम हुआ। अंग्रेजों का शासन चलता रहा। अंग्रेजों के द्वारा विज्ञान की उन्नति हुई। अंग्रेजों के द्वारा पहली बार बड़े कारखाने का निर्माण हुआ। अंग्रेज अपने देश में बड़े कारखानों में वस्त्रादि तैयार माल का उत्पादन करके भारत में आयात करते रहे और अपनी राजशक्ति के प्रभाव और दबाव से बड़े कारखानों में तैयार सस्ता माल इस देश में बेचते रहे। भारत के लोग बड़े कारखानों में तैयार चिकने चुपड़े और सस्ते माल को ग्रहण करने का लोभ संवरण न कर सके। इस प्रकार भारत में ग्रामोद्योगों का नाश आरम्भ हो गया। मनुष्य के जीवन में भोजन के बाद दूसरा सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान वस्त्र का है। इसलिए खाद्यान्नों के उत्पादन और क्रय विक्रय के बाद वस्त्र का ही उत्पादन और क्रय विक्रय मनुष्य के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और व्यापक प्रभावकारी हो सकता है। भारत में भी यही अवस्था थी। किंतु भारत ने इस विस्तृत गृह-उद्योग को खो दिया। साथ-साथ अन्य गृह-उद्योगों का भी नाश हुआ। जिन लोगों के हाथ से उद्योग निकल गये, वे या तो बेकार हो गये और नहीं तो उनके हाथ में थोड़ी जमीन के अतिरिक्त और कुछ नहीं बचा। निरुपाय व्यक्तियों की बात तो अलग, अल्पवित्त के लोग भी अपनी जमीन की रक्षा न कर सके। पैदावार कम होने लगी, खाद्यान्नों का अभाव होने लगा, अकाल पड़ने लगा। उद्योग से जीविका अर्जित करनेवाले लोग, और दूसरे लोग भी, क्षुधाशांति के लिए अपनी जमीन बेच देने को बाध्य हुए। महाजन के कर्ज की अदायगी के कारण उनकी जमीन बिक जाती—मालिक को माल-गुजारी देने के चलते उनकी जमीन बिक जाती। इस प्रकार लोगों के हाथ से पहले उद्योग चले गये और उसके बाद जमीन भी चली गयी। जमीन पड़ गयी महाजनों के हाथ में, मालिकों के हाथ में, 'जो स्वयं खेती नहीं करते और खेती करना नहीं जानते। इन्हीं लोगों के हाथ में देश की अधिकांश जमीन एकत्र होने लगी। देश में लाखों उद्योगहीनों और करोड़ों भूमिहीनों की सृष्टि हुई। दूसरी ओर, जिन लोगों को गृह-उद्योगों से जीविका प्राप्त होती थी, उन्होंने भी अपने उद्योग खो दिये, फलतः भूमि पर उत्तरोत्तर भार बढ़ता गया। देश की जनसंख्या में भी वृद्धि होने लगी। ग्रामोद्योगों के नष्ट होने से कार्य-क्षेत्र सकु-

चित हो गये और भूमि पर भार बढ़ने लगा। अंग्रेजी राज के मध्य और अन्तिम काल की यह करुण कहानी है। क्रमशः अन्यान्य पश्चिमी देशों में मशीन-उद्योगों का जन्म और विकास हुआ। ग्रामोद्योगों की लाश पर मशीन-उद्योगों की नींव पड़ी। ग्रामोद्योगों की तुलना में मशीन-उद्योग की गति, कार्यक्षमता और उत्पादन-शक्ति अधिक है। पाश्चात्य देश मानवतामूलक अर्थ-व्यवस्था भूल गये। योग्यता-वृद्धि की वासना के वे शिकार हो गये। इसके परिणामस्वरूप वहाँ एक नवीन अर्थनीति और अर्थशास्त्र का निर्माण हुआ, जो प्रतियोगिता-मूलक था। इस प्रकार एक प्रतियोगितामूलक अर्थ-व्यवस्था (Competitive Economy) का जन्म हुआ, क्योंकि योग्यता और दक्षता बढ़ाने के लिए प्रतियोगिता अति आवश्यक है। साथ ही प्रतियोगिता के विकास के लिए अबाध, अनियन्त्रित गतिविधि की आवश्यकता होती है। इसलिए उस नवीन अर्थ-व्यवस्था में अबाध नीति (Laissez Faire) अपनायी गयी। अबाध गति से प्रतियोगिता चलने के फलस्वरूप एक और नीति को जन्म दिया गया और उसे ग्रहण किया गया। वह नीति थी 'Survival of the fittest' अर्थात् जो सर्वाधिक योग्य होगा, वही जिन्दा रहेगा। जो सर्वाधिक योग्य होगा, उसीको जीवित रहने का, सुख-सम्पत्ति का उपभोग करने का अधिकार है। प्रतियोगिता में न टिक सकनेवाले के नष्ट होने पर भी उस ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। इससे जीवन-स्तर ऊँचा उठाने का झोंका आया। जीवन-स्तर ऊँचा उठा उन लोगों का, जो विद्वान्, बुद्धिमान्, योग्य और शक्ति-मान् थे। बाकी सब निम्नस्तर में पड़े रहे या और अधिक निम्नता में उतर गये। इस अर्थ-व्यवस्था से उन्हें कोई शिकायत नहीं है, बल्कि वे कहते हैं कि ऐसा ही होना चाहिए। ऐसा न होने से काम करने की प्रेरणा कैसे मिलेगी? काम में स्फूर्ति कैसे आयगी? धीरे-धीरे इसका समस्त संसार में प्रसार हो गया। भारत में भी यह नवीन अर्थ-विज्ञान और अर्थशास्त्र लाया गया। भारत को इसने दबोच रखा है। भारत में ग्रामोद्योगों को नष्ट करने का प्रतियोगितामूलक अर्थशास्त्र तैयार किया गया और भारत ने इसे ग्रहण कर अपने पुनरुत्थान का पथ अवरुद्ध कर लिया। इन सबका आगे चलकर यह फल हुआ कि एक शोषक श्रेणी और दूसरी शोषित श्रेणी का प्रादुर्भाव हुआ। शोषण देश तक ही सीमाबद्ध नहीं रहा। विदेशी लोगों ने भी इस शोषण में योगदान

किया। मालिक-मजदूर के बीच, देश देश के बीच संघर्ष और विरोध का आरम्भ हुआ।

ग्रामोद्योगमूलक उत्पादन-व्यवस्था में उत्पादक ग्राम में या उसके आस-पास के ग्राम में उपयोग के लिए कच्चा सामान पैदा किया जाता है। उसमें उत्पादित वस्तुओं के पारस्परिक विनिमय की प्रधानता रहती है। उसमें अर्थ-व्यवहार का प्रयोजन बहुत कम होता है। दूसरी ओर, केन्द्रित मशीन-उद्योग में दूरवर्ती क्षेत्रों को या विदेशों को चालान और बिक्री करने के लिए उत्पादन किया जाता है। इसके लिए अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। केन्द्रित उद्योग के लिए आवश्यक मशीनों के उत्पादन और केन्द्रित उद्योग की स्थापना तथा संचालन के लिए विपुल अर्थ की आवश्यकता पड़ती है। अतः अर्थ का आदान-प्रदान केन्द्रित उद्योग-व्यवस्था का अभिन्न अंग है। इसलिए केन्द्रित उद्योग-व्यवस्था के साथ पैसे का अर्थशास्त्र, (Money Economy) उठ खड़ा हुआ। अतएव अर्थलोभ क्रमशः समाज पर छा गया। समाज ने मानवता, एवं मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाली वस्तुओं की अपेक्षा अर्थ को अधिक महत्त्व देना सीखा। केन्द्रित उद्योग में उत्पादन के लिए कच्चा माल और उत्पादित वस्तुओं की बिक्री के लिए व्यापक क्षेत्र चाहिए। इसलिए विभिन्न जातियों और देशों के बीच प्रतियोगिता और संघर्ष होने लगा। परिणामस्वरूप युद्ध होने लगे। पहले व्यक्तिगत, वंशगत और समुदायगत आधिपत्य की इच्छा ही राज्य प्रतिष्ठापना, राज्य-अधिकार, और राज्य विस्तार का कारण होती थी। हाँ, मध्ययुग में धर्मोन्माद युद्ध छिड़ने या राज्य विस्तार का कारण होता था। देश की अर्थ-व्यवस्था के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। अब उसमें आमूल परिवर्तन हुआ। 'दूसरे देश को कच्चे माल के उत्पादन का क्षेत्र बनाना चाहिए', दूसरे देश को अपने देश के बड़े कारखानों में उत्पादित माल की बिक्री के लिए बाजार बनाना चाहिए', इन भावनाओं ने दूसरे देशों को अपने अधीन रखने या दूसरे देशों पर आधिपत्य जमाने की लालसा पैदा की। यही युद्ध छिड़ने का प्रधान कारण बन गया। इसके अतिरिक्त पहले एक राज्य का राजा या पराक्रमी व्यक्ति जब दूसरे राज्य पर आक्रमण करता था या विजय प्राप्त करता था, तब वहाँ अपना राज कायम करता था। इस विजय से विजयी राजा के देश के जन-साधारण का कोई विशेष स्वार्थ सिद्ध

नही होता था। पराजित देश की जनता के स्वार्थों को भी इससे कुछ विशेष क्षति नही पहुँचती थी। आज इसके ठीक विपरीत बात है। आजकल युद्ध छिड़ने या राज्य-अधिकार का प्रधान कारण आर्थिक है। एक देश दूसरे देश का आर्थिक शोषण करेगा। इसीलिए अब दो राज्यो के बीच युद्ध छिड़ने में दोनो राज्यो के जन-साधारण के स्वार्थ का प्रश्न भी निहित रहता है। अतएव एक देश के जनसाधारण का स्वार्थ दूसरे देश के जन-साधारण के स्वार्थ के विरुद्ध हो जाता है। उन्नत विज्ञान ने जिस प्रकार उत्पादन-यन्त्रो की शक्ति और दक्षता बढायी, उसी प्रकार सहारक अस्त्रो की भी शक्ति बढायी। उत्तरोत्तर अधिकाधिक उन्नत और शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रो का आविष्कार होने लगा। इस प्रकार विज्ञान आज ऐटम बम, हाइड्रोजन बम और राकेट तक पहुँच गया है। आज सहारक अस्त्रो पर नियत्रण की क्षमता मनुष्य में नही है। वे अस्त्र अत्यधिक हिंसा के स्तर पर आ पहुँचे हैं। सम्पूर्ण मानव जाति को समाप्त कर देने के लिए उद्यत है। इसके अलावा यदि आज युद्ध छिड़े, तो दो देशो तक ही वह सीमित नही रहेगा, क्योकि आर्थिक क्षेत्र में गुटो की सृष्टि हो गयी है। अभी युद्ध छिड़ने से जो अवस्था उत्पन्न हो सकती है, उसका एक चित्र विनोबाजी ने विजयवाडा के अपने प्रवचन के क्रम में विनोदपूर्वक प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा "प्राचीन काल में कुश्ती होती थी। उसके बाद युद्ध का युग आया। पलासी के युद्ध में एक छोटे मैदान के एक ओर भारतीय सेना और दूसरी ओर अँग्रेजी सेना खडी हुई। उस युद्ध मे जनता को भी कुछ क्षति पहुँची थी, पर एक सीमा के भीतर। उससे स्त्रियो, बालको, वृद्धो, रोगियो या अन्य किसी गैर-सैनिक को कोई क्षति नही पहुँची। किन्तु, आज एक देश के दूसरे देश के विरुद्ध खडे होने पर भीषण युद्ध होता है। यदि कल घोषणा हो जाय कि रूस और अमेरिका के बीच युद्ध छिड गया है, तो रूस के पक्षवाले भी दस-बीस देश खडे हो जायँगे और अमेरिका के पक्ष के भी दस-बीस देश। फलत एक भीषण युद्ध छिड जायगा। तब इस पक्ष के पुरुषो का उस पक्ष के पुरुषो से युद्ध होगा। इधर की स्त्रियो के साथ उधर की स्त्रियो का विवाद उठ खडा होगा। यहाँ के बैलो का वहाँ के बैलो से युद्ध होगा और यहाँ के गधो को वहाँ के गधो से लडाई होगी। यहाँ के पेडों का वहाँ के पेडों से झगडा होगा। यहाँ की मिलो का वहाँ की मिलो से झगडा होगा और यदि बम गिराया गया,

तो गधों, घोडों, मिलों, स्त्रियों, सबका विनाश होगा।" ऐसी अवस्था में सारी मनुष्य जाति आज विनाश के मुख में पडी है। फलत जो लोग हिंसा पर विश्वास करते हैं और यह समझकर कि हिंसा से ससार की समस्याओ का समाधान होगा, अस्त्र-शस्त्र बढा रहे हैं, उनकी अवस्था आज दूसरी है। विनोबाजी कहते हैं : "अब वे विचलित हो गये हैं। हिंसा के द्वारा समस्या का समाधान होगा या नही, यह वे नहीं समझ पा रहे हैं।" बुल्गानिन भारत का भ्रमण करके गये हैं। उस समय यदि कोई उन्हे 'मार्शल बुल्गानिन' कहता था, तो उन्हें खुशी नही होती थी। वे 'मार्शल' तो हैं, पर 'मार्शल' पुकारा जाना उन्हें अच्छा क्यों नही लगता था ? विनोबाजी कहते हैं "मार्शल पुकारे जाने से उन्हें लज्जा का बोध होता है, यह एक बहुत ही लाभदायक बात है। ससार में सबसे अधिक हिंसा-शक्ति जिनके हाथ मे है, वे आज शाति चाहते हैं।" तदुपरान्त बुल्गानिन इग्लैण्ड गये। वहाँ उन्होने जो सब बातें कही, उनके सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "उन्होने जो कुछ कहा है, उसका अर्थ यही है कि हिंसा म उन्हें विश्वास नही है। आज वे ऐसी स्थिति में पहुँचे हैं कि सर्वोत्तम अस्त्रों के द्वारा भी वे विश्व की समस्याओ का समाधान नहीं कर सकते। इसीलिए वे शाति चाहते हैं। किन्तु, अहिंसा के द्वारा समस्या का समाधान हो सकता है, यह विश्वास उनमें पैदा नही हुआ है। ऐसी है इग्लैण्ड-यूरोप के नेताओ की स्थिति। हिंसा में पहले उन्हें जितनी श्रद्धा थी, आज उतनी श्रद्धा नही है। अहिंसा के द्वारा समस्या का समाधान हो सकता है, ऐसी अनुभूति, ऐसा दर्शन, ऐसी कल्पना उनमें नहीं है। और, वे अस्त्र-शस्त्र मे वृद्धि करते जा रहे हैं। एक प्रवाह है, जिसमें वे पडे हुए हैं। किन्तु, उन्हें यह विश्वास नहीं है कि वे इसे पार करने में समर्थ होंगे।"

भारत की स्थिति क्या है ? विनोबाजी कहते हैं : "आज पाकिस्तान अमेरिका के बल पर बलवान् बना है और देखता है कि अन्य देशो की स्थिति क्या है ? हमारे देश के लोग भी सशकित हो पार्लियामेण्ट में प्रश्न कर रहे हैं : 'भारत क्या इसके लिए तैयार है ?' पंडित नेहरू आश्वासन देकर कहते हैं कि 'हाँ, तैयार है।' किन्तु वे साथ-साथ यह भी कहते हैं कि पचवर्षीय योजना भी हमारा मोरचा है। इस योजना में भी शक्ति निहित है। यदि वह सफल होगी, तो उससे शक्ति प्राप्त होगी। फिर भी, इस बारे में कोई सन्देह नहीं है कि

देश की जनता, नेता और जनता के प्रतिबिम्बस्वरूप जनता के प्रतिनिधि, सभी आज सशंक और चकित हैं। उन्हें सैनिक शक्ति पर भरोसा है। यदि कल विश्वयुद्ध शुरू हो, तो वे योजना का काम छोड़ देंगे। यदि पाकिस्तान बुद्धिहीन की तरह अस्त्र-शस्त्र में वृद्धि करता रहेगा, तो हम ऐसी स्थिति में पड़े हैं कि हमें भी अपने अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने होंगे। यह एक दुष्ट चक्र (Vicious circle) है। इसके कारण निरपेक्ष भाव से अन्य कुछ शुरू करने की शक्ति (Initiative) हमें लोगों के हाथ में नहीं है। यदि आसपास का देश हिंसा पर निर्भर करने की मूर्खता करेगा, तो हमें भी वैसा ही करना होगा। आज संसार जिस चक्र में पड़ा है, उससे मुक्ति पाने का उपाय क्या है ? क्या अमेरिका और रूस इस बारे में नहीं सोचेंगे ? यदि युद्ध शुरू हो जायगा, तो अपनी योजनाओं के साथ-साथ हम भी नष्ट हो जायेंगे। मानव-समाज नष्ट हो जायगा। तब योजनाएँ कहाँ रहेंगी ? मनुष्य को तंग करने की शक्ति हिंसा से ही उत्पन्न हुई है।" इस संकट से परित्राण पाने का उपाय क्या है ? विनोबाजी का खयाल है कि आज संसार ऐसी स्थिति में है कि उसे अहिंसा अपनानी पड़ेगी अन्यथा सर्वनाश (Total Destruction) स्वीकार करना पड़ेगा। इसीलिए वे विश्वयुद्ध की सम्भावना से उत्फुल्ल होते हैं। वे विश्वयुद्ध का स्वागत करते हैं। वे विश्वयुद्ध को सम्बोधित करते हुए कहते हैं। "तुम शीघ्र आओ। तुम जितनी जल्दी आओगे, उतनी ही जल्दी अहिंसा भी आयगी।" वे सोचते हैं कि इस प्रकार बार-बार विश्वयुद्ध होने से लोगों की आँखें खुलेंगी और वे चिन्तन करना आरम्भ करेंगे।

इस संकटपूर्ण स्थिति में भारत क्या कर सकता है ? भारत के हाथ में कोई भौतिक शक्ति नहीं है। भारत के पास सैनिक शक्ति भी नहीं है और आर्थिक शक्ति भी नहीं। किन्तु, भारत के पास नैतिक शक्ति है। इसीलिए सारा संसार आज आशा कर रहा है कि भारत कोई ऐसी योजना बनायेगा, जो सारे संसार को मार्ग दिखायेगी। विनोबाजी कहते हैं: "दो हजार वर्ष बाद हमें अपने देश का निर्माण करने का सुयोग प्राप्त हुआ है। भूदान-यज्ञ का काम चल रहा है, किन्तु उससे अभी ऐसा परिणाम नहीं निकल सका है कि लोग चमत्कृत हो जायें। अभी तक कुल ४०-५० लाख एकड़ भूमि प्राप्त हुई है और केवल ५ लाख लोगों ने दान दिया है। किन्तु, यह देखने के लिए

ससारभर के लोग आ रहे हैं।, वे हमारे साथ रहते हैं, जगलों में भी घूमते हैं। इसे देखने के लिए यूरोप-अमेरिका के लोग भी क्यो आते हैं ? 'ससार के अनेक देशो में तो भूमि-वितरण हो चुका है। तब इसमें देखने की क्या चीज है? यहाँ भूमि-वितरण के लिए एक ऐसे उपाय का सहारा लिया गया है, जिसके द्वारा आज सकट में पडा हुआ ससार मुक्ति पाने का मार्ग पा सकेगा। यही आशा लेकर विभिन्न देशो के लोग इसे देखने आते हैं।" ससार आज जिस सकट में पडा है, उसकी नीव पहले भारत में ही डाली गयी थी। इग्लैण्ड के मशीन-उद्योग ने भारत के ग्रामोद्योग को नष्ट करके मानव के विनाश का बीज भारत में बोया था। आज ऐसा सुयोग उपस्थित हुआ है कि भारत ही उस विषवृक्ष को समूल नष्ट कर देने का उपाय ससार को बता सकता है। वह उपाय है अहिंसात्मक अर्थ-व्यवस्था या मानवात्मक अर्थ-व्यवहार की पुन प्रतिष्ठा। प्रतियोगितामूलक व्यवस्था का परित्याग करना होगा। मनुष्य और मानवता को सर्वोपरि मानना पडेगा। सभी मनुष्यो का समान कल्याण-साधन ही आदर्श बनाना पडेगा। परिवार में जो त्यागमूलक और कल्याणमूलक व्यवस्था मानव-समाज ने तैयार की है, उसे सारे समाज के जीवन में प्रसारित करना होगा। इसलिए आधुनिक अर्थशास्त्र (Modern Economics) को मानना ही पडेगा, ऐसी बाध्यता नही रहेगी। विनोबाजी कहते हैं . "मनुष्य ने गणित शास्त्र की रचना नही की। वह नियामक शास्त्र है। किन्तु, अर्थशास्त्र के साथ ऐसी बात नही है, क्योकि मनुष्य ने उसका निर्माण किया है। इसलिए वह मनुष्य के सिर पर चढकर नही रह सकता। गणित-शास्त्र को मानना ही पडता है, किन्तु अर्थशास्त्र वैसा नही है। हम अर्थशास्त्र की रचना कर सकते हैं।" इसलिए वे कहते हैं : "विभिन्न देशो के अर्थशास्त्र विभिन्न प्रकार के होंगे।". जिस देश की जैसी स्थिति होगी, उसके अनुसार ही उस देश की अर्थ-व्यवस्था की रचना करनी होगी। एक देश की अर्थ-व्यवस्था विभिन्न स्थितिवाले देशो में हू-ब-हू लागू करना उचित नही है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं 'इसका कारण यह है कि आज वहाँ जो यत्र चल रहे हैं, वे कल वहाँ नही चलेंगे। भारत में आज जो यत्र चल रहे हैं, वे कल नही चलेंगे। आज जो यन्त्र अन्य देशो में चल रहे हैं, वे आज ही यहाँ की स्थिति के अनुकूल नही भी हो सकते हैं।" विनोबाजी ने यत्रो को तीन श्रेणियो में बाँटा

है*—यथा, (क) संहारक यन्त्र। यह सब प्रकार से परित्याज्य है (ख) समय साधक यन्त्र—जैसे रेलगाडी, विमान आदि। ये यन्त्र ग्राह्य हैं। (ग) उत्पादक यन्त्र—किसी स्थान या देश-विशेष की स्थिति के अनुसार उत्पादक यन्त्र पूरक या कल्याणकारी हो सकता है। अन्य देश, स्थान या स्थिति के अनुसार वह यन्त्र क्षतिकारक भी हो सकता है। इसीलिए विभिन्न देशों में विभिन्न स्थितियों के अनुसार विभिन्न अर्थ-व्यवस्था और अर्थशास्त्र की रचना करना आवश्यक है। आज अमेरिका और रूस में जो यन्त्र चल रहे हैं, वे भारत में नहीं चलेंगे। अमेरिका और रूस की समस्या यह है कि किस प्रकार कम मनुष्य-शक्ति खर्च करके यन्त्रशक्ति के सहारे प्राकृतिक साधनों और सम्पत्ति का अधिकाधिक विकास किया जा सकता है। दूसरी ओर, भारत की समस्या यह है कि किस प्रकार अपरिमित मनुष्य-शक्ति को काम में लगाया जाय। यहाँ केवल उत्पादन-वृद्धि पर ध्यान देने से करोड़ों लोगों का नाश हो जायगा। मनुष्यों के लिए पर्याप्त काम की व्यवस्था करना इस देश की मुख्य समस्या है। इस देश में कुछ लोगों के जीवन स्तर को उच्चतम बिन्दु तक पहुँचाने की समस्या नहीं है। किस प्रकार करोड़ों लोग 'मनुष्य' की भाँति जीवित रह सकते हैं, यही समस्या है।

भारत की भूमि और उस पर जन-संख्या का दबाव

भारत की जन-संख्या मोटे तौर पर ३६ करोड़ है और भारत की भूमि का क्षेत्रफल लगभग ८१ करोड़ एकड़ है। अतएव एक व्यक्ति पर २। एकड़ जमीन पड़ती है।

राष्ट्र-व्यवस्था की दृष्टि से भारत विभिन्न श्रेणी के राज्यों का मिलाकर ३३ राजनीतिक विभागों में विभक्त है। किन्तु राज्य-पुनर्गठन आयोग की सिफारिशों और तत्सम्बन्धी सरकार के निर्णय के अनुसार जो कानून बनने जा रहा है, उसके ऐसे भारत में १५ राज्य और कुछ केन्द्र-प्रशासित क्षेत्र होंगे। जो भी हो, भारत ६ अंचलों (Zone) में विभक्त किया जायगा, यथा (१) उत्तरी भारत, (२) पूर्वी भारत, (३) दक्षिणी भारत, (४) पश्चिमी भारत, (५) मध्य भारत और (६) उत्तर-पश्चिमी भारत। (१) उत्तरी

* 'सर्वोदय सूत्र' प्रकरण में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

भारत केवल उत्तर प्रदेश से गठित है। उसकी भूमि या क्षेत्रफल ७२६ लाख एकड़ और जनसंख्या ६३२ लाख है। अर्थात् उत्तर भारत में एक व्यक्ति पर १ १५ एकड़ जमीन पड़ती है। (२) पूर्वी भारत बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, आसाम, मणिपुर, त्रिपुरा, सिक्किम और चन्दननगर से गठित है। उसकी भूमि या क्षेत्रफल १,६७५ लाख एकड़ है और जनसंख्या ६०१ लाख है। अर्थात् यहाँ एक व्यक्ति पर १ ८६ एकड़ भूमि पड़ती है। (३) दक्षिणी भारत मद्रास, आंध्र मैसूर, त्रिवाकुर-कोचीन और कुर्ग से गठित है। उसकी भूमि या क्षेत्रफल १,०७५ लाख एकड़ और जनसंख्या ७५६ लाख है। अर्थात् दक्षिण भारत में एक व्यक्ति पर १ ४२ एकड़ जमीन पड़ती है। (४) पश्चिमी भारत बम्बई, सौराष्ट्र और कच्छ को मिलाकर बना है। यहाँ की भूमि या क्षेत्रफल है ९५७ लाख एकड़ और जनसंख्या ४०७ लाख। अर्थात् पश्चिम भारत में एक व्यक्ति पर २ ३५ एकड़ जमीन पड़ती है। (५) मध्य भारत में मध्यप्रदेश, मध्यभारत, हैदराबाद, भोपाल और विन्ध्यप्रदेश पड़ते हैं। यहाँ की भूमि या क्षेत्रफल १,८५२ लाख एकड़ है और जनसंख्या ५२३ लाख है। अर्थात् मध्य भारत में प्रतिव्यक्ति ३ ५४ एकड़ जमीन पड़ती है। (६) उत्तर-पश्चिमी भारत में पड़ते हैं राजस्थान, पंजाब, पटियाला, पूर्वी पंजाब, जम्मू-कश्मीर, अजमेर, दिल्ली, बिलासपुर और हिमाचल प्रदेश। यहाँ कुल १,२२६ लाख एकड़ भूमि है और जनसंख्या ३५० लाख है। अर्थात् उत्तर-पश्चिमी भारत में एक व्यक्ति पर ३ ५९ एकड़ भूमि पड़ती है। अतएव यह प्रकट होता है कि किसी-किसी अंचल में प्रतिव्यक्ति जितनी भूमि है, वह अन्यान्य अंचलों की तुलना में कहीं अधिक है। उत्तरी भारत में एक व्यक्ति पर १ १५ एकड़ भूमि पड़ती है परन्तु मध्य भारत में ३ ५४ एकड़, जो कि तीनगुनी है। इसे देखते हुए यह बात सोची जा सकती है कि जमीन की दृष्टि से मध्यभारत की अवस्था उत्तरी भारत से अच्छी है। किन्तु, वास्तविकता यह नहीं है। मध्यभारत में ३ ५४ एकड़ भूमि से जैसा जीवन-यापन हो सकता है, उत्तरी भारत में १ १५ एकड़ जमीन से उससे अच्छा जीवन-यापन सम्भव है। इसका कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि केवल भूमि होना ही पर्याप्त नहीं है। भूमि ऐसी होनी चाहिए, जो काम के लायक हो। अर्थात् व्यवहार-योग्य भूमि (Usable) होनी चाहिए। भूमि-वैशिष्ट्य के कारण

मुहानों के पास नदीवाली मिट्टी का क्षेत्र है। इस मिट्टीवाले अंचलों के बीच-बीच में नमकीन और क्षारयुक्त भूमि है। उत्तर प्रदेश में ऐसी जमीन ऊसर कही जाती है। उत्तर प्रदेश, बम्बई, दक्षिणी और उत्तरी बिहार के कुछ भागों में यह मिट्टी पायी जाती है। पश्चिम बंगाल के समुद्रतटवर्ती सुंदरवन और उसके आसपास के स्थानों में जमीन कुछ-कुछ नमकीन है। नदीवाली मिट्टी में फास्फरिक एसिड, नाइट्रोजन और ह्यूमस कम रहता है, किन्तु पोटाश और चूना पर्याप्त मात्रा में रहता है। (२) काली मिट्टी। यह लसीली भी होती है और कीचडवाली भी। काली मिट्टी कपास की खेती के लिए बहुत उपयोगी होती है। बम्बई और सौराष्ट्र के अधिकांश भाग, मध्यप्रदेश के पश्चिमी भाग, मध्यभारत, हैदराबाद और मद्रास के तिनलवेली जिला, रामनाथपुरम् जिला आदि स्थानों में काली मिट्टी है। यह मिट्टी बडी उपजाऊ होती है। यह मिट्टी विशेष रूप से आर्थिक फसलों (Commercial Crops) के लिए बडी उपयोगी होती है। (३) लाल मिट्टी। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में इस मिट्टी की उर्वरा-शक्ति विभिन्न स्तर की है। कहीं इसकी उर्वराशक्ति मध्यम है और कहीं खूब कम है। मद्रास, मणिपुर, दक्षिण-पूर्व बम्बई और पूर्व हैदराबाद के विस्तृत अंचल में यह लाल मिट्टी पायी जाती है। इसके अतिरिक्त मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग से छोटा नागपुर और उडीसा तक इस मिट्टी का क्षेत्र है। संथाल परगना के अधिकांश स्थानों और पश्चिमी बंगाल के वीरभूम जिले में लाल मिट्टी है। उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर, झाँसी, हमीरपुर जिले, मध्यभारत के उत्तरी भाग, अरावली पर्वतमाला और राजस्थान के पूर्वी भाग भी लाल मिट्टी के क्षेत्र हैं। (४) कंकरीली मिट्टी (Laterite and Lateritic Soils)। दक्षिणी क्षेत्र, मध्यभारत और मध्यप्रदेश के पहाडी क्षेत्र, राजमहल और पूर्वी-घाट श्रेणी, उडीसा, बम्बई, मालाबार और आसाम के कुछ क्षेत्रों की मिट्टी कंकरीली है। इस मिट्टी की उर्वराशक्ति बहुत कम है।

इन चार प्रमुख प्रकार की मिट्टियों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार की मिट्टी होती है, जैसे—(१) सूखी मिट्टी या Arid Soil। जहाँ वर्षा बहुत कम होती है, वहाँ इस प्रकार की मिट्टी पायी जाती है। जैसे, अजमेर, पूर्वी राजस्थान आदि। (२) जलवाली मिट्टी। तिरुवांकुर के कुछ स्थानों में, पश्चिम बंगाल, उडीसा और मद्रास के कुछ भागों में जलवाली मिट्टी उपलब्ध

है। (३) पहाड़ी मिट्टी। पहाड़ी मिट्टी बालू और कीचड़भरी लाल मिट्टी (Red Loam) होती है। पश्चिम बंगाल, पंजाब और आसाम के पहाड़ी क्षेत्रों की मिट्टी इसी प्रकार की है।

मिट्टी जिस किसी भी श्रेणी की और कितनी भी उर्वराशक्तिसम्पन्न क्यों न हो, यदि पर्याप्त वर्षा न हो, तो उसमें किसी भी फसल का उत्पादन सम्भव नहीं होगा। भारत में कहीं बहुत अधिक वर्षा होती है और कहीं बहुत कम। कुछ स्थानों में अल्पकाल में ही बहुत अधिक वर्षा हो जाती है। भारत में साधारणतः वर्षभर में कितनी वर्षा होती है, यह जानने के लिए कौतूहल हो सकता है। भारत में साधारणतः जितने परिमाण में वर्षा होती है, यदि वह भारत की ८१ करोड़ एकड़ भूमि में सर्वत्र समानभाव से बरसे, तो भारत की प्रत्येक इंच भूमि में वर्ष में ४२ इंच वर्षा हो। इस हिसाब से भारत की एक एकड़ भूमि में सालभर में जितने परिमाण में वर्षा होती, वह वजन करने से एक लाख मन से भी अधिक ठहरती। उसमें ८१ करोड़ से गुणा करने से भारत की कुल सालाना वृष्टि का परिमाण प्राप्त हो जायगा। वजन का यह परिमाण कितना अधिक होगा, यह सहज ही समझा जा सकता है। भारत में जिस परिमाण में वर्षा होती है, उसका यदि समान भाव से वितरण होता, तो देश में अभी जिस परिमाण में खाद्यान्न और अन्यान्य फसलें पैदा होती हैं, उससे कई गुनी अधिक फसल पैदा होती। किन्तु दुर्भाग्यवश भारत में कहीं बहुत अधिक वर्षा होती है और कहीं बहुत कम। ये दोनों ही बातें खेती के लिए हानिकारक हैं। उदाहरणस्वरूप आसाम के खसी पहाड़ी क्षेत्र में स्थित चेरापूंजी नामक स्थान में वर्ष में ४२५ इंच वर्षा होती है, जो संसार में सबसे अधिक है। दूसरी ओर, राजपूताना के पश्चिमी जिलों में, जैसे गंगानगर, बीकानेर, चूरू आदि के अधिकांश स्थानों में वर्षभर में केवल ११ इंच वर्षा होती है और इस कारण से ये अंचल मरुभूमि में परिणत हो गये हैं। इसके अतिरिक्त कुछ स्थानों में एक साथ ही बहुत अधिक वर्षा होने के कारण, भूमि-क्षरण होता है और मिट्टी की उर्वराशक्तिवाले तत्त्व बहकर चले जाते हैं। वार्षिक वृष्टि के परिमाण की दृष्टि से भारत पाँच भागों में बाँटा जाता है (१) वे स्थान, जहाँ वर्षभर में कुल ७५ इंच से अधिक वर्षा होती है, (२) वे स्थान, जहाँ सालभर में ५० से ७५ इंच तक वर्षा होती है, (३) वे स्थान, जहाँ ३० से ५० इंच

तक वर्षा होती है, (४) वे स्थान, जहाँ १५ से ३० इंच तक वर्षा होती है और (५) वे स्थान, जहाँ १५ इंच से कम वर्षा होती है।

भारत की एक तिहाई भूमि में साल में ५० इंच से अधिक वर्षा होती है। कभी-कभी कुछ गड़बड़ी होने पर भी साधारण तौर पर खेती के लिए इन स्थानों में वर्षा हो जाती है। देश के दूसरे एक तिहाई भाग में ३० इंच से लेकर ५० इंच तक वर्षा होती है। खेती के लिए वर्षा का यह परिमाण पर्याप्त है, किन्तु वर्षा की अनियमितता के कारण बीच-बीच में फसल की क्षति पहुँचती है और सूखा पड़ जाता है। बाकी एक तिहाई भूमि में ३० इंच से कम वर्षा होती है। जिन सब स्थानों में १५ इंच से कम वर्षा होती है, वे अर्द्धमरुभूमि जैसे हैं। वहाँ मनुष्य बहुत कम बसते हैं। १५ इंच से ३० इंच तक वर्षावाले स्थानों में अन-कष्ट लगा ही रहता है। वैसे क्षेत्रों में देश की एक चौथाई आबादी है। अतः वैसे क्षेत्र देश के लिए विषम समस्या बन गये हैं।

पहले कहा गया है कि केवल भूमि का होना ही पर्याप्त नहीं है। भूमि के खेती-योग्य होने के लिए संतोषजनक मिट्टी की परत और पर्याप्त वर्षा, इन दोनों का होना आवश्यक है। इसलिए भारत की कुल व्यवहार-योग्य भूमि ५,०४४ लाख एकड़ होने पर भी खेती-योग्य भूमि का परिमाण मोटे-तौर पर केवल ३,४९२ लाख एकड़ रह जाता है। अर्थात् भारत में व्यवहार-योग्य भूमि प्रतिव्यक्ति १४० एकड़ रहने पर भी खेती-योग्य भूमि ९७ एकड़ पड़ती है। भारत की खेती-योग्य भूमि है तो ३,४९२ लाख एकड़, परन्तु १९५२ ईसवी के हिसाब के अनुसार २,८६६ एकड़ भूमि में खेती होती है। किन्तु,[1] भारत की कुल ८,१२५ लाख एकड़ जमीन में से ६,२३४ लाख एकड़ जमीन के तथ्यादि के कागजात प्राप्त हुए हैं जिसका अंचलवार विवरण परिशिष्ट [1](ख) में दिया गया है। इसके अतिरिक्त जिस २,८६६ लाख एकड़ भूमि में खेती होती है, उसका विवरण भी दिया गया है। भारत के विभिन्न अंचलों की जन-संख्या पर तुलनात्मक विचार करने से प्रकट होता है कि जिन अंचलों की भूमि उर्वरा है और वर्षा भी प्रचुरमात्रा में होती है वहाँ मनुष्यों की आबादी घनी है, उदाहरण के लिए गंगा नदी की निचली समतल भूमिवाले क्षेत्र (Lower Gangetic Plains) पर विचार किया जाय।, इस क्षेत्र की मिट्टी भारत की सभी उर्वरा मिट्टियों में श्रेष्ठतम है। यहाँ वर्षा भी

न बहुत अधिक होती है और न बहुत कम। उत्तरी बंगाल के तीन जिलों को छोड़कर सम्पूर्ण पश्चिमी बंगाल, छोटा नागपुर को छोड़कर बाकी बिहार और उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग के बलिया, गोरखपुर आदि आठ जिले भी इस क्षेत्र में हैं। इन क्षेत्रों की आबादी ७०० लाख है। प्रति वर्गमील की आबादी ८३२ है। भूमि का क्षेत्रफल ५३८ लाख एकड़ है, अर्थात् प्रतिव्यक्ति ·७७ एकड़ जमीन पड़ती है। व्यवहार-योग्य भूमि का परिमाण ५३२ लाख एकड़ है, अर्थात् प्रतिव्यक्ति ·७३ एकड़ व्यवहार-योग्य जमीन पड़ती है। खेती-योग्य भूमि का क्षेत्रफल ३५६ लाख एकड़ है यानी एक व्यक्ति पर खेती के योग्य ·५१ एकड़ जमीन पड़ती है। सम्पूर्ण भारत के साथ तुलना करने पर यह प्रकट होगा कि इस क्षेत्र में भूमि पर जनसंख्या का कितना अधिक दबाव है। भारत में प्रति वर्गमील जनसंख्या २८२ है और प्रतिव्यक्ति भूमि का क्षेत्रफल २·२५, व्यवहार-योग्य भूमि १·४० और खेती-योग्य भूमि ·९७ एकड़ पड़ती है। यह तो घनी आबादीवाले क्षेत्रों की स्थिति का उदाहरण है। भारत के जिन क्षेत्रों में मध्यम श्रेणी की आबादी है, जिसे जन-गणना की रिपोर्ट में Medium density region कहा जाता है, उन क्षेत्रों की अवस्था पर विचार करने से यह प्रकट होगा कि वहाँ भी भूमि पर जनसंख्या का भार कम नहीं है, बल्कि घनी आबादीवाले क्षेत्रों से भी अधिक है। समावर्ती अचल के बाहर ऊपर की ओर समतल क्षेत्र है। अर्थात् पूर्वी पंजाब, पटियाला, दिल्ली आदि दक्षिण दाक्षिणात्य, उत्तर दाक्षिणात्य और गुजरात-काठियावाड़, ये सब मध्यम आबादी के क्षेत्र हैं। इस क्षेत्र का क्षेत्रफल २,३९३ लाख एकड़ और आबादी ९७४ लाख है, अर्थात् प्रति वर्गमील २६० व्यक्तियों की आबादी है। इस क्षेत्र में प्रतिव्यक्ति २·४६ एकड़ जमीन पड़ती है। व्यवहार्य और खेती-योग्य भूमि का परिमाण प्रतिव्यक्ति क्रमशः १·७४ एकड़ और १·२२ एकड़ पड़ता है। इस क्षेत्र की कुल भूमि का ५० प्रतिशत भाग और व्यवहार-योग्य भूमि का ७० प्रतिशत भाग खेती के उपयुक्त है। सम्पूर्ण भारत में कुल जमीन का केवल ३५ प्रतिशत भाग और व्यवहार-योग्य भूमि का ५६ प्रतिशत भाग खेती के उपयुक्त है। अर्थात् सम्पूर्ण भारत की तुलना में इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक अंश भूमि में खेती की जाती है। अन्यथा इस क्षेत्र की जमीन बहुत अच्छी नहीं है। वर्षा भी अपेक्षाकृत कम होती है। वर्षा की अनियमितता के कारण अच्छी

तरह खेती भी नहीं होती। फिर भी सारे भारत की तुलना में इस क्षेत्र में कुल भूमि या व्यवहार-योग्य भूमि के इतने अधिक भाग में खेती होती कैसे है? प्रतिव्यक्ति इतनी अधिक खेती-योग्य जमीन हुई कैसे? इसका कारण यह है कि इस क्षेत्र में जन-संख्या क्रमश बढ रही है। वर्षा के कम और अनियमित होने के कारण खेती करने में बाधा पहुँचती है और फसल की पैदावार घटती है। इसीलिए लोग खराब जमीन को भी यथासम्भव अधिक परिमाण में खेती-योग्य जमीन में परिणत करते हैं जिसमें कि कुछ जमीन परती रह जाने और बीच-बीच में फसल नष्ट होने पर भी अधिक जमीन रहने के कारण किसी प्रकार काम चल जाय। सारे भारत में २७ प्रतिशत भूमि में जोताई होती है, किन्तु यहाँ २६ प्रतिशत भाग में जोताई होती है। इससे भी यह प्रकट होता है कि इस क्षेत्र में पर्याप्त अनुपजाऊ भूमि (Sub-marginal lands) में खेती होती है। इसीलिए इतनी अधिक भूमि परती रखनी पडती है। भारत की आबादी की एक और विशेषता के बारे में यहाँ विचार करने की आवश्यकता है। भारत के जिन क्षेत्रों में आबादी कम है, उन्हें Low density region कहा जाता है। इन क्षेत्रों की आबादी ७९२ लाख है और प्रति वर्गमील १२९ व्यक्तियों की आबादी है। भूमि की बनावट और वर्षा की स्थिति के कारण, खेती करने में सुविधा न होने के कारण, इन क्षेत्रों में इतनी कम आबादी है। किन्तु इन क्षेत्रों में देश की सर्वाधिक खनिज सम्पत्ति है। यह सम्पत्ति आर्थिक है और बहुत मूल्यवान् है। जब इस खनिज सम्पत्ति का अच्छी तरह व्यवहार होगा, और इसके द्वारा अनेक उद्योगों का विकास होगा, तब इन क्षेत्रों की आबादी घनी हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है।

अब यहाँ संसार के साथ भारत की स्थिति की तुलना की जाती है। संसारभर में कुल ३,२५१ करोड एकड भूमि है, अर्थात् भारत की कुल भूमि की ४० गुनी है। सारे संसार की आबादी २४० करोड है और एक व्यक्ति पर १३ ५४ एकड जमीन पडती है अर्थात भारत में एक व्यक्ति पर जो २ २५ एकड भूमि पडती है उससे ६ गुनी अधिक। संसार में प्रतिव्यक्ति ३ ५१ एकड खेती-योग्य भूमि (Agriculturable area) है और इस खेती-योग्य भूमि में से १ २६ एकड भूमि फसल-योग्य (Arable land) है, अर्थात् जाती जानेवाली जमीन समेत वह भूमि जिसमें फसल पैदा की जाती है।

ससार के जमीन-सम्बन्धी विवरण मे खेती-योग्य भूमि (Agriculturable land) का अर्थ होता है जोती जानेवाली जमीन के साथ-साथ फसली जमीन। इसके अतिरिक्त स्थायी चरागाह और घासवाली जमीन ('Permanent meadow and pasture) भी इसमें शामिल है। भारत में "Permanent meadow and pasture" नाम की कोई भूमि की अलग श्रेणी नही है। इस प्रकार की यदि कोई जमीन है भी, तो वह फसली जमीन के अन्तर्गत मान ली गयी है। इसका अर्थ यह है कि ससार की कुल जमीन का चतुर्थांश खेती-योग्य है और खेती-योग्य जमीन के प्राय तृतीयाश में फसल पैदा की जाती है। बाकी ी तृतीयाश भूमि Permanent meadow and pasture के रूप मे रखी गयी है। दूसरी ओर भारत की भूमि के पाच हिस्सो में से दो हिस्सो मे खेती होती है और खेती-योग्य प्राय सारी भूमि में फसल पैदा की जाती है। Permanent meadow and pasture अलग से नहीं हैं। ऐसा होने का कारण क्या है? ससार की तुलना मे भारत की अधिकाश भूमि कृषि के उपयुक्त है। दूसरी ओर ससार की तुलना मे भारत के लोग अपेक्षाकृत कम जमीन में निवास करते हैं। इसीलिए उन्हें विवश होकर अनुपजाऊ जमीन में भी खेती करनी पडती है। इसीलिए यहा की अधिकाश जमीन में खेती होती है और Permanent meadow and pasture के रूप मे कोई जमीन रखना सम्भव नही है।

भूमि की बनावट के कारण जो भूमि अव्यवहार्य मानकर छोड देनी पडती है, वह कुल भूमि के अनुपात मे भारत मे ससार की तुलना में प्राय: बराबर ठहरती है, जैसे ससार मे भूमि के १२ प्रतिशत भाग में पर्वत, १४ प्रतिशत भाग मे पहाड, ३३ प्रतिशत भाग मे मालभूमि और ४१ प्रतिशत भाग में समतल भूमि है—भारत मे ११ प्रतिशत भाग मे पर्वत, १८ प्रतिशत भाग मे पहाड, २८ प्रतिशत भाग में मालभूमि और ४३ प्रतिशत भाग मे समतल भूमि है। किन्तु, इस दृष्टि से यूरोप की भूमि काफी अच्छी है। अन्यान्य महादेशो की तुलना में यूरोप मे अपेक्षाकृत बहुत कम भूमि अव्यवहार्य है। इसके अतिरिक्त यूरोप में पर्याप्त वर्षावाली भूमि का अनुपात भी सबसे अधिक है। यूरोप में प्रचुर मात्रा मे वर्षा होती है और वह निर्भर योग्य होती है, अर्थात् अनावृष्टि या अतिवृष्टि नही होती। इसीलिए ठीक मौके पर वर्षा का अभाव

नहीं होता। वर्षा की गति अच्छी होती है। फलत भूमि का सार-पदार्थ धुल नहीं जाता। भारत की स्थिति इसके विपरीत है। भारत में जिन स्थानों में प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है उन स्थानों में भी सदा वर्षा पर निर्भर नहीं किया जा सकता। बराबर अतिवृष्टि या अनावृष्टि की आशका बनी रहती है। इसके अतिरिक्त थोडे समय में ही अत्यधिक वर्षा होने के कारण भूमि के बहुतेरे सार पदार्थ धुल जाते हैं और उर्वराशक्ति क्षीण पड जाती है। ऐसी वर्षा के कारण जिन स्थानों की भूमि असमतल या ऊँची-नीची (Wavy) है, वहाँ की मिट्टी का क्षरण (Erosion) होता है। भारत और यूरोप की (रूस को छोडकर) भूमि की तुलना करने से इसका परिणाम स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

	भारत	यूरोप (रूस छोडकर)
जनसख्या (करोड में)	३६ १	३६ ६
भूमि का क्षेत्रफल (करोड एकड में)	८१ ३	१२१ ८
प्रतिव्यक्ति भूमि (प्रतिशत) —		
कुल भूमि	२२५	३०७
कृषि-योग्य भूमि	९७	१५३
आवाद भूमि	९७	९२

यूरोप की जमीन की बनावट और वर्षा के सम्बन्ध में ऊपर जो कुछ कहा गया है उसे ध्यान मे रखते हुए ऊपर के अको पर विचार करने से पता चलता है कि (१) यूरोप में कुल जमीन के ३० प्रतिशत भाग मे खेती होती है। दूसरी ओर जमीन अपेक्षाकृत कम और निकृष्ट रहने तथा वर्षा की अवस्था ठीक न रहने पर भी भारत म ४३ प्रतिशत भूमि म खेती की जाती है। भारत मे प्रतिव्यक्ति ९७ एकड भूमि खेती के योग्य है और यूरोप में ९२ एकड। (२) यूरोप की जमीन अपेक्षाकृत बहुत अच्छी और अधिक है और वहा के लोग उसके थोडे अश मे फसल पैदा करते हैं। इसीलिए वहाँ प्रतिव्यक्ति ६१ प्रतिशत भूमि स्थायी चरागाह के रूप में रख सकना सम्भव हुआ है। इसका परिणाम यह हुआ है कि (क) भारत और यूरोप म प्रति व्यक्ति आवाद जमीन यद्यपि प्राय बराबर है, तथापि यूरोप की जमीन के

उत्कृष्ट होने और जल की व्यवस्था अच्छी होने के कारण वहाँ अधिक उत्पादन कर सकना सम्भव है। इसके अतिरिक्त प्रतिव्यक्ति ६१ प्रतिशत भूमि के चरागाह रहने के कारण वहाँ प्रचुर मात्रा में दूध, माँस, अंडे आदि खाद्य पदार्थों का भी उत्पादन सम्भव है। वास्तव में यूरोप वैसा करता भी है और भारत की तुलना मे कई गुना पुष्टिकर आहार प्राप्त करता है। भारत की खेती की पद्धति जो भी हो, भूमि की बनावट, वर्षा आदि की दृष्टि से भी भारत की अवस्था यूरोप की तुलना में बहुत खराब है। यह हम लोगो के लिए एक बडी समस्या है। अब यहाँ अमेरिका और रूस इन दो बडे देशा की भूमि का भी थोडा परिचय दिया जाता है। जनसख्या और भूमि के गुणावगुण की दृष्टि से भारत की तुलना मे इन दोनो देशो की स्थिति कई गुनी अच्छी है। इन दोनो देशो की कुल जनसख्या भारत की जनसख्या से कुछ कम है, किन्तु उनकी भूमि का परिमाण भारत की कुल भूमि का प्राय दसगुना है। नीचे इन तीनो देशो की भूमि का तुलनात्मक परिचय दिया जाता है

	भारत	अमेरिका	रूस
१ जन-सख्या (करोड मे)	३६१	१५१	१९४
२ भूमि का क्षेत्रफल (करोड एकड में)	८१३	१९०५	५९०४
३ प्रतिव्यक्ति क्षेत्रफल (प्रतिशत)			
(क) कुल भूमि	२२५	१२६४	३०४६
(ख) खेती-योग्य भूमि	९७	७४१	४४८
(ग) आबाद भूमि	९७	३०२	२८७

इन सब सख्याओ का अर्थ स्पष्ट है। यह सही है कि अमेरिका और रूस मे पर्याप्त परिमाण में अव्यवहार्य भूमि है फिर भी इन दोनो देशा की व्यवहार योग्य और खेती-योग्य भूमि का परिमाण उनकी जनसख्या देखते हुए यूरोप और भारत की अपेक्षा कई गुना अधिक है।

भारतवासियों की जीविका

अपनी आय अपने भरण-पोषण के लिए कहाँ तक उपयोगी है इस दृष्टि से देश के लोग तीन श्रेणियो म विभाजित किये जाते है (१) जो लोग अपने जीवन निर्वाह के लिए कुछ भी नहीं करते या कुछ कमाते

नहीं। भरण-पोषण के लिए वे परिवार के उपार्जन करनेवाले व्यक्ति, जैसे—पिता, पति या भाई आदि पर निर्भर करते हैं। जन-गणना के विवरण में, उन्हें अनुपार्जनकारी पोषित (Non-earning dependants) कहा गया है। भारत में उनकी कुल संख्या २,३४३ लाख अर्थात् कुल जनसंख्या का ६०.१ प्रतिशत भाग है। बच्चे आदि इस श्रेणी में पड़ते हैं। (२) दूसरी श्रेणी है उपार्जनकारी पोषितों (Earning dependants) की। वे लोग जो कुछ कमाते हैं, वह उनके अपने भरण-पोषण के लिए ही पर्याप्त नहीं होता। इस श्रेणी में प्रधानतः वे लोग आते हैं, जो अपनी खेती, उद्योग या व्यवसाय के काम में भाग लेते हैं और बाहर से कुछ आमदनी नहीं करते। किन्तु, वह आय उनके भरण-पोषण के लिए पर्याप्त नहीं होती। भारत में वैसे लोगों की संख्या ३७९ लाख अर्थात् कुल जनसंख्या का १०.६ प्रतिशत भाग है। (३) बाकी सब लोग स्वावलम्बी (Self supporting) हैं। वे लोग अपने भरण-पोषण के लिए पर्याप्त उपार्जन कर लेते हैं। केवल इतना ही नहीं, उनके द्वारा उपार्जित धन से उन पर निर्भर अनुपार्जनकारी लोगों का भी भरण-पोषण हो जाता है। उनकी संख्या १०४४ लाख अर्थात् कुल जनसंख्या का २९.३ प्रतिशत भाग है। उनके उपार्जनकारी पोषितों की संख्या २१५ लाख और अनुपार्जनकारी पोषितों की संख्या १,००१ लाख है। अतएव पोषित वर्ग समेत उनकी संख्या १,६७३ लाख अर्थात् जनसंख्या का ४६.९ प्रतिशत भाग है।

भारत में जो १,०४४ लाख स्वावलम्बी व्यक्ति हैं, वे दो श्रेणियों में बाँटे जाते हैं (१) जो लोग एकमात्र या प्रधानतः खेती पर निर्भर करते हैं, उनकी संख्या ७१० लाख है। स्वावलम्बी व्यक्तियों में इनका अनुपात ६८.१ प्रतिशत है। (२) जो लोग खेती पर निर्भर नहीं करते, उनकी संख्या ३३४ लाख अर्थात् ३१.९ प्रतिशत भाग है।

जो लोग खेती पर निर्भर करते हैं, वे चार श्रेणियों में बाँटे जाते हैं : (१) *जो लोग पूर्णरूप से या प्रधानतः अपनी जमीन में खेती करते हैं।* उनकी संख्या ४५७ लाख (कृषि पर निर्भरशील व्यक्तियों का ६४.४ प्रतिशत भाग और स्वावलम्बी व्यक्तियों का ४३.८ प्रतिशत भाग) है। उनके अनुपार्जनकारी पोषितों (Non-earning dependants) की संख्या १८९ लाख और

उपार्जनकारी पोषितो की सख्या ३९ लाख है। अतएव पोषित वर्ग समेत उनकी सख्या ३१६ लाख अर्थात् कुल जनसख्या का ८८ प्रतिशत भाग है। (२) जो लोग जिस जमीन में खेती करते हैं, उसका थोडा या अधिकाश भाग उनका अपना नहीं है वे लोग। जैसे, अस्थायी प्रजा, बर्गादार आदि। उनकी सख्या ८८ लाख है (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का १२ ३ प्रतिशत भाग और स्वावलम्वी व्यक्तिया की सख्या का ८ ४ प्रतिशत भाग) । (३) खेतिहर-मजदूर १४९ लाख (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का १६ प्रतिशत भाग एव स्वावलम्वी व्यक्तियो की सख्या का १ ९ प्रतिशत भाग) है। उनके अनुपार्जनकारी पोषितो की सख्या २४७ लाख और उपार्जनकारी पोषितो की सख्या ५२ लाख है। अतएव पोषित वर्ग सहित, उनकी कुल सख्या ४४८ लाख है अर्थात् कुल जनसख्या का १२ ६ प्रतिशत भाग है। (४) जो लोग अपनी जमीन में स्वय खेती नहीं करते और अन्यान्य खेती-योग्य जमीन की मालगुजारी पाते है। उनकी सख्या १६ लाख है (खेती पर निर्भर व्यक्तियो की सख्या का २ ३ प्रतिशत भाग और स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १ ६ प्रतिशत भाग)। उनके अनुपार्जनकारी पोषितो की सख्या ३३ लाख और उपार्जनकारी पोषितो की सख्या ४ लाख है। अतएव पोषित-वर्ग सहित उनकी सख्या ५३ लाख, अर्थात् कुल जनसख्या का १ ५ प्रतिशत भाग है। इस प्रकार पोषित-वर्ग समेत खेती पर निर्भर लोगो की सख्या कुल २,४९१ लाख, अर्थात् कुल जनसख्या का ६९ ८ प्रतिशत भाग है।

खेती पर निर्भर न करनेवाले जो ३३४ लाख स्वावलम्वी व्यक्ति हैं, उनमे (१) दूसरा से काम करानेवाले व्यक्तिया, अर्थात नियोजको (Employers) की सख्या ११ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगों की सख्या का ३ ३ प्रतिशत भाग तथा कुल स्वावलम्बी व्यक्तियो की सख्या का १'१ प्रतिशत भाग) है। (२) जो लोग दूसरो के यहाँ नौकरी न कर स्वय ही स्वाधीन रूप से काम करते है (नियोजको को छोडकर Self employed persons other than the employers) उनकी सख्या १६५ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगो की सख्या का ४९ ४ प्रतिशत भाग तथा कुल स्वावलम्वी व्यक्तियो की सख्या का १५ ७ प्रतिशत भाग) है। (३) जो लोग दूसरो के यहाँ नियुक्त होकर काम करते है (Employers), उनकी सख्या

१४८ लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवियों की संख्या का ४४ ३ प्रतिशत भाग और कुल स्वावलम्बी व्यक्तियों की संख्या का १४ २ प्रतिशत भाग) है। (४) गैर-कृषि जमीन का भाड़ा पानेवाले, पेन्शन पानेवाले और अन्यान्य विविध वृत्तिवाले लोगों की संख्या १० लाख (स्वावलम्बी गैर-कृषिजीवी लोगों की संख्या का ३ प्रतिशत भाग और कुल स्वावलम्बी व्यक्तियों की संख्या का ·९ प्रतिशत भाग) है।

गैर-कृषिजीवी स्वावलम्बी व्यक्तियों में कितने लोग क्या काम करते हैं, उसका विवरण नीचे दिया जाता है :

(१) चाय, काफी आदि की खेती, भेंड़, भैंस आदि का पालन (प्रधान जीविका) एवं मछली-उत्पादन तथा वन-सम्बन्धी कार्य आदि प्राथमिक उद्योगों (खेती और खान का काम छोड़कर) में नियुक्त लोगों की संख्या २४ लाख (७ ४ प्रतिशत) है। (२) खानों में ५ ७ लाख (१ ८ प्रतिशत) लोग नियुक्त हैं। (३) चावल, आटा आदि की तैयारी, वस्त्र-उद्योग और चमड़ा-उद्योग में ५५ १ लाख (१७ प्रतिशत) लोग लगे हैं। (४) धातु की वस्तुओं के उत्पादन और रासायनिक पदार्थों की तैयारी में १२ ४ लाख (३ ८ प्रतिशत) लोग हैं। (५) अन्यान्य उत्पादन-उद्योगों में २४ ३ लाख (७ ५ प्रतिशत) व्यक्ति नियुक्त हैं। (६) घर, सड़क, पुल, रेलमार्ग, तार और टेलीफोन लाइन आदि के निर्माण-कार्य में १५ ९ लाख (४ ९ प्रतिशत) लोग लगे हैं। (७) वाणिज्य में ५९ लाख (१८ २ प्रतिशत) व्यक्ति हैं। (८) परिवहन-कार्य में १९ लाख (५ ९ प्रतिशत) व्यक्ति जीविका पाते हैं। (९) स्वास्थ्य, शिक्षा और शासन-कार्य में ३२ ९ लाख (१२ २ प्रतिशत) लोग नियुक्त हैं। (१०) शेष अन्य कामों में ७४ ४ लाख (२३ ३ प्रतिशत) व्यक्ति लगे हैं। इनमें से (क) १,४२४ हजार लोग घरेलू नौकरी में, (ख) ५६५ हजार व्यक्ति कपड़े आदि धोने के काम में, (ग) ५११ हजार व्यक्ति नाई के काम में, (घ) ३६९ हजार व्यक्ति धर्मसम्बन्धी, दातव्य और जन-कल्याण के काम में, (ङ) २३० हजार व्यक्ति कानून-पेशे में, (च) २१४ हजार व्यक्ति आमोद प्रमोद (चित्त विनोद के काम) में, (छ) ४५८ हजार व्यक्ति होटल, रेस्तराँ आदि में, (ज) ३९ हजार व्यक्ति ललितकला, साहित्य और समाचार-पत्रों में लगे हैं। अर्थात् इन कामों में कुल ३,८१० हजार व्यक्ति

नियुक्त है। इसके अतिरिक्त इस श्रेणी में ऐसे अनेक लोग हैं, जो अपने को स्वावलम्बी तो बतलाते हैं, परन्तु क्या काम करते हैं, इसका विवरण नही देते।

कुल ३३४ लाख गैर-कृषिजीवी स्वावलम्बी लोगों पर ६७३ लाख अनुपार्जनकारी पोषितो और ६९ लाख उपार्जनकारी पोषितो का भार है। अतएव पोषित वर्ग समेत गैर-कृषिजीवियों की कुल सख्या १,०७६ लाख अर्थात् भारत की कुल जनसख्या का ३० २ प्रतिशत है।

यहाँ एक ऐसे विषय पर विचार किया जा रहा है, जिसकी जानकारी भूदान-यज्ञ के लिए विशेष रूप से आवश्यक है। वह विषय है—वैसे लोगो की सख्या भारत में कितनी है, जो खेती का काम तो करते हैं, पर हैं भूमिहीन। ऊपर उल्लिखित कृषि पर निर्भरशील व्यक्तियो की दूसरी श्रेणी में जो लोग पूर्णत दूसरो की जमीन जोतते हैं, वे भूमिहीन हैं। तीसरी श्रेणी के लोग अर्थात् खेतिहर मजदूर पूर्णत भूमिहीन नही हो सकते। ऐसे कुछ खेतिहर मजदूर है, जिनके पास सामान्य परिमाण में भूमि है। किन्तु, उनकी प्रधान जीविका खेती-मजदूरी है। दूसरी ओर, जिनकी जीविका प्रधानत गैर-कृषिगत कामो से, अर्थात् उद्योग, व्यवसाय आदि से चलती है, वे भी सहायक धंधे के रूप में खेती का काम करते हैं। भारत के भूमिहीन किसान प्राय उक्त तीन प्रकार के हैं। उनकी कुल सख्या २१२ लाख है। जनगणना में सगृहीत तथ्यो के आधार पर उनके उपार्जनकारी और अनुपार्जनकारी पोषितो की सख्या ५३२ लाख ठहरायी जा सकती है। इस प्रकार पोषित वर्ग समेत उनकी सख्या ७४४ लाख अर्थात् भारत की कुल जनसख्या का २० ६ प्रतिशत भाग है। जो लोग अपने हाथ से खेती करना चाहते है, उन्हे कुछ-न-कुछ जमीन मिलना उचित है। वैसा न होने पर भी इन ७४४ लाख लोगो को भूमि देनी होगी, यह भूदान-यज्ञ की न्यूनतम माँग है। भारत के कृषिजीवी श्रेणी-समूह और भूमिहीन कृषको का राज्यवार और विभागवार विवरण परिशिष्ट (ख) में दिया गया है।

जीविका के मामले में ब्रिटेन, अमेरिका आदि देशो से तुलना करने पर भारत की स्थिति स्पष्ट हो जायगी। किन्तु, इन देशों में आँकडे इस रूप से सगृहीत और प्रकाशित होते हैं कि उनकी भारत के आँकडो से अत्यन्त सूक्ष्म-भाव से तुलना नही की जा सकती। तब मोटे तौर पर दो विषयों के बारे में

तुलनात्मक विचार करने की चेष्टा की जा रही है। प्रथमतः स्वावलम्बी और पोषित व्यक्तियों के सम्बन्ध मे, और द्वितीयतः विभिन्न श्रेणियों के उत्पादन-मूलक कार्यों में नियुक्त लोगो के सम्बन्ध में। (१) भारत में प्रति हजार स्वावलम्बी व्यक्तियो (Self supporting persons) पर कुल २,५०४ पोषितो का भार है। अमेरिका मे एक हजार स्वावलम्बी व्यक्तियों पर १,५४७ पोषित व्यक्तियों का और ब्रिटेन में एक हजार स्वावलम्बी व्यक्तियों पर केवल १,२०७ पोषित व्यक्तियों का भार पड़ता है। इससे भारत की बेकारी की स्थिति स्पष्ट होती है। (२) प्रति हजार स्वावलम्बी व्यक्तियों में से (क) ७०६ व्यक्ति कृषि, पशु-पालन, वन और मछली-उद्योगों में भारत में लगे हैं, जब कि अमेरिका और ब्रिटेन में इन उद्योगों में क्रमश: १२८ और ५० व्यक्ति प्रतिहजार लगे हैं, (ख) १५३ व्यक्ति भारत में खनिज उत्पादन और वाणिज्य के काम में लगे हैं, जब कि अमेरिका और ब्रिटेन में यह संख्या क्रमशः ४५६ और ५५५ है, एवं (ग) १४१ व्यक्ति भारत में अन्यान्य कामों में लगे हैं, जब कि अमेरिका और ब्रिटेन में यह संख्या क्रमशः ४१६ और ३९५ ठहरती है। इन संख्याओं से जो बात प्रकट होती है, वह यह है—(क) प्रथम कार्य है खाद्य-उत्पादन का। भारत में एक हजार व्यक्तियों मे से ७५६ व्यक्ति खाद्योत्पादन में लगे हैं और अपने उपयुक्त खाद्यान्नों के उत्पादन के अतिरिक्त केवल २९४ लोगों के उपयुक्त खाद्यान्न पैदा कर पाते हैं, जब कि अमेरिका में प्रतिहजार व्यक्तियों मे से केवल १२८ व्यक्ति खाद्य-उत्पादन के काम में लगे हैं और अपनी जरूरत के अलावा इतना अधिक उत्पादन कर लेते हैं कि देश के बाकी ८७२ व्यक्तियों की जरूरत पूरी होने के बाद भी पर्याप्त मात्रा में अनाज विदेशों को भेजने के लिए बच जाता है। ब्रिटेन में प्रतिहजार केवल ५० व्यक्ति खेती का काम करते हैं। यद्यपि इस देश में विदेशों से खाद्यान्नों का आयात भारी परिमाण में होता है फिर भी हजार में केवल ५० व्यक्ति ही खेती क`, यह कम विस्मय की बात नहीं है। इसके अतिरिक्त इससे यह भी प्रकट होता है कि भारत में उद्योगों का पर्याप्त विस्तार न होने के कारण भूमि आदि खाद्योत्पादन के क्षेत्र में लोगों की बड़ी भीड़ है। फलतः खाद्य-उत्पादन का परिमाण भी बहुत अधिक नहीं बढ़ पाता है। यद्यपि भारत की कृषि-प्रणाली में पर्याप्त उन्नति होना शेष है, फिर भी उत्पादन के कार्य म

नियुक्त प्रतिव्यक्ति पर अभी बहुत कम उत्पादन होता है। इससे प्रकट होता है कि भारत में बहुत-सी निकृष्ट भूमि में भी खाद्योत्पादन किया जा रहा है। (ख) दूसरा काम उद्योग-वाणिज्य का है। अन्य दो देशों की तुलना में भारत की औद्योगिक अवस्था कितनी शोचनीय है, यह इससे प्रकट होता है। (ग) तीसरा स्थान अन्य विविध सम्पत्तिमूलक और कल्याणमूलक कार्यों का है। भारत मे इन सब कामो में इतने कम लोग लगे है कि अन्य दो देशो की तुलना में भारत की दरिद्रता स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है।

इस प्रसग में भारत और अन्य देशो की राष्ट्रीय आय और प्रतिव्यक्ति वार्षिक आय कितनी है, यह जानने का कौतूहल हो सकता है। इस सम्बन्ध में जितने आँकडे प्राप्त हुए हैं, वे नीचे दिये जाते है

देश	वार्षिक राष्ट्रीय आय (करोड रुपयो में)	प्रतिव्यक्ति वार्षिक आय (रुपयो में)
भारत (१९५३ ५४)	१,०६,०००	२८३
पाकिस्तान ('४९)	१,६७१	२२३
बर्मा ('५२)	—	११८
लका ('५३)	—	५१४
जापान ('४२)	—	८२०
फिलीपाइन्स ('५०)	—	७८७
न्यूजीलैण्ड ('५३)	—	४,७२७
आस्ट्रेलिया ('५२)	—	४,२०७
ब्रिटेन ('५३)	१९,६२५	३ ८५८
अमेरिका ('५३)	—	९,१९६
कनाडा ('५३)	—	५,६८८
फ्रास ('५२)	—	२,३२१
इटली ('५३)	—	१,८५३
नार्वे ('५०)	—	२,३६९
स्वीडेन ('५३)	—	४,७७२
नीदरलैण्ड ('५३)	—	२,३३६

डेनमार्क ('५३)	—	३,५७२
स्विट्जरलैण्ड ('५३)	—	४,६८४

जहाँ अमेरिका और ब्रिटेन में प्रतिव्यक्ति की वार्षिक आय क्रमश ९,१९६ और ३,८५८ रुपये है, वहाँ भारत में प्रतिव्यक्ति की वार्षिक आय केवल २८३ रुपये है। भारत की भांति तीव्र और भारी अर्थ-वैषम्य संसार में कम है, यह बात सभी लोग जानते हैं। भारत की साधारण जनता कितनी गरीब है, इससे इसका सहज ही अन्दाज लग जाता है।

दरिद्र को भूमि चाहिए

कहा जाता है कि गाँव के अधिकांश गरीब आलसी और कर्मविमुख हैं। उनके बीच गृह-उद्योग का प्रचार करने के प्रयत्न विफल साबित हुए हैं। यह कथन ठीक नहीं है। तब क्या यह पूर्णत असत्य है ? नहीं, ऐसा भी नहीं है। बात यह है कि पहले ग्रामोद्योग पाने पर वे उसे सच्चे मन से ग्रहण नहीं करते। किन्तु, उन्हें जमीन दीजिये, वे पागल की तरह दौडे आयेंगे, क्योंकि वे पहले जमीन चाहते हैं। पहले भूमि-समस्या के हल होने पर अन्य सभी कामों की चेष्टाएँ सफल होंगी, अन्यथा कोई सफल नहीं होगी। गरीबों को कुछ आलस्य आ गया है, यह सत्य है। किन्तु, इसके लिए वे जिम्मेदार नहीं हैं। अनिवार्य रूप से बहुत दिनों तक कर्महीन रहने के कारण कर्मविमुखता आलस्य के रूप में परिणत हो जाती है। ग्रामीण दरिद्रों की भी यही स्थिति है। खेती करने से उनका आलस्य जाता रहेगा, किन्तु इसके लिए यह जरूरी है कि उनके पास अपनी जमीन हो।

बेकारी की समस्या और उसका स्वरूप

जनगणना के विवरण में १५ से ५५ वर्ष तक के लोगों को कार्यक्षम माना गया है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार सारे भारत में इस उम्र के लोगों की संख्या २१ करोड २० लाख है। किन्तु, दरिद्रता के कारण इस देश में एक ओर १० वर्ष के बालक और दूसरी ओर ६५ वर्ष के वृद्ध को भी काम करना पडता है। इस हिसाब से भारत में कार्यक्षम लोगों की संख्या २४ करोड ठहरती है। इनमें से साधारण तौर पर १४ करोड लोगों को काम मिल पाता

है। बाकी दस करोड लोगो को बेकार रहना पडता है। इन १४ करोड लोगो को भी पूरा काम नही मिल पाता। इनमें से १० करोड व्यक्ति खेती का काम करते है। जो लोग खेती का काम करते हैं, उनमें से अधिकाश को ६ महीने काम करना पडता है और बाकी ६ महीने वे बेकार बैठे रहते है। कारीगरो की सख्या ग्रामीण आबादी का दस प्रतिशत है। काम के अभाव में उन्हें भी साल में ६ महीने बैठे रहना पडता है। इस प्रकार हमारे देश में बेकारी की समस्या कितनी विषम है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। किसानो में से ७५ प्रतिशत के पास ५ एकड से कम जमीन है और उनकी वार्षिक आय बहुत कम है। रिजर्व बैंक की जाँच-पडताल से पता चला है कि जिन किसानो के पास जमीन है, उनमे से आधे लोगो की वार्षिक आय तीन सौ रुपये से भी कम है और खेती का खर्च काटने के बाद यह रकम ६० रुपये या इससे भी कम हो जाती है। भूमि-सस्कार या कृषि की उन्नति के लिए वे सालभर मे २२ रुपये से ५२ रुपये तक भी खर्च करने मे समर्थ नही है।* ग्रामीण कारीगरो की भी वार्षिक आय बहुत कम है। ७५ प्रतिशत लोग खेती और गृह-उद्योग के कामो में लगे हैं। उनकी यह दुरवस्था है। इस प्रकार इस देश म बकारी की समस्या जितनी बडी है, उतनी ही भयानक दरिद्रता की स्थिति उन लोगो की भी है, जो बेकार नही है।

प्राय सभी ग्रामोद्योगो के नष्ट होने के बाद भी जो दो चार ग्रामोद्योग किसी प्रकार मरणासन्न स्थिति मे बचे हुए थे, स्वाधीनता प्राप्ति के बाद उन्हे भी नष्ट करने के लिए स्वय देश के लोग ही उतारू है। उदाहरण के तौर पर ढेंकी से चावल कूटने या गेहूँ पीसने की बात का उल्लेख किया जा सकता है। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद गावो के सम्पन्न लोग ग्राम-ग्राम में हास्किग मशीन बैठाकर चावल तैयार करनेवाले हस्तचालित यत्रो का नाश कर रहे हैं। पश्चिम बगाल के ग्रामो में गत वर्ष तक चावल तैयार करनेवाली कम-से-कम ३६ सौ हास्किग मशीनें बैठायी गयी हैं। यदि एक मशीन प्रतिदिन ३० मन धान कूटे और वर्ष में कम-से-कम तीन सौ दिन चले, तो भी इस हिसाब से वर्षभर में कम-से-कम ढाई करोड रुपये, जो गरीब निस्सहाय लोगो के हाथ में जाते, उससे

---

* श्री अण्णासाहब सहस्रबुद्धे के 'अयोजना और आर्थिक कार्यक्रम' शीर्षक निबन्ध से ये आँकड़े लिये गये हैं।

इन सब बातों का फल यह है कि आज बेकारी और गरीबी अपनी चरमसीमा पर पहुँच गयी है। गरीबी और असहायावस्था ग्रामों की साधारण स्थिति बन गयी है और जनसाधारण की क्रय-क्षमता में कमी से अकालों का पडना स्वाभाविक-सा बन गया है।

आजकल समाचारपत्रों में और लोगों के मुँह से बेकारी की समस्या की चर्चा प्राय सुनने को मिलती है। उन लोगों के आलोच्य ये बेकार लोग कौन हैं? जिन भूख-प्यास से मरणोन्मुख करोडो दरिद्र भूमिहीनों और कारीगरों की बात ऊपर कही गयी है, वे उनमें नही हैं। इनकी आलोचना का विषय है--शिक्षित या अर्धशिक्षित बेकार। उनकी बेकारी समाप्त करनी होगी। उनकी बेकारी देश के लिए एक समस्या है इसमें सन्देह नही। किन्तु, देश की बेकारी-समस्या को दृष्टिगत रखते हुए केवल उन्हीकी बात को देश अथवा ससार के समक्ष उठाना भ्रांतिमूलक है। देश की आर्थिक उन्नति की सरकारी अथवा गैर-सरकारी आयोजनाओ में उन कोटि-कोटि भूमिहीन गरीबों को स्थान नही मिलता। यदि स्थान मिलता भी है तो सर्वथा गौण रूप में। इस प्रकार जो देश की सबसे जरूरी समस्या है, वह आज शिक्षित समाज या सरकार की दृष्टि में नही आती, यह विधि का परिहास ही तो है। विनोबाजी ने इसीलिए दु खी होकर कहा है "यदि सर्वात्मक आयोजना सम्भव न हो और यदि आंशिक आयोजना ही तैयार होनी हो तो इन कोटि-कोटि दरिद्रो को उसमें सर्वप्रथम स्थान मिलना चाहिए।" इसका कारण क्या है? वे देश में सबसे निम्न स्तर में हैं, वे सबसे अधिक गरीब हैं, सबसे अधिक असहाय और निराधार है। यहाँ मैं उदारचेता मार्क्स की एक उक्ति का उल्लेख करना चाहूँगा। उन्होंने जिस किसी काल या जिस किसी देश को लक्ष्य कर यह बात क्यो न कही हो, परन्तु आज भी मरणासन्न भूमिहीन दरिद्रो का चित्र इसमे स्पष्ट हो उठता है: "The forest of uplifted arms demanding work becomes ever thicker, while the arms themselves become ever thinner" अर्थात् जीविकोपार्जन के लिए काम की माँग करनेवाले प्रसारित हाथों का वन निरतर घना होता जा रहा है, जब कि ये प्रसारित हाथ दिन-दिन क्षीणतर होते जा रहे हैं। इसलिए आज उनके कल्याण की व्यवस्था के क्रम में कसौटी पर हर चीज की जाँच होनी चाहिए। इस प्रसग मे महात्मा

गांधी का एक बहुमूल्य वचन मानस-पट पर आता है : "I will give you a talisman. Whenever you are in doubt.........apply the following test. Recall the face of the poorest and the weakest man whom you may have seen and ask yourself, if the step you contemplate is going to be of any use to him. Will he gain something by it ? Will it restore him to a control over his own life and destiny ? In other words, will it lead to Swaraj for the hungry and spiritually starving millions ?"—"मैं आपको एक मन्त्रपूत कवच दूंगा। जब कभी किसी विषय में सन्देह हो, तभी इसकी परीक्षा कीजिये। अपने देखे हुए किसी सर्वाधिक दरिद्र, सर्वाधिक असहाय व्यक्ति का चेहरा अपने मानस-पट पर लाइये और अपने-आपसे प्रश्न कीजिये कि आप जो कुछ करने जा रहे हैं, उससे उसका कुछ उपकार होगा या नहीं ? इससे उसे क्या लाभ पहुँचेगा ? इससे वह अपनी जीवन-यात्रा और लक्ष्य-प्राप्ति में क्या सहायता पायगा ? अर्थात् क्या इससे करोड़ो भूखे और आध्यात्मिकता से वंचित लोगों का स्वराज आ सकेगा ?"

इस दृष्टि से भूदान-आंदोलन उत्कृष्टतम व्यवस्था है, इसमें सन्देह नहीं है।

गरीबी की समस्या के समाधान के उपाय

प्रश्न है कि यह दरिद्रता, शोषण और असह्य धन-वैषम्य किस प्रकार दूर होगा ? इसका उत्कृष्ट मार्ग क्या है ? इसका उत्कृष्ट मार्ग यही है कि जिन-जिन कारणों से गरीबी और शोषण की सृष्टि हुई है, उन्हें समाप्त कर दिया जाय। साराश यह कि उत्पादन के मौलिक साधन भूमि को अनुत्पादक धनी लोगों के हाथ से लेकर गरीब भूमिहीनों के हाथ में दे दिया जाय—भूमि का उचित बँटवारा हो। इसके अतिरिक्त सामान तैयार करने के यंत्र ग्रामीण कारीगरों को लौटा दिये जायें। अनेक लोग सोचते हैं कि दूसरे काम देकर भी गरीबी की समस्या समाप्त की जा सकती है। बहुत-से लोगों की धारणा है कि मशीन-

वाले उद्योगो की सहायता से गरीबी और बेकारी की समस्या दूर हो सकती है। किन्तु, थोडी गम्भीरता के साथ विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सम्भव नही है। इस समय इस देश मे जो बडे कारखाने स्थापित हैं, वे पिछले सौ वर्षो से हैं, किन्तु इन सौ वर्षों में ये केवल २५ लाख व्यक्तियों को काम दे सके हैं। इग्लैण्ड बडे कल-कारखानो के सहारे धनी बना है, यह सही है। परन्तु, यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अपने इन कारखानो मे तैयार माल की बिक्री के लिए उसे अपने से ५ गुना बडे क्षेत्र को अपने अधीन रखना पडा था। तभी वह कच्चा माल पा सका था और तैयार माल की खपत कर सका था। क्या आज ऐसा सम्भव है? भारत को यदि अपने बडे कल-कारखानो की सहायता से गरीबी और बेकारी की समस्या का समाधान करना हो, तो उसे खरीदारो की खोज में मगल आदि ग्रहो मे जाना पडेगा। इस युग मे ससार मे कही भी उसे अपना माल बेचने का स्थान या अवसर नही मिलेगा। अमेरिका मे भूमि-वितरण करने से वहाँ के प्रत्येक निवासी को १२ ६४ एकड जमीन मिलेगी। इसके अतिरिक्त वहाँ अपरिमित प्राकृतिक साधन है। रूस मे एक व्यक्ति पर ३० ४६ एकड जमीन पडती है। आस्ट्रेलिया भारत की तुलना में बडा देश है, किन्तु उसकी जनसख्या अब भी एक करोड से ऊपर नही पहुँची है। भारत में प्रतिव्यक्ति भूमि का परिमाण केवल २ २५ एकड है। जहाँ अमेरिका में प्रतिव्यक्ति कृषि-योग्य भूमि ७ ४१ एकड और रूस में ४ ४८ एकड है, वहाँ भारत में प्रतिव्यक्ति कृषि-योग्य भूमि केवल ९७ एकड है। जमीन को छोडकर जीविकोपार्जन का और कोई विशेष उपाय भी भारतीय ग्रामो में नही है। भारत प्रयत्न करने पर भी अपने निवासियो का जीवन-स्तर अमेरिका या इग्लैण्ड के मुकाबले में लाने में समर्थ नही होगा। भारत ठीक मार्ग पर चलकर ही अपनी गरीबी और बेकारी दूर कर सबके उचित जीवन-यापन की व्यवस्था कर सकेगा। दूसरी ओर, यदि भारत अमेरिका या इग्लैण्ड का पदानुसरण कर आगे बढेगा, तो वह और कुछ धन-कुबेरो की सृष्टि करने मे भले ही समर्थ हो जाय, जनसाधारण की गरीबी और बेकारी दूर करने में किसी भी प्रकार सक्षम नही होगा, बल्कि उत्तरोत्तर वह अथाह जलराशि में डूबता जायगा। विनोबाजी ने कहा है "मैंने तो आयोजना-आयोग को यह बात बतला दी है कि यदि आप लोग देश के सभी लोगो के लिए आयोजना तैयार

करने में समर्थ न हो, और केवल धार्मिक आयोजना तैयार करें, तो उसे गरीबों के लिए बनाये। इस प्रसंग में मैं राजाजी का उदाहरण देना चाहता हूँ। राजाजी-जैसे प्रवीण राजनीतिज्ञ यदि नहीं होते, तो मद्रास की क्या स्थिति होती, जरा सोचने की बात है। उन्होंने गांधीजी के दृष्टिकोण को समझकर नियंत्रण की व्यवस्था समाप्त कर दी। उनका सबसे बड़ा काम यही है कि वे अब बुनकरों की समस्या हाथ में लेकर उनके हित के लिए विशेष उत्कंठित हैं। मैंने आयोजना-आयोग को यह बात बतला दी है कि यदि बड़े कल-कारखानों की सहायता से सभी लोगों की बेकारी की समस्या हल हो जाय, तो मैं अपना चरखा जला दूँगा। परन्तु मैं जानता हूँ कि ग्रामोद्योगों के सिवा और किसी भी उपाय से इस समस्या का समाधान सम्भव नहीं होगा।" वे आगे कहते हैं : 'लोग कहते हैं कि जमीन कहाँ से दूँगा? वे दूसरे काम देने की बात कहते हैं। इस बात का कोई महत्त्व नहीं है। दूसरा काम देनेवाले आप कौन हैं? माँ की गोद से सन्तान को छीनकर दूसरा कौन काम है, जो आप उसे देंगे? ग्रामोद्योग भी तो उनके पास से छीन लिये गये हैं और छीने जा रहे हैं। आपने बुनकरों का काम छीन लिया—अब उन्हें कौन काम देंगे? भूमि की माँग तो बुनियादी माँग है। भूमि पंचभूतों में अन्यतम है। उसे देने से आप इनकार नहीं कर सकते। भारत को अपनी स्थिति और सामर्थ्य का विवेचन करने के बाद ही काम करना होगा। केवल जमीन का उचित पुनर्वितरण होने से ही ग्रामीणों का काम नहीं चलेगा। ग्राम-परिवार को मोटे तौर पर ५ एकड़ जमीन मिलने से ही स्वच्छंद भाव से जीवन-यात्रा नहीं चल सकेगी। कल-कारखानों के द्वारा जितने लोगों को काम मिलने की आशा सरकार ने की थी उतने लोगों को काम नहीं मिल सका। अभी भी यह सम्भव नहीं हो रहा है और भविष्य में यह सम्भव होगा, ऐसा भी नहीं जान पड़ता। अतएव अन्य किसी उपजीविका की व्यवस्था करनी होगी। एकमात्र ग्रामोद्योगों से ही यह सम्भव हो सकेगा। वर्तमान स्थिति में जो-जो उद्योग गृह-उद्योग के रूप में चलाये जा सकते हैं उनकी ही व्यवस्था उनके लिए करनी होगी। भोजन वस्त्र और निवास की व्यवस्था के लिए जिन चीजों का उत्पादन ग्रामों में हो सकता है, उनके उत्पादन की व्यवस्था गृह-उद्योगों के द्वारा करनी होगी। इसके अतिरिक्त जो कच्ची वस्तुएँ गाँव में उत्पन्न होती हैं और जिनसे कुछ तैयार

माल की ग्राम-वासियों को आवश्यकता पड़ती है, उन सबकी ग्रामोद्योगों के द्वारा ही उत्पादन की व्यवस्था करनी होगी। आज वैज्ञानिकों की दृष्टि विकार-ग्रस्त है। वह बड़े उद्योगों की उन्नति की ओर लगी है। इस देश का कोई वैज्ञानिक, अन्य बातें तो जाने दीजिये, क्या केवल इतनी-सी बात के लिए भी सचेष्ट है कि ढेंकी में 'बाल-बियरिंग' या अन्य कोई ऐसी वस्तु लगाकर उसका काम सहज और कम परिश्रम का बना दें। आज वैज्ञानिकों को ग्रामोद्योगों के यंत्रों की उन्नति के लिए अनिवार्य रूप से ध्यान देना होगा। हिंसा के साथ विज्ञान का अद्वैत संयोग हो गया है, इसीलिए संसार विनाश की ओर बढ़ रहा है। विज्ञान यदि जगत् का वास्तव में कल्याण करना चाहता है, तो उसे अहिंसा को अपनाना पड़ेगा। ग्राम-उद्योग से उत्पन्न खाद्य-पदार्थ, वस्त्र आदि का मूल्य मिल में उत्पादित वस्तुओं से अधिक होने पर भी सभी दृष्टियों से अथवा सारे देश के कल्याण को देखते हुए शहर-वासियों को उन्हींको अपनाना पड़ेगा। ग्राम को गरीब और बेकार रखकर मिल में उत्पादित सस्ता माल काम में लाने से काम नहीं चलेगा। शहर ग्रामों का शोषण करने के लिए नहीं, बल्कि उनकी सेवा करने के लिए ही रहेंगे।

सत्ता-विभाजन

विचारधारा को जाग्रत करने की चेष्टा करते आ रहे हैं। किन्तु, आज यह अनुभव किया जा रहा है कि भूदान-यज्ञ पूर्ण होने पर इन रचनात्मक कार्यक्रमों को सफल बना सकना सहजसाध्य होगा। समाज में व्यापक रूप से विचारबोध जाग्रत होने पर उस विचार-बुद्धि से प्रेरित होकर काम करने की प्रवृत्ति को विनोबाजी ने 'विचार-शासन' कहा है। जनशक्ति को कार्यान्वित करने के लिए विचार-शासन प्रधान उपाय है। गृह-उद्योगों के क्षेत्र में भी यही बात है। किन्तु, गृह-उद्योगों के प्रतिष्ठापन के मामले में केवल विचार-शासन के द्वारा ही पूरी सफलता नहीं मिलेगी। मान लीजिये कि किसी एक ग्राम या अंचल ने विचार-बुद्धि से प्रेरित होकर केवल घानी के तेल का व्यवहार करने की बात सोची और ग्राम की आवश्यकताएँ पूरी करने के लिए ग्राम में पर्याप्त सख्या में घानी चलानी चाही, किन्तु ग्राम में बाहर से मशीन से तैयार तेल का आना बन्द नहीं हुआ, तो गाँव का संकल्प सफल नहीं हो सकेगा। अतएव ग्राम को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि कौन चीज ग्राम में आयेगी, कौन नहीं, इसका निर्णय वह स्वयं करे। अपने सिद्धान्त के अनुसार कुछ वस्तुओं का ग्राम में प्रवेश उसे निषिद्ध करना पड़ेगा। अतः जनशक्ति को कार्यकारी बनाने के लिए दूसरा उपाय है—सत्ता-विभाजन। जब तक सारी शक्तियाँ एक जगह केन्द्रीभूत रहेंगी और ग्राम-ग्राम में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण नहीं होगा, तब तक वास्तविक 'ग्राम-राज' की स्थापना सम्भव नहीं होगी। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं "विचार-शासन और सत्ता-विभाजन, जनशक्ति के यही दो हथियार हैं। इसलिए हम यह चाहते हैं कि यदि कोई ग्राम ऐसा सोचे कि यहाँ बाहर का माल नहीं आयगा, तो उसे ऐसा करने का अधिकार प्राप्त रहे। यदि किसी ग्राम या अंचल के निवासी यह तय करें कि उस अंचल में जो धान पैदा होगा, उसे कूटने के लिए चावल मशीन में नहीं भेजा जायगा और मशीन का कूटा हुआ चावल उस अंचल में नहीं आयगा, तो ग्राम को वैसा करने का अधिकार रहे और उस अधिकार का प्रयोग करने की उसमें क्षमता रहे।" यदि सरकार यह मान ले, तो यह अहिंसा के पक्ष में अनुकूल साबित होगा। किन्तु यदि वह ऐसा न करे, तब क्या उपाय है? इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "सरकार यदि इसे स्वीकार न करे, तो हम जनसाधारण के पास जाकर कहेंगे कि यह स्वराज असली स्वराज नहीं है। उस क्षेत्र में हम प्रयत्नशील रहेंगे

और सरकार के विरोधी रहने के बावजूद हम उसे कार्यरूप में परिणत करने के लिए तैयार होंगे।" विनोबाजी आगे कहते हैं : "जब हम सत्ता-विभाजन की बात कहते हैं, तब शासनाधिकारी कहते हैं कि इस प्रकार एक बड़े राष्ट्र के भीतर छोटे-छोटे राष्ट्रों का रहना ठीक नहीं होगा। उनसे मैं यह कहना चाहता हूँ कि जब तक शक्ति का विभाजन नहीं होगा—सत्ता का विभाजन नहीं होगा, तब तक सैन्य-बल का प्रयोग अनिवार्य रहेगा—यह वे समझ लें। इसीलिए तो आज सेना के बिना काम नहीं चल पाता है और चलेगा भी नहीं। अतः चिरकाल के लिए यह निश्चय कर लीजिये कि सैन्य-बल से काम चलाया जायगा और सेना सदा सुसज्जित रखी जायगी। साथ ही यह बात भी कभी नहीं कहियेगा कि एक-न-एक दिन हम सैन्य-बल की आवश्यकता से मुक्त होना चाहते हैं। यदि किसी भी दिन सेना को छोड़ देना चाहते हैं, तो जैसा परमेश्वर ने किया है, वैसा ही कीजिये। परमेश्वर ने बुद्धि का विभाजन कर दिया है। प्रत्येक प्राणी को उसने बुद्धि दी है—बिच्छू को भी, साँप को भी, बाघ को भी और मनुष्य को भी। कम-बेशी सबको उसने बुद्धि दी है और यह कह दिया है कि तुम अपने-अपने जीवन के कार्य अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार करो। इसीलिए संसार इतने उत्तम ढंग से चल रहा है कि परमेश्वर विश्राम कर रहा है और इतना विश्राम कर रहा है कि लोगों को यह सन्देह भी हो जाता है कि परमेश्वर है अथवा नहीं? हमारे राष्ट्र को भी इस भाव से चलना चाहिए कि यह शंका उत्पन्न हो जाय कि राष्ट्रशक्ति शेष है भी या नहीं? लोग जब ऐसा कहेंगे कि भारत में राष्ट्रशक्ति नहीं प्रतीत होती है, तब यह समझा जाना चाहिए कि हमारा राज्य-शासन अहिंसक है। इसीलिए हम ग्रामराज की बात कहते हैं और इसीलिए हम चाहते हैं कि ग्रामों को ही नियंत्रण करने का अधिकार प्राप्त हो अर्थात् ग्रामवासी नियंत्रण का अधिकार अपने हाथ में लें। जनशक्ति के सम्बन्ध में यह भी एक बात उठी है कि ग्रामवासी अपने पाँवों पर खड़े हों और यदि यह निश्चय करें कि अमुक माल का हम उत्पादन करेंगे और वे सरकार से यह माँग करें कि अमुक माल हमारे यहाँ नहीं आने दिया जाय और यदि सरकार उसका आयात बन्द न कर पाये, चाहते हुए भी बन्द न कर पाये, तो उसका विरोध करने का साहस जुटाना होगा।"

भूदान-यज्ञ—प्रेम का मार्ग

अन्य देशों में हिंसा के मार्ग से धनी और निर्धन की विषमता दूर की गयी है। भूदान-यज्ञ द्वारा प्रेम के मार्ग से यह विषमता दूर की जायगी। धनी लोगों का धनीपन और गरीबों की गरीबी दूर की जाय—यही भगवान् के प्रेम की रीति है। इस प्रसग में विनोबाजी ने कहा है "भगवान् सबको समान बनाना चाहते हैं। यह उनका प्रेम है—द्वेष नहीं। मैं जो काम करता हूँ, वह भगवान् का काम है। मैं बड़ों का अहकार दूर करना चाहता हूँ और छोटों को ऊँचा उठाना चाहता हूँ। बड़ों से जमीन लेकर भूमिहीन गरीबों को आजीविका के लिए देना चाहता हूँ। इसका मतलब यह नहीं लगाया जाना चाहिए कि बड़ों के साथ मेरी शत्रुता है। मैं तो उनकी सम्मान-वृद्धि करना चाहता हूँ। उनके पास से जमीन लेकर उन्हें गरीबों का पवित्र प्रेम दिलवाना चाहता हूँ। समाज में विषमता रहने के कारण धनी और निर्धन, दोनों का अनिष्ट हो रहा है और सब मिलाकर देश की क्षति हो रही है। अन्य देशों में इस विषमता को दूर करने के लिए धनी लोगों की हत्या की गयी है। रूस में हजारों धनिकों की हत्या की गयी और तेलगाना में सैकड़ों धनिकों की हत्या की गयी। मैं भारत में बिना हत्या या खून-खराबी के यह काम पूरा करना चाहता हूँ। मेरा काम प्रेम के मार्ग से होगा। भगवान् की यही इच्छा है कि सुख और दु ख का हम आपस में बँटवारा कर लें। यदि सब लोग अपने-अपने स्वार्थ की चिन्ता करेंगे और अपने पड़ोसी के साथ सद्व्यवहार नहीं करेंगे तो ग्राम ग्राम नहीं, श्मशान हो जायगा, जगल हो जायगा।

भूमि-समस्या के समाधान में अहिंसा के मार्ग का विचार

भलीभाँति समझाने से मनुष्य विचार को ग्रहण कर सकेगा और जब वह उसे ग्रहण कर लेगा तब तदनुकूल आचरण करेगा। यह विश्वास ही अहिंसा का आधार है। मनुष्य पशु नहीं है। पशु को विचार समझाने से वह नहीं समझता। मनुष्य और पशु के बीच यही तो अतर है। पशु को भगवान् ने स्वाधीन विचार-शक्ति नहीं दी है। मनुष्य को उसने विचार-शक्ति दी है। पशु को भगवान् ने जितनी बुद्धि और चेतना दी है, तदनुसार ही वह आचरण करेगा—चाहे वह अच्छा हो या बुरा। किन्तु, मनुष्य को भगवान् ने अपरि-

मित विचार-शक्ति दी है। इस विचार-शक्ति में ही आत्मज्ञान की शक्ति भी निहित है। मनुष्य अपने आत्मज्ञान को अनन्तगुण-सम्पन्न बना सकता है। अपने को अपने शरीर तक ही सीमित मानना आत्मज्ञान की सर्वाधिक सकुचित अवस्था है। सारे संसार को, सारी सृष्टि को अपना ही विस्तार मानना आत्मज्ञान की पूर्ण विकसित अवस्था है। आत्मज्ञान जितना ही विकसित होगा, हृदय में उतना ही प्रेम का विकास होगा और जीवन उतना ही प्रेममय होगा। इस प्रेम की शक्ति से ही हृदय-परिवर्तन सम्भव होता है। हमारा जीवन जितना ही प्रेममय होगा, आत्मज्ञान का विकास भी उतना ही सहज होगा। इसीलिए प्रेम को जीवन का मूलतत्त्व कहा जाता है। आत्मज्ञान और प्रेम-भाव का विकास ही भूदान-यज्ञ का मूल तत्त्व है।

"क्या अहिंसा के मार्ग से भूमि-समस्या का समाधान सम्भव है?" विनोबाजी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है: "यदि यह सत्य हो कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ईश्वर विराजमान है और हमारी श्वास-प्रश्वास क्रिया का नियमन वही करता है, और सारी प्रेरणा वही देता है, तो मेरा विश्वास है कि सबका हृदय-परिवर्तन कर सकना निश्चय ही सम्भव होगा। यदि व्यक्तिरूपी आत्मा तैयार हो और वह परिवर्तन करना चाहे, तो परिवर्तन अवश्य होगा। मनुष्य चाहे अथवा न चाहे, जब वह प्रवाह में पड़ जाता है, तब उसकी तैरने की शक्ति

गया है, उससे यह स्पष्ट हो गया है कि इस कथन का कोई आधार नहीं है। मनुष्य विचारशील प्राणी है। सद्विचार समझाने से वह समझेगा और आज नहीं, तो कल वह तदनुसार आचरण करेगा। मनुष्य पशु नहीं है। अतएव हिंसा का आश्रय लेने की कोई आवश्यकता नहीं है। किन्तु, तब भी यदि हिंसा का पथ ग्रहण किया जाय, तब क्या उससे समस्या का समाधान सम्भव होगा? यदि यह भी मान लिया जाय कि हिंसात्मक मार्ग से धनिकों से जमीन छीनकर गरीबों को दी जा सकती है, तब भी उससे केवल भूमि या लक्ष्मी मिलेगी, प्रेम नहीं मिल सकेगा—हृदय-परिवर्तन नहीं हो सकेगा। विचार-क्रांति नहीं आयगी। हृदय-परिवर्तन या विचार-क्रांति के बिना जहाँ भूमि धनी लोगों के हाथ से छीनी जायगी, वहाँ प्रति-विप्लव या हिंसात्मक प्रतिक्रिया की सम्भावना शेष रह जायगी। इसके अतिरिक्त हिंसा के द्वारा किसी समस्या का समाधान करने से एक समस्या के स्थान पर अन्य अनेक समस्याएँ पैदा हो जाती है। उससे समस्या का वास्तविक समाधान नहीं होता, बल्कि समस्या और भी जटिल बन जाती है। हिंसा की निष्फलता की बात समझाते हुए विनोबाजी कहते हैं: परशुराम पृथ्वी से क्षत्रियों को निर्मूल कर देने के लिए चले, किन्तु उस चेष्टा में वे स्वयं क्षत्रिय बन गये। इससे हिंसा की निष्फलता का सकेत मिलता है। और भी एक दृष्टि से परशुराम के उपाख्यान में हिंसा की विफलता का सकेत मिलता है। परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन किया था। एक बार सभी क्षत्रियों की हत्या कर देने के बाद दूसरी बार हत्या करने की आवश्यकता क्यों पड़ेगी? इसका अर्थ यह है कि एक बार भी पृथ्वी क्षत्रियों से हीन नहीं हुई या नहीं हो सकती है। इससे हिंसा की निष्फलता प्रकट होती है। हिंसा के मार्ग से समस्या का समाधान सफल हो अथवा नहीं, आज की स्थिति में इस देश में भूमि-स्वामियों के हाथ से छीनकर भूमिहीनों को स्थायी रूप से भूमि प्राप्त करा सकना सम्भव है क्या? तेलगाना में जमीन्दारों-मालगुजारों के हाथ से जमीन बलपूर्वक छीनकर गरीब किसानों को दी गयी थी, किन्तु वही जमीन पुनः उनके हाथ से छीनकर भू-स्वामियों को दे दी गयी है और इस प्रकार उन्हें काफी क्षति पहुँची। जब तक सुदृढ़ सरकार का अस्तित्व रहेगा, तब तक हिंसा के मार्ग से जमीन छीनकर स्थायी भाव से रख सकना सम्भव नहीं होगा। इसीलिए विनोबाजी ने कम्युनिस्टों के लिए

कहा है : वे लोग यदि अपने मार्ग से गरीबों को भूमि दिलाना चाहते हैं, तो वे छोटी-छोटी हत्या, हिंसा, अग्निकाण्ड आदि को छोड़कर पूर्ण रूप से युद्ध (Total war) के लिए प्रयत्नशील हों। इस युद्ध में यदि देश कम्युनिस्टों के अधीन हो जायगा, तो उनका उद्देश्य सिद्ध हो जायगा। अन्यथा, जगह-जगह हत्या, अग्निकाण्ड आदि के द्वारा सामयिक रूप से कुछ कार्य सिद्ध होने पर भी निकट भविष्य में ही अपेक्षाकृत अधिक बर्बादी के साथ उनके हाथ से जमीन चली जायगी इसमें सन्देह नहीं है। समय, अवस्था, इतिहास और सुदृढ़ संस्कृति किसी देश में विप्लव या क्रांति की रूपरेखा को नियमित और नियन्त्रित करती है। रूस में तत्कालीन अवस्था में जिस प्रकार जिस ग से विप्लव का संघटन हुआ, वैसा ही भारत में भी होगा—ऐसी बात नहीं है। काल, अवस्था, इतिहास और संस्कृति यहाँ विपरीत दिशा में संकेत करती है। भारत की क्रांति भारतीय ढग पर सगठित होगी। विनोबा इस विषय में कहते हैं "विप्लव (क्रांति) का अर्थ समाजवादियों से अधिक मैं समझता हूँ। क्रांति की प्रकृति देश और काल के अनुसार परिवर्तित होती है। मार्क्स ने जैसा लिखा है, वैसे ही सभी देशों में और सब समय क्रांति होना सम्भव नहीं है। भारत की क्रांति भारत के अपने मार्ग से होगी। भारतीय संस्कृति का अध्ययन कर मैं स सिद्धांत पर पहुँचा हूँ कि अन्यान्य देश अनेक मामलों में भारत से शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मैं जिस क्रांति के लिए सचेष्ट हूँ, वह भारतीय संस्कृति के अनुकूल है। यह *किसी साँचे में ढली हुई उग्रपन्थी क्रांति नहीं है।* इस चिन्तन-धारा को अच्छी तरह ग्रहण कर हमारे कार्यकर्ता भूदान-यज्ञ के काम में अपने को लगायें—मैं यही चाहता हूँ।" समाज के एक व्यक्ति के लिए अन्य किसी व्यक्ति को समाप्त कर दिया जाय, यह कदापि उचित नहीं है—भारतीय संस्कृति यही कहती है। इसी संस्कृति के आधार पर भारत में क्रांति आयेगी।

साधारण तौर पर ऐसा समझा जाता है कि मार्क्स के 'डायलेक्टिकल मेटेरियलिज्म' के सिद्धान्त को स्वीकार कर साम्यवाद के सिद्धान्त और क्रांति की सृष्टि करने के लिए हिंसा का आश्रय अनिवार्य रूप से ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु विनोबाजी ऐसा नहीं मानते। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो कुछ कहा है, उससे अनेक लोगों की आँखें खुल जायँगी, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने कहा है "डायलेक्टिकल मेटेरियलिज्म (Dialectical Materialism) को मैं

'वैतर्किक वस्तुवाद' नाम देता हूँ। 'भौतिकवादी' नाम उपयुक्त नहीं है। भौतिकवादी उसे कहते हैं, जो केवल खाने-पीने और आमोद-प्रमोद करने को ही जीवन का सार समझता है। वितर्कवाद (Dialectics) केवल एक विचार-पद्धति है। उससे क्रांति के सिद्धान्त का उद्भव हो सकता है—उपक्रांति का सिद्धान्त भी उत्पन्न हो सकता है। खट्टे नीबू के पेड में यदि मीठे फल की कलम लगा दी जाय, तो उससे खट्टा-मीठा फल उत्पन्न होगा। थिसिस, एंटिथिसिस और सिन्थिसिस (Thesis, Antithesis, Synthesis)—ये ऐसी ही क्रियाएँ हैं। इस सिद्धान्त से क्रांति के पक्ष में कैसे उत्साह मिलेगा और धनी लोगों की क्यों हत्या की जाय ?, यह मैं समझ नहीं पाता।

"प्रत्येक वस्तु में गुण और दोष, दोनों ही विद्यमान हैं। दोषपूर्ण वस्तु पर गुणवाली वस्तु का आक्रमण होने से एक तीस ी वस्तु उत्पन्न होती है, जिसमें उन दोनों के दोष दूर हो जाते हैं और ोनों के ही ुण उसमें आ जाते हैं। आज समाज में यह विचार चालू है कि हर व्यक्ति को उसकी योग्यता के अनुसार पैसे मिलने चाहिए। इसमें एक गुण यह है कि इससे काम करने में उत्साह मिलता है। किन्तु, इसमें एक बुराई भी है और वह यह कि इससे दुर्बलों का सर्वनाश हो जायगा। इसीलिए इस विचार के विरोध में समता का विचार खड़ा किया जाता है। किन्तु, इसमें भी एक यह दोष है कि आलसी लोगों को बढ़ावा मिलता है। सब धन एक व्यक्ति के हाथ में जमा करने की जो क्रिया चल रही है, उसकी प्रतिक्रियास्वरूप आत्यन्तिक समता की बात उठी है। किन्तु, इसमें भी दोष है। इसीलिए इसका फल यह होगा कि एक तीसरे विचार का उदय होगा, जिसमें इन दोनों के ही ग्राह्य अंश तो रहेंगे, त्याज्य अंश नहीं। इसके बाद यदि इस नये विचार में भी दोष रह जायगा, तो उसके विरोध में एक अन्य विचार-धारा खड़ी हो जायगी। तब फिर यही प्रक्रिया शुरू होगी। इस प्रकार वितर्कवाद एक विचार-प्रणाली मात्र है। इससे किसी विशिष्ट आचार-प्रणाली का उद्भव होगा, ऐसी बात नहीं है—यद्यपि मार्क्स ने ऐसा कहा है। उनके विचार में साम्यवाद का सिद्धान्त वितर्कवाद की विचार-प्रणाली से ही उद्भूत हुआ है और इस विचार-प्रणाली से केवल साम्यवाद ही उत्पन्न हो सकता है, और कुछ नहीं। किन्तु, एक विचार-प्रणाली से एक विशिष्ट सिद्धान्त का जन्म अनिवार्य है, यह बात मैं नहीं मानता।"

अपहरण (Expropriation) के द्वारा रूस आदि देशों में क्रांति आयी है। किन्तु, भारत की क्रांति अपरिग्रह (Non-possession) की दीक्षा ग्रहण करने से आयगी। इस सम्बन्ध में बोलते हुए विनोबाजी ने जिस गम्भीर तत्त्व की व्याख्या की है, वह यह है : "मैं जिस विचार-धारा को चलाना चाहता हूँ, उसके विरोध में आज समाज में जो विचार प्रचलित है, उसको अपहरण कहते हैं। जो लोग 'अपहरण' के विचार में विश्वास करते हैं, उनकी यह धारणा है कि व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए है और समाज के स्वार्थ के लिए व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण करना दोष नहीं है, बल्कि व्यक्ति की सम्पत्ति का अपहरण करने में जो बाधा देना चाहते हैं, उनकी चिन्तन-धारा भ्रान्त है। आज इस विचार की ओर संसार के कई देश आकृष्ट हैं। इसके विरोध में मैंने 'अपरिग्रह' का विचार खड़ा किया है। साधारण तौर पर ऐसा समझा जाता है कि अपरिग्रह गांधी, विनोबा आदि जैसे सन्यासियों के लिए है और जनसाधारण के लिए अपरिग्रह नहीं है, लोभ है। सन्यास को श्रेष्ठ आदर्श-स्वरूप माना जाता है। किन्तु गार्हस्थ्य-जीवन में भी अपरिग्रह का आचरण किया जाता है। धर्म-विचार को इस प्रकार खण्डित करने से उसका फल भी केवल सकुचित परिमाण में मिलता है। इसका फल यही निकलता है कि निर्लोभी लोभी के विरुद्ध खड़ा होने पर स्वयं लोभी बन जाता है। परशुराम क्षत्रियत्व दूर करने जाकर स्वयं क्षत्रिय बन गये—यह दृष्टांत तो हम लोगों के पास ही है। जिसका विरोध करना है, उसके शास्त्र को यदि हम मानेंगे, तो उसके स्थूल रूप को तो नष्ट करने में सक्षम होंगे, परन्तु उसके सूक्ष्म रूप को हम अमर बनाकर रख देंगे। आज दुनिया में लोभ और परिग्रह का राज्य चल रहा है। परिग्रह के आसपास ऐसे कानून खड़े किये गये हैं, जिनसे परिग्रह अन्याय है,' ऐसा अनुभव नहीं होता। चोरी को हम अपराध मानते हैं, किन्तु जो व्यक्ति संग्रह करके चोरी की प्रवृत्ति की सृष्टि करता है, उसके काम को हम चोरी नहीं मानते। उपनिषद् के एक उपाख्यान में राजा कहता है कि 'मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है—कृपण भी नहीं है।' कृपण ही चोर की सृष्टि करता है। चोर को हम जेल भेज देते हैं और चोर के जन्मदाता को मुक्त रखते हैं और वह प्रतिष्ठा प्राप्त कर गद्दी पर आसीन रहता है। यह कैसा विचार ?

गीता में भी ऐसे व्यक्ति को चोर कहा गया है, किन्तु आज तो हमने गीता को सन्यासियो का ग्रन्थ मानकर त्याग दिया है।"

भूमि का प्रश्न अभी तक क्यों नहीं उठा ?

जमीन का मालिक कह सकता है कि दूसरे लोग अपने सचित अर्थ—व्यवसाय-वाणिज्य, उद्योग-धधे, धन-घर, बैंक आदि—में लगे रहकर लाभ उठा रहे हैं। उसी प्रकार मैं अपने सचित अर्थ, भूमि में लगा हूँ। इसमें मैंने क्या दोष किया ? सभी भूमि-स्वामियो ने अन्यायपूर्ण ढग से ही भूमि अर्जित की है, ऐसा नही है। यह प्रश्न भी यहाँ नही आता। न्यायपूर्वक हो या अन्यायपूर्वक, जो भूमि उसके हाथ में आयी है, वह भूमि उसकी नही है—वह भगवान् की है। उस भूमि पर सबका समान अधिकार है। किन्तु, कई युग बीत गये, इतने दिनो तक यह प्रश्न उठा क्यो नही ? ऐसा होने पर तो वे इस तरह भूमि-सग्रह नही करते। जब तक लोक-सख्या कम थी और भूमि अधिक थी, तब तक यह प्रश्न उठाने की आवश्यकता नही समझी गयी और यह प्रश्न नही उठा। आज लोगो की सख्या अधिक है और जमीन कम है। गरीबी से सारा समाज आक्रात हो गया है। इसीलिए यह प्रश्न उठ रहा है। स्थिति के कारण यह बुनियादी सत्यबोध समाज में जाग्रत हुआ है। अमेरिका में यह प्रश्न नही उठा। आस्ट्रेलिया मे भी यह प्रश्न नही उठा। वह इसीलिए कि इसकी आवश्यकता वहाँ नही है। इग्लैण्ड में भी अभी यह प्रश्न नही उठा है, किन्तु इसका कारण दूसरा है। वहाँ भूमि के अभाव के कारण उत्पन्न गरीबी को अन्य उपायो से दूर करने का सुयोग आया था। किन्तु, भारत में आज इस सत्य को स्वीकार करने और उसे कार्य-रूप में परिणत करने के अतिरिक्त दूसरा उपाय नही है। इसीलिए आज यह प्रश्न बहुत आवश्यक है।

'दान' शब्द पर आपत्ति

गरीबो के प्रति दया-भाव रखना, उनका उपकार करना पुण्य कर्म माना जाता है। साधारणत लोग पुण्य कर्म से क्या समझते हैं ? जो काम मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक कर्तव्य में स्थान नही रखता और जिसे मनुष्य दया-परवश होकर दूसरे के उपकार के लिए करता है—ऐसा कोई काम करने से

पुण्य अर्जित होता है, ऐसा माना जाता है। इसमें यह मनोभाव निहित है कि गरीबी और दुःख कष्ट के लिए धनी लोग बिल्कुल उत्तरदायी नहीं हैं और गरीबी समाप्त करने की उन पर कोई जिम्मेदारी नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि धनियों से कुछ पाने का गरीबों को अधिकार नहीं है। किन्तु, वस्तुतः अमीरी और गरीबी, दोनों का ही जन्म शोषण से हुआ है। कोई व्यक्ति दूसरे की स्वाभाविक आजीविका का अधिकार छीन लेता है, इसीसे वह धनी हो जाता है और दूसरा गरीब। इसलिए गरीबों के अधिकारपूर्ण दावे से धनियों से जमीन लेनी होगी। धनी से दान देने के लिए कहना और गरीब को उसे ग्रहण कराना धनी लोगों की कृपा ग्रहण करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इससे गरीबों की अप्रतिष्ठा ही होती है। यह तो भिक्षा के आधार पर बनी वर्तमान समाज की रीति है। इसीलिए महाभारत का 'दरिद्रान् भर कौन्तेय', ईसाई मतवालों की 'चैरिटी' (Charity) अथवा मुसलमानों का 'जकात' गरीब अभावग्रस्त लोगों के लिए आशा का कोई संदेश नहीं देता, क्योंकि भिक्षा से प्राप्त होनेवाला यह अन्न ऊपर से आता है। समाज के निम्न स्तर में जो दुर्दैवग्रस्त हैं, उनका हाथ फैलाना किसी दिन समाप्त नहीं होता है। इसके पीछे उत्पीडन-यन्त्र चुपचाप काम कर जाता है। इसीलिए 'भूदान-यज्ञ' में 'दान' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की जा सकती है। 'भूदान-यज्ञ' तो भूमिहीन गरीबों के अधिकार के दावे पर भूमि देने का आह्वान है। तब यहाँ 'दान' शब्द का प्रयोग क्यों किया गया है ? यज्ञ, दान और तप—ये तीन शब्द भारत के सांस्कृतिक क्षेत्र में महान् स्थान रखते हैं। इनके प्रयोग से भारतीयों को बड़े काम करने में जितनी प्रेरणा मिलती है, उतनी प्रेरणा अन्य किसी शब्द के प्रयोग से नहीं मिलती। इसीलिए विभिन्न कालों में इन शब्दों के अर्थ का विस्तार हुआ है। गीता में 'यज्ञ' शब्द का 'परोपकार' या 'निःस्वार्थ सेवा' के अर्थ में प्रयोग हुआ है और इस प्रकार इसके अर्थ का विस्तार हुआ है। इसे 'शब्द-क्रांति' कहा जाता है। महात्मा गांधी ने भी वर्ण-व्यवस्था, ट्रस्टीशिप आदि शब्दों का अभिनव अर्थों में प्रयोग करके इन शब्दों के भावार्थ में क्रांति ला दी है। इसी प्रकार शास्त्रज्ञ विनोबाजी ने 'दान' शब्द का परित्याग न करके उसका 'भूदान-यज्ञ' में क्रांतिकारी अर्थ में प्रयोग किया है। शंकराचार्य ने कहा है : "दानं संविभागः"। दान का अर्थ है सम्यक् वितरण या संगत वितरण। इसी अर्थ में

'भूदान-यज्ञ' मे 'दान' शब्द का प्रयोग हुआ है। दान का अर्थ यही है कि अपने पास जो कुछ है, उसका उचित विभाजन किया जाय। इस प्रकार जो दाता दान देते है, उनका हृदय-परिवर्तन हो जाता है। 'दान' का जो प्रचलित अर्थ 'स्मृति' मे लिखा है, वह है "स्वस्वत्वध्वसपूर्वकपरसत्त्वेयत्पत्त्यनुकूलत्याग. दानम्" अर्थात् अपना स्वत्व नष्ट करके दूसरे के स्वत्व की सृष्टि के लिए देने को दान कहते है। 'दान' के इस प्रचलित अर्थ में इसका व्यवहार नही हुआ है। विनोबाजी कहते है कि दान का जो प्रचलित अर्थ है, वह दान के वास्तविक अर्थ का विकृत अर्थमात्र है। दान का वास्तविक अर्थ है समविभाग। वे कहते है "मै भिक्षा-स्वरूप दान नहीं चाहता। दान शब्द का अर्थ लोगो ने विकृत कर दिया है, जिस प्रकार धर्म, विज्ञान, त्याग, नीति इत्यादि शब्दो के अर्थ विकृत किये गये है।" इस अर्थ मे गरीबो के अधिकार के आधार पर धनी लोगो से भूमि माँगने का भाव है। भूमि भगवान् का दान है और उत्पादन का मौलिक साधन है, इस बात को छोड देने पर भी एक अन्य दृष्टि से भूदान-यज्ञ मे 'दान' शब्द का उक्त अर्थ अत्यन्त उपयोगी साबित हुआ है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। किसी मनुष्य ने जो कुछ पाया है, या जो कुछ पाने मे वह समर्थ हुआ है, उसमे सारे समाज का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग है। इसलिए मनुष्य समाज का ऋणी है और समाज प्रत्येक मनुष्य से उसका हिस्सा पाने का अधिकारी है। अतएव इस दृष्टि से 'दान' शब्द का यह अर्थ सहज ही उपलब्ध होता है। इसलिए 'भूदान-यज्ञ' के द्वारा धनी लोगो के पास विनोबा की भिक्षा का सदेश-मात्र पहुँचाया जा रहा है, ऐसा समझनेवाले भ्रान्ति मे है।

भूदान-यज्ञ का 'दान' शब्द अपने प्रचलित अर्थ मे प्रयुक्त न होकर एक और भिन्न अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है, ऐसा विनोबाजी ने समझाया है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है : "भूदान-यज्ञ का 'दान' शब्द किसी-किसी व्यक्ति को खटकता है। कुछ बन्धुओं ने एक नवीन विवाह-विधि की रचना की है। जब वे इस विधि की रचना करने बैठे, तब 'कन्यादान' शब्द उन्हें खटका। गाय भैंस की तरह कन्या का दान कैसे किया जाय ? मूल विवाह-विधि में 'कन्यादान' शब्द है ही नही। वहाँ 'सम्प्रदान' अर्थबोधक शब्द है। उसका अर्थमात्र 'दिया गया' है। इसको दान किया गया, उसका दान किया गया—ऐसा अर्थ नहीं है। जिस वस्तु पर आज मेरा स्वामित्व है, उस पर आज से तुम्हारा स्वामित्व

हुआ—ऐसा भाव उसमें नहीं है। 'दिया गया' केवल इतना कहने से कोई गौणत्व प्रकट नहीं होता। इसलिए इस नयी विवाह-विधि में 'कन्या-सम्प्रदान' शब्द का व्यवहार किया गया है। जहाँ 'सम्प्रदान' है, वहाँ 'अपादान' आ ही जाता है।

"भूदान-यज्ञ में इसी प्रकार की कल्पना है। जमीन के मालिक उसके स्वामी नहीं हैं। वे कन्या के पिता की ही भाँति प्रतिपालक-मात्र हैं। सुपात्र देखकर उन्हें यह जमीन सम्प्रदान करनी होगी। ऐसे सुपात्रों की खोज भी करनी होगी। इस मामले में स्वामित्व की कल्पना कहीं नहीं है।"

'भूदान-यज्ञ' में 'यज्ञ' शब्द का अर्थ और उद्देश्य

पुस्तक के प्रारम्भ में 'यज्ञ' शब्द की व्युत्पत्ति से उत्पन्न अर्थ दिया गया है। वह अर्थ है 'यजति पूजयति इत्यर्थः' अर्थात् पूजा। किन्तु गीता में 'यज्ञ' शब्द का अर्थ-विकास हुआ है। विनोबाजी ने अपने 'गीता-प्रवचन' में 'यज्ञ' शब्द के अर्थ की बड़ी सुन्दर व्याख्या की है। वह व्याख्या संक्षेप में इस प्रकार है हम तीन संस्थाओं को साथ लेकर जन्म ग्रहण करते हैं। (१) यह विशाल ब्रह्माण्ड या अपार सृष्टि, जिसका हम एक अंश हैं। (२) जिस समाज में हमने जन्म लिया है, वह समाज। वह समाज माता-पिता, भाई-बहन, पड़ोसी आदि से गठित है। (३) देह, मन और बुद्धि का संगठन। अपनी दैनिक जीवन-यात्रा में हम अपने आसपास की सृष्टि का व्यवहार करते हैं। इसके फलस्वरूप सृष्टि की जो क्षति होती है, उसकी पूर्ति करना यज्ञ का पहला अर्थ या उद्देश्य है—जैसे, हजारों वर्षों तक खेती करने के फलस्वरूप भूमि की जो उर्वरा-शक्ति घटती है, उसकी पूर्ति करना। यज्ञ का दूसरा अर्थ है—सृष्टि का प्रयोग करने के फलस्वरूप जो गंदगी जमा हो जाती है, उसका शुद्धीकरण—यथा, कुएँ के व्यवहार के कारण आसपास जो गंदगी जम जाती है, उसको साफ करना। तीसरा अर्थ है—कोई प्रत्यक्ष कार्य करना, जैसे कपास का उत्पादन कर, सूत कातकर, वस्त्र बुनना और वस्त्रोत्पादन की वृद्धि करना या नया वस्त्र तैयार करना। समाज में माता-पिता, पड़ोसी, गुरु मित्र आदि की सेवा के कारण हम पुष्ट होते हैं। उनकी सेवा करने तथा समाज के उस ऋण को अदा करने की प्रक्रिया को 'दान' कहा जाता है। मन, बुद्धि या इन्द्रिययुक्त शरीर

मालदह जिले में पैदल-यात्रा कर रहा था, तब उसकी सभाओ में भारी संख्या में मुसलमान किसान उपस्थित होते थे। यद्यपि वे लोग आग्रह और मनोयोग के साथ भूदान-यज्ञ की भावधारा को सुनते थे, तथापि ऐसा लगता था कि 'भूदान-यज्ञ' शब्द उनके लिए उतना बोधगम्य और हृदयग्राही नही हो पाता है। इसीलिए लेखक मुसलमान श्रोताओ के समक्ष 'भूदान-यज्ञ' के विकल्प-स्वरूप 'भू-कुर्बानी' बोलता था और उसका परिणाम अच्छा निकलता था। लेखक ने इस सम्बन्ध में विनोबाजी को लिखा। विनोबाजी ने उसके उत्तर में लिखा "मुसलमानो को समझाने के लिए यज्ञ के बदले 'कुर्बानी' शब्द का इस्तेमाल किया, यह उचित ही है। भूदान से बढकर कुर्बानी और क्या हो सकती है ?"

बिना समझे दान देने का निषेध

इस आदोलन की सबसे बडी बात है दाता के अन्तर में भावक्रान्ति लाने का प्रयोजन। इसीलिए विनोबाजी शुरू से ही सबको सतर्क करते आ रहे है कि कोई भूदान-यज्ञ में निहित उद्देश्य को समझे बिना दान न दे। कारण, बिना समझे दान देने से भूमि तो प्राप्त होगी, किन्तु समाज में क्रान्ति का अर्थात भूदान-यज्ञ का उद्देश्य व्यर्थ हो जायगा। इसीलिए उन्होने सबको सतर्क करते हुए अपील की है 'हमारे तीन सूत्र है—

(१) हमारी बात सुनने के बाद भी यदि कोई भूमि न दे, तो हमे दुःख नही होगा, क्योकि हमारा खयाल है कि आज जो लोग नही दे रहे है, वे कल दें। 'विचार-बीज' अकुरित न हो, ऐसा नही हो सकता।

(२) हमारी बात समझकर यदि कोई भूमि देता है, तो हमें आनन्द होता है, क्योकि उसके फलस्वरूप सम्भावना की सृष्टि होती है।

(३) हमारी बात न समझकर यदि किसी प्रकार का दबाव पडने के कारण कोई दान करता है, तो इससे हमे दुःख होगा, क्योकि जैसे भी हो, जमीन सग्रह करना हमारा उद्देश्य नही है। हमें सर्वोदय-मनोवृत्ति की सृष्टि करनी होगी।"

इतना होने पर भी बहुत-से लोगो ने ठीक से न समझकर केवल दूसरो को दान देते देखकर दान दिया है। भविष्य मे भी कुछ लोग इसी प्रकार देगे।

इन सब दानों को वास्तविक भूदान-यज्ञ का दान कहा जा सकता है क्या ? ये सब दान श्रद्धापूर्ण हैं, क्योंकि दूसरों की देखादेखी देने का अर्थ श्रद्धा है। श्रद्धा से कोई काम करना धर्म-प्रवेश का एक उत्कृष्ट मार्ग है। इसलिए ये दान भूदान-यज्ञ में ग्राह्य हैं। किन्तु, जिन्होंने दान दिया है, अथवा देंगे, वे जब तक दान का उद्देश्य ठीक प्रकार से नहीं समझेंगे, भूदान-यज्ञ सफल नहीं माना जा सकता।

धनिकों की आन्तरिकता का प्रश्न

ऐसा कहा जाता है कि धनी लोगों ने जो दान दिया है, उसमें कुछ विशेष आन्तरिकता अथवा हार्दिकता नहीं है, उसमें कपट है। ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं, "मनुष्य के हृदय में सत् और असत् का द्वन्द्व अहर्निश चलता रहता है। इसका अनुभव अनुभूतिसम्पन्न लोग ही करते हैं। इससे सत् की रक्षा और असत् का नाश होता है। धनी लोगों के कार्यों में कुछ-न-कुछ अन्याय रहता है, इसमें सन्देह नहीं है। अन्याय-मार्ग का अनुसरण न हो, तो हजारों एकड़ जमीन का एक व्यक्ति के हाथ में जाना क्या कभी सम्भव है ? जो धनी लोग दान देते हैं, उनके हृदय में इस प्रकार का द्वन्द्व शुरू होगा—'हमने जो किया है, क्या वह ठीक है ?' परमेश्वर उन लोगों को सुबुद्धि देंगे। वे लोग अन्याय को त्याग देंगे। इस प्रकार उनका हृदय-परिवर्तन होगा।"

धनी लोगों की प्रतिष्ठा-वृद्धि का प्रश्न

कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि विनोबाजी अपने को धनी लोगों का 'भाई, पुत्र' आदि कहकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहे हैं। यह ठीक नहीं हो रहा है। उत्तर में विनोबाजी ने कहा है "तब क्या मैं धनी लोगों की प्रतिष्ठा घटाऊँ ? मैं उन्हींके द्वारा उनका कर्तव्य कराकर उनकी प्रतिष्ठा बढ़ा रहा हूँ—इसीमें क्या आप लोगों को आपत्ति है ? तब क्या उनके द्वारा बदमाशी कराकर मैं उनकी प्रतिष्ठा घटाऊँ ? वैसे ही तो उन्होंने काफी बदमाशी की है। और भी बदमाशी करने के लिए क्या वे मुझसे निर्देश की अपेक्षा करेंगे ? इसीलिए उनसे उनके अपने कर्तव्य पूरे कराने होंगे। उनका प्रेम अक्षुण्ण रखकर दान ग्रहण करना उचित है। जो दान देते हैं और जो ग्रहण करते हैं, वे दोनों ही बराबर

माना में भुक्त होते हैं—यह भाव मन में रखकर काम करने से कल्पवृक्ष के समान फल मिलेगा। अन्यथा केवल एक मुट्ठी मिट्टी मिलेगी। धमकी देकर काम कराने मे कोई आनन्द नही है। किसी प्रकार का लेन-देन का भाव इसमें नही रहना चाहिए। हमारे हृदय में ऐसी श्रद्धा रहनी चाहिए कि यदि मुझमें त्याग करने की शक्ति है, तब दूसरे लोगों में वह शक्ति क्यो न होगी? जिस परमेश्वर ने मुझे मागने की प्रेरणा दी है, वही दूसरो को देने की भी प्रेरणा क्यो नही देगा?"

वामन-अवतार

तेलगाना के भ्रमण-काल में तेलगाना-अतर्गत वारगल नामक स्थान मे भूदान-यज्ञ की भूमिका और उद्देश्य की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा था कि भूदान-यज्ञ मे दान प्राप्त करने के लिए उन्होने 'वामन-अवतार' का रूप धारण किया है। वे कहते हैं "मैं ब्राह्मण था ही, अब मैंने 'वामन-अवतार' का रूप ग्रहण किया है और भूमि-दान मांगना शुरू कर दिया है।" बाद मे उन्होंने एक बार इसी 'वामन-अवतार' का उल्लेख कर भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध मे अपनी त्रि-पदीय व्याख्या करते हुए कहा था "भूदान के बाद 'सम्पत्तिदान' वामन का दूसरा चरण होगा। इसके बाद तीसरा चरण उठेगा, यह निश्चित है। उस पुण्य-काल के लिए लोगो को तैयार होना होगा, क्योंकि उस पुण्य-युग मे उन्हें मानवता का विनम्र सेवक बनना होगा।" इससे लोगो के मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या वे अवतारवाद में विश्वास करते हैं और अपने को एक अवतार मानते हैं? विनोबाजी ने अपने एक पत्र मे इस सम्बन्ध में प्रकाश डालकर यह आशका दूर कर दी है। "किसी जीवधारी मनुष्य के सम्बन्ध मे अवतार की कल्पना मैं कदापि नही करता। विभूतिसम्पन्न, देहमुक्त ज्ञानदेव-सदृश पुरुष को भी, जिनके प्रति मेरी परम श्रद्धा है, मैं अवतार नही मानता। उन्हें मैं श्रेष्ठ सत्पुरुष मानता हूँ। राम और कृष्ण अवतार थे, क्योकि श्रीमद्भागवत, तुलसी-रामायण आदि ग्रन्थो में राम और कृष्ण को मानवता पर ईश्वरत्व का आरोप किया गया है। इससे हिन्दू-धर्मावलम्बियो को उपासना का एक आधार मिल गया है। इसीलिए मैं उन्हें अवतार मानता हूँ। और कोई अवतार मैं नही मानता। 'वामन-अवतार' व्यक्तिगत भाषा

नहीं है, वह भूदान-यज्ञ का वर्णन-मात्र है। भूदान-यज्ञ का रूप 'वामन' की तरह क्षुद्र है। किन्तु 'वामन' ने जैसा विराट् रूप धारण किया था, वैसी ही अहिंसक क्रांति भूदान-यज्ञ के द्वारा सम्भव हो सकती है। 'वामन' भिक्षा माँग रहे थे, ऐसा खयाल किया गया था, किन्तु वास्तव में वे बलि को दीक्षा ही दे रहे थे। यह सम्पूर्ण रूपक समझ लेना होगा। इस प्रकार के अवतारों का उल्लेख न करूँ, ऐसा तो नहीं हो सकता, क्योंकि हमारा समाज और मैं, दोनों इसी संस्कार से पूर्ण हैं। केवल 'वामन-अवतार' का ही उल्लेख करता हूँ, ऐसा नहीं है। 'प्रजासूय-यज्ञ', 'भूदान-यज्ञ का अश्व', नवीन 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन', इन सबका भी उल्लेख मैंने किया है। ये सब छोटे विषय भी नहीं हैं। किन्तु, इन सबका उल्लेख इसीलिए करता हूँ कि इनसे आपको सहायता मिलेगी। आप लोग क्षुद्र नहीं हैं, आप लोग महान् हैं—आप लोगों को यही सिखाना चाहता हूँ। मुझमें जो 'मैं' है, वह व्यक्तिगत 'मैं' नहीं है। वह सम्पूर्ण 'सर्वोदय'-समाज को अपने में निहित करके ऐसी भाषा बोल रहा है।"

समय और परिस्थिति के प्रयोजन के अनुसार आत्मा के एक-एक गुण का विकास होता है और मन्त्र के रूप में वह आविर्भूत होता है। युग के एक विशिष्ट व्यक्ति के माध्यम से वह गुण विकसित होता है और वह मन्त्र फलदायक होता है। ऐसे गुण का विकास या मन्त्र का आविर्भाव ही वास्तविक अवतार है और वह व्यक्ति निमित्त-मात्र का अवतार है। इस बारे में पहले ही हम विशद रूप से विचार कर चुके हैं।

भूमिहीन गरीब धनी का छठा पुत्र

पहले कहा गया है कि परिवार की परिधि-सम्बन्धी धारणा का विस्तार ही भूदान-यज्ञ की एक मूलभूत बात है। भगवान् किसीको एक पुत्र देते हैं, किसीको दो, किसीको तीन और किसीको चार। जिनके चार पुत्र हैं, वे सोचते हैं कि उनके पुत्र धन-सम्पत्ति को चार भागों में बाँटकर भोग करें। किन्तु यदि उन्हें एक और पुत्र हो जाय, तो क्या वे उसका अनादर करेंगे? वे उसका भी स्नेहपूर्वक स्वागत करेंगे। इसी प्रकार धनी यह समझ लें कि भूमिहीन गरीब उनका छठा पुत्र है। यह इस युग का संकेत है यह 'युगधर्म' और 'युग-कर्म' है। अन्यत्र विनोबाजी ने कहा है : "यदि आपके चार पुत्र हैं, तो मुझे

पाँचवाँ पुत्र मानें और मुझे मेरा हिस्सा दें। आज जो नहीं दे रहे हैं, वे कल देंगे। वे दिये बिना नहीं रहेंगे। भारत में ऐसा कोई नहीं है, जो मुझे भूमि-दान करने से इनकार करे।"

विनोबाजी आगे कहते हैं "छह एकड़ में से एक एकड़ दीजिये। एक एकड़ देने पर भी ५ एकड़ से कम फसल नहीं मिलेगी। एक ही मात्रा में खाद और परिश्रम उसमें लगेगा और भगवान् का आशीर्वाद भी प्राप्त होगा। हर किसान यह समझे कि ६ एकड़ जमीन में जितनी फसल होनी है, ५ एकड़ जमीन में भी उतनी ही फसल हो सकती है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि ६ एकड़ में से १ एकड़ मुझे दे। इसके फलस्वरूप परमेश्वर भी वरदान दे और गरीब लोग भी खाकर जीवन-रक्षा करेंगे।"

धनी निमित्तमात्र बनें

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था "मैंने सबको पहले ही मार दिया है। हे सव्यसाची, तुम निमित्त-मात्र बनो।" इसी प्रकार गम्भीर आत्मविश्वास के स्वर में विनोबाजी ने धनी लोगों से कहा है "भूमि धनी लोगों के हाथ से गरीबों के हाथ में जा चुकी है। प्रश्न केवल इतना है कि किस मार्ग से भूमि जायगी? हे धनी, तुम निमित्त-मात्र बनो, जिससे शांति और प्रेम के मार्ग से भूमि-समस्या का समाधान हो सके।" जनशक्ति के अभ्युदय की अनिवार्यता में कितना गम्भीर उनका विश्वास है। उनका यह दिव्यदृष्टिसूचक कथन निकट भविष्य की ओर ठीक-ठीक निर्देश कर रहा है, इसमें सन्देह नहीं। समय का परिवर्तन हो गया है। भूमि में जो अपने हाथ से खेती करके फसल उपजाये, भूमि का स्वामित्व उसीको मिलना चाहिए—यह ज्ञान समाज में शनैः शनैः फैल रहा है। देश के जनसाधारण की ओर से भी क्रमशः यही दावा उपस्थित किया जा रहा है। जनसाधारण द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों की ओर से भी भूमि-वितरण के लिए सरकार पर दबाव बढ़ रहा है। सरकार भी भूमि वितरण की आवश्यकता को क्रमशः समझ और स्वीकार कर रही है। देश के प्रायः सभी राजनीतिक दल भी भूमि के उचित बँटवारे के लिए जोर दे रहे हैं। अन्यान्य देशों की परिस्थिति भी इसके अनुकूल है। इस प्रकार मनःस्थिति और वस्तुस्थिति, दोनों ओर से समय का संकेत अनुभव किया जा रहा है। भूमि का उचित वितरण

अधिक दिनों तक रोका नहीं जा सकता। धनी लोग क्या अब तक यह नहीं समझ पा रहे हैं ? वैशाख की सन्ध्या में वायुकोण में बादल जमा हुए हैं। हवा एकदम रुकी हुई है। शीघ्र ही आँधी-पानी आयेगा। किन्तु ऐसी स्थिति में यदि कोई सोचे कि वर्षा नहीं होगी, तो उसकी बुद्धि जितनी भ्रान्त समझी जायगी, उतनी ही भ्रान्त अमीरों की बुद्धि मानी जायगी, यदि वे यह समझेंगे कि जमीन उनके हाथ में रह जायगी। भू-स्वामी लोग समय का संकेत पहचान लें। आज 'काल-पुरुष' विनोबाजी के मुँह से अपनी बात कह रहे हैं। आज युग-देवता विनोबाजी के द्वारा नवीन युग-धर्म की प्रतिष्ठा करा रहे हैं—'धर्म-चक्र प्रवर्तन' करा रहे हैं।

धनी लोगों की सम्मान-रक्षा का प्रश्न

भूमि तो धनी लोगों के हाथ से चली ही जायगी, किन्तु प्रश्न यह है कि भूमि के साथ-साथ क्या उनकी मर्यादा, सम्मान और मनुष्यत्व भी चला जायगा या उसकी रक्षा होगी ? यदि भूदान-यज्ञ के मार्ग से, शांति और प्रेम के मार्ग से भूमि-समस्या का समाधान होगा, तो धनी लोगों की इज्जत बचेगी, उनकी सम्मान-वृद्धि होगी—समाज उनका बन्धु बनेगा। किन्तु, यदि भूमि अन्य मार्ग से जायगी, तो भूमि के साथ-साथ उनका सम्मान, मनुष्यत्व, सब नष्ट हो जायगा। कानून के मार्ग से भूमि जाने पर भी उनका सम्मान और व्यक्तित्व अक्षुण्ण नहीं रहेगा। इसीलिए गया जिले के एक स्थान में विनोबाजी ने इस सम्बन्ध में चेतावनी देते हुए जमीन्दारों से कहा था "पटना में जमीन्दारों के कुछ प्रतिनिधियों ने मुझसे मुलाकात की थी। मैंने उन लोगों को साफ बता दिया था कि यदि आप लोग समय की माँग को समझकर अभी ही भूमि-दान करेंगे, तो आप बच जायेंगे। आज फिर मैं बड़े जमीन्दारों से निवेदन करता हूँ कि केवल भूमि-दान करने से ही काम नहीं चलेगा—आप भूदान-यज्ञ के काम को अपना काम मानकर उसमें अपने को लगाइये। आप लोग मुझे और कितने दिन दौड़ायेंगे ? आप लोगों को ही इस काम का भार ग्रहण करना होगा। तभी मुझे सन्तोष होगा। इससे आप लोगों के हृदय में सत्त्वगुण प्रकाशित होगा और आप समाज का नेतृत्व करने का, समाज की सेवा करने का अवसर पायेंगे। इस मामले में आप अंग्रेजों से शिक्षा ग्रहण करें। जब अंग्रेजों ने देखा कि भारत छोड़ना ही पड़ेगा, तब उन्होंने स्वयं ही उद्यत होकर एक तारीख निश्चित कर

दी और उस दिन भारत छोड दिया। यदि वे लोग वैसे भारत नहीं छोडते, तो अन्तत उन्हें भारत तो छोड़ना ही पडता, वे अपना सम्मान और श्रद्धा भी खो देते। किन्तु, उन लोगों ने बुद्धिमानी का काम किया। इससे उन्होंने भारत-वासियों का प्रेम भी पाया और आज उनका व्यवसाय भी चल रहा है। गाधीजी ने अहिंसा के पथ से स्वराज दिलाया, यह बात इतिहास में जिस प्रकार लिखी रहेगी, उसी प्रकार इग्लैण्ड के बारे में भी यह लिखा रहेगा कि भारत के स्वाधीनता-सग्राम में इग्लैण्ड ने विशेष सफलता प्राप्त की। मैं ऐसा अनुभव करता हूँ कि हमारे स्वाधीनता-सग्राम में इग्लैण्ड की नैतिक विजय हुई है। सत्याग्रह और अहिंसक युद्ध का महत्त्व यही है कि उसमें दोनो ही पक्षो की विजय होती है। हिंसात्मक युद्ध में एक पक्ष की विजय और दूसरे पक्ष की पराजय होती है। इसलिए, भाइयो, इग्लैण्ड से शिक्षा ग्रहण कीजिये। यदि सम्मान, गौरव, प्रेम, सौहार्द्र और स्नेहभाव बचाये रखना चाहते है, तो समय और सुयोग के अनुसार काम कीजिये। जमीन तो जायगी ही, किन्तु दान न देने से सम्मान और प्रेम, सब खो दीजियेगा। गरीब और कितने दिनों तक प्रतीक्षा करेंगे? प्रतीक्षा करने की या अन्य सब बातो की भी एक सीमा होती है। अब गरीब जाग गये हैं। प्रसन्न-भाव से दान देने से सौन्दर्य प्रस्फुटित होगा। उपयुक्त अवसर पर 'देशे काले च पात्रे च' दान देना उचित है। और, मैं क्या ठीक पात्र नहीं हूँ? ठीक समय पर उचित काम करने का परिणाम अच्छा होता है।"

भय-युक्त दान

कहा जाता है, भू-स्वामी लोग अभी जो दान दे रहे है, वह भय के कारण। ऐसी अवस्था में वे अपनी इज्जत और सम्मान की रक्षा किस प्रकार करेंगे? यह आपत्ति भी की जाती है कि भूदान-यज्ञ के सदेश के प्रचार के प्रसग मे जो कुछ कहा जाता है, उसमें भू-स्वामियो के लिए भय प्रदर्शन ही अधिक होता है। भू-स्वामियो को जो भय की बात बतलायी जाती है, वह खराब है—ऐसी बात नहीं है। उसे नैतिक भय कहा जाता है। इस प्रकार का भय पाकर दान देना बुरा नहीं है। शास्त्र कहता है "श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया अदेयम्, ह्रिया देयम्, भिया देयम्।" 'भिया देयम्' अर्थात् भय से दान दिया जाता है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है "इसी शब्द से हम कह रहे हैं कि भय पाकर भी दान

दीजिये। दूसरा अर्थ यह नहीं है कि यदि दान नहीं देंगे, तो आपका खून कर दूंगा। ऐसे भय से भीत होकर कोई दान दे, यह हम बिलकुल नहीं चाहते। किन्तु, यदि हम किसीसे कहें कि तुम्हारे बिछावन पर साँप है, इसलिए उसे छोड़कर हट जाओ, तो वास्तव में जो भय है, वह उसको दिखा देना हुआ। जिस बारे में मनुष्य को भय रहना चाहिए, उससे भयभीत होना उचित है और जिस चीज से भय नहीं होना चाहिए, उससे डरना अनुचित है। भय भी एक अच्छी चीज है। भय के कारण यदि कोई खराब काम करने से दूर रहे, तो वह भय ठीक ही है। किन्तु, मुझसे पूछा जाता है: 'आप ऐसा क्यों कहते हैं कि यदि झूठ बात बोलोगे तो क्षति होगी, यदि हिंसा करोगे तो अनिष्ट होगा? दुनिया में विनाश होगा, यह बात भी आप क्यों कहते हैं?' किन्तु, यह तो भय नहीं है, यह तो एक विचार है। खराब काम करने से खराब फल मिलेगा। इसलिए खराब काम मत करो। लोगों को समझाने के लिए ही हम इस तरह बोलते हैं। यदि यह भय भी हो तो 'धर्म-भय' है। समाज को यह समझा देना पड़ेगा कि समय की अवस्था समझकर यदि उदार हृदय से दान नहीं दिया जायगा, तो विपत्ति आयेगी। लोगों को भय दिखाकर धमकी देने के लिए हम ऐसी बात नहीं कहते, बल्कि इसके द्वारा हम विचार ही समझाते हैं। खराब का फल खराब ही होता है, यह समझा देना तो भय प्रदर्शन नहीं है। यह तो 'कर्म-विपाक' या 'कर्म-परिणाम' है।" और भी उन्होंने कहा है: "यह क्या धमकी देना हुआ? और यदि यह धमकी देना ही है, तो वेद ने भी धमकी दी है:

> "मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः
> सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य,
> नार्यमणं पुष्यति नो सखायं
> केवलाघो भवति केवलादि ।

अर्थात् मूर्ख निरर्थक अन्न का संग्रह करता है। वेद कहता है, मैं सत्य कहता हूँ, वह अन्न नहीं जमा करता, अपनी हत्या करता है। जो व्यक्ति अन्न जमाकर रखता है, वह अपनी मृत्यु बुला रहा है। जो व्यक्ति अकेले-अकेले खाता है, वह पुण्य नहीं, पाप का ही भोग करता है।"

अतएव, भाइयो ! जिस चीज में विपत्ति है, उसे हमें पहचानना होगा और शीघ्र ही पहचानना होगा। वृद्धावस्था आने पर वृद्धावस्था को सभी लोग पहचान जाते हैं, किन्तु, जो यौवन-काल में ही, वृद्धावस्था क्या है, यह समझकर चलता है, वह सम्मान-रक्षा करता है। इसी प्रकार विपत्ति आने से पहले ही, उसे पहचान सकने से सम्मान-रक्षा होगी।

धनी का हृदय-परिवर्तन

धनी के हृदय-परिवर्तन के बारे में विचार कर लेना आवश्यक है। कुछ लोग धनियों के हृदय-परिवर्तन की बात पर अविश्वास कर उसकी मखौल उड़ाते हैं। यह ठीक नहीं है। बाहरी परिस्थितियों से मनुष्य का हृदय-परिवर्तन हो सकता है। वही होता भी है। इस प्रकार जिसका हृदय-परिवर्तन होता है, उसके भीतर इतने दिनों तक विचार-बीज पड़ा रहता है। बाहरी परिस्थिति के जलसिंचन से वह अंकुरित हो जाता है। कारण, एक ही परिस्थिति दूसरों के हृदय पर अनुरूप भाव से काम नहीं करती। प्रबल अनुकूल परिस्थिति रहने पर भी दूसरों का हृदय अपरिवर्तित रह जाता है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते हैं - "कोई व्यक्ति वृद्ध हो गया है और उसे पुत्र-वियोग हो गया है, इसी कारण उसमें वैराग्य आया। वृद्धावस्था और पुत्र की मृत्यु के कारण वैराग्य आया, तो क्या वह असली वैराग्य नहीं हुआ ? हाँ, वह असली वैराग्य है। जब वह व्यक्ति युवा था और उसके पुत्र था, तब तक उसे आसक्ति थी। कोई व्यक्ति वृद्ध हो जाता है और उसके पुत्र की मृत्यु भी हो जाती है, फिर भी उसमें वैराग्य-भाव नहीं आता। इसका कारण यही है कि जिस व्यक्ति में वैराग्य आया, उसके हृदय में पहले से ही ऐसा भाव था और पुत्र की मृत्यु एक निमित्त-मात्र बनी, जिससे उसके अन्तर में निहित भाव जाग गया। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सद्भाव है, ऐसा विश्वास रखना पड़ेगा।"

कौन कितना दान देगा ?

अब प्रश्न उठता है कि भूमि-दान कौन देगा ? यज्ञ में सब किसीको अपने-अपने हविर्भाग की आहुति देनी होती है। भूदान-यज्ञ में धनी-गरीब का भेद न रखते हुए सबका भूमिदान करने का आह्वान किया गया है। सबसे

जमीन माँगी जाती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि सबसे समान परिमाण में भूमि माँगी जाती है। मध्यवित्त किसानों और मालगुजारों से षष्ठांश भूमि माँगी जाती है। जो लोग बड़े-बड़े मालगुजार-जमीन्दार हैं, उनसे कहा जाता है कि अपने लिए कुछ जमीन रखकर बाकी सब गरीबों के लिए दे दीजिये। जो लोग अत्यधिक गरीब हैं, उनसे अधिकारपूर्वक कुछ नहीं माँगा जाता। वे प्रेमपूर्वक जो दे देते हैं, वही प्रसाद-स्वरूप मानकर ग्रहण किया जाता है। जिस प्रकार सुदामा की सुट्टी (चावल के कण) पाकर भी भगवान् प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार यदि बहुत कम जमीनवाले गरीब किसान प्रेम और श्रद्धा के साथ कुछ देंगे, तो भारत-माता प्रसन्न होगी। इसीलिए धनी का भूमि-दान 'दान' है और गरीबों का भूमि-दान 'यज्ञ'।

एक और बात स्पष्ट होनी चाहिए। भूदान-यज्ञ की क्रांतिकारी विचार-धारा को सारे सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठित करना होगा। इसीलिए यदि अल्पसंख्यक लोगों के दान द्वारा आवश्यक भूमि-प्राप्ति सम्भव हो सके, तो भी भूदान-यज्ञ का उद्देश्य सार्थक नहीं होगा। विनोबाजी केवल प्राप्तव्य भूमि का परिमाण निर्दिष्ट कर सन्तुष्ट नहीं होते, वे दाताओं की संख्या का भी निर्देश कर देते हैं। इसीलिए विनोबाजी ने बिहार में दाताओं की संख्या ४ लाख और भूमि का परिमाण ३२ लाख एकड़ तय कर दिया था।

गरीब भूमि-दान क्यों दें ?

कहा जाता है कि भूदान-यज्ञ में गरीब किसानों से दान लेना अन्याय और निष्ठुरता है। साम्यवादी तो यह आपत्ति करते ही हैं, दूसरे लोग भी—यहाँ तक कि जिनका किसी राजनीतिक दल या आर्थिक मतवाद से कोई सम्पर्क नहीं है, वैसे ग्रामसेवक भी यह आपत्ति उठाते हैं कि गरीब किसानों के पास अभी जो भूमि है, उसीसे उनका पेट नहीं भरता। ऐसी अवस्था में उनसे जमीन माँग-कर और लेकर उन्हें और गरीब बना देने से क्या लाभ होगा ? यों तो यह आपत्ति उचित जान पड़ती है, परन्तु गम्भीर भाव से सोचने पर यह निर्मूल साबित होती है।

आज तक मनुष्य का आत्मज्ञान साधारण तौर पर अपने परिवार तक ही विकसित हुआ है। मनुष्य अपनी स्त्री, पुत्र और परिवार के लिए कितना

अधिक त्याग करता है और दुःख-कष्ट सहता है। किन्तु, परिवार के बाहर मनुष्य साधारणतः हृदयहीन रहता है। मनुष्य परिवार के बीच आत्मज्ञान-सम्पन्न मनुष्य रहता है। किन्तु परिवार के बाहर साधारणतः उसका आचरण पशु प्रकृति जैसा होता है। भूमि-समस्या के मूल में भी परिवार से बाहर के मनुष्य के प्रति मनुष्य की हृदयहीनता की भावना ही है। इस काम में जैसे धनी हैं, वैसे ही गरीब। गरीब किसान भी उन लोगों के प्रति सहानुभूति नहीं रखते, जो उनसे बदतर हालत में रहते हैं। स्वयं दरिद्र होने पर भी वह अधिक दरिद्र को देखकर सुखी होता है। सुखी और दुःखी की बात तो आपेक्षिक भाव से कही जाती है। एक व्यक्ति वैसे दुःखी दीख सकता है परन्तु दूसरे दुःखी की तुलना में वह सुखी साबित हो सकता है। भूमिहीन गरीब आज समाज में सबसे अधिक दुःखी है। समाज में आज किसीकी भी तुलना में वह सुखी नहीं मालूम पड़ता। इसीलिए वह समाज में सबकी दृष्टि में दुःखी है। समुद्र सबसे नीचे है, इसलिए पृथ्वी का सारा जल समुद्र की ओर प्रवाहित होता है। इसी प्रकार आज समाज के सभी लोगों का दान भूमिहीन गरीब को मिलना चाहिए। थोड़ी भूमिवाले किसानों को भी उसके लिए थोड़ी भूमि दान में देना उचित है। दूसरी बात, भूदान-यज्ञ का उद्देश्य स्वामित्व भाव की समाप्ति की दीक्षा देना भी है। दो हजार एकड़ भूमिवाला जिस प्रकार अपने को अपनी भूमि का मालिक मानता है, उसी प्रकार दो एकड़ जमीनवाला भी अपने को अपनी जमीन का मालिक मानता है। इसलिए धनी की तरह गरीब किसानों की भी शुद्धि की आवश्यकता है। अन्यथा क्रांति का आधार कभी भी सुदृढ़ नहीं होगा। स्वामित्व के मोह ने ही मनुष्य को पूँजीवाद का गुलाम बना दिया है—चाहे वह बड़ा मालिक हो अथवा छोटा मालिक। जिसकी सम्पत्तिमात्र दो लँगोटियाँ हैं, उसे भी इन दो लँगोटियों के प्रति आसक्ति है। पूँजीवाद का मूल यही है। इसीलिए भूदान-यज्ञ में कुछ-न-कुछ अर्पित करके स्वामित्व विसर्जन की दीक्षा गरीब किसानों को ग्रहण करनी चाहिए।

थोड़ी जमीन का गरीब मालिक अपने हृदय में अमीर जमीन-मालिक के प्रति विद्वेष-भाव रखता है। क्यों? समाज से अमीरी दूर करना वह नहीं चाहता, बल्कि वह स्वयं भी धनी बनना चाहता है और अपने हृदय में हजारों एकड़ जमीन का मालिक बनने की लालसा रखता है। भूदान-यज्ञ में भूमि की

आहुति देकर गरीब किसान लोग इस लालसा से मुक्ति पा सकते हैं। हजारों गरीब किसान जब थोड़ी-थोड़ी मात्रा में ही भूदान करते हैं, तब एक ऐसे वातावरण की सृष्टि होती है कि बड़े-बड़े जमीन्दारों और मालगुजारों में भी भूमि-दान करने की प्रवृत्ति जगती है। बिहार में और अन्यत्र बड़े-बड़े जमीन्दारों और राजाओं ने जो हजारों एकड़, यहाँ तक कि एक लाख से भी अधिक एकड़ भूमि का जो दान किया है और कर रहे हैं, उसकी पृष्ठभूमि भी यही है। बिहार में गरीबों ने दो वर्षों तक विनोबाजी पर दान की वर्षा कर दी, जो धनी लोगों के लिए लज्जास्पद थी। विनोबाजी कहते हैं : "जिसे लाज नहीं है, उसे लाज लगे, यह अच्छा है। शास्त्र ने कहा है : 'भिया देयम्'। नैतिक शक्ति को प्रकट करने की यह एक पद्धति है।" श्री दादा धर्माधिकारी ने एक सुन्दर उपमा देकर यह विषय समझाया है। उन्होंने लिखा है "किसान खानेवाला अनाज अलग रखता है, और बीज का अनाज अलग। खानेवाले अनाज से बीजवाला अनाज अधिक गुणसम्पन्न और पुष्ट रहता है। धनी के दान में स्वामित्व का बँटवारा होगा। धन और भूमि के स्वामित्व का बँटवारा उनके द्वारा होगा। किन्तु, स्वामित्व-विसर्जन की क्रांति गरीब के दान से ही सम्भव होगी। गरीब के दान में क्रांति का बीज निहित रहता है, इसलिए अहिंसात्मक क्रांति की प्रक्रिया में गरीब का स्वामित्व-विसर्जन एक मौलिक वस्तु है।"

गरीब अच्छी तरह समझकर हृदय से जो क्षुद्र से क्षुद्र दान देगा, उसका मूल्य दान के परिमाण से नहीं आँका जा सकता—वह अमूल्य होगा, क्योंकि वह दान अभिमन्त्रित होगा। वह महान् दान समाज के वातावरण को पवित्र बनायेगा और विचार-क्रांति की सृष्टि में भारी प्रेरणा देगा। वह अमूल्य अभिमन्त्रित दान समाज के लिए पारस-मणि साबित होगा। उसके स्पर्श से सारा समाज सोना हो जायगा। महाभारत की 'राजसूय-यज्ञ और नेवले' की कहानी का स्मरण कीजिये। वैसा करने से सम्यक् ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। देश में भारी अकाल पड़ा था। एक दरिद्र ब्राह्मण परिवार कई दिनों से भूखा था। ब्राह्मण किसी प्रकार थोड़ा सत्तू कहीं से ले आया। परिवार में चार व्यक्ति थे—ब्राह्मण, ब्राह्मणी, उनका पुत्र और पुत्र-वधू। उतने सत्तू से चार व्यक्तियों का पेट भरना तो दूर की बात, प्रत्येक को केवल कुछ ग्रास मिलते। चार व्यक्तियों के लिए सत्तू चार भाग में बाँटा गया। स्नान-ध्यान के बाद ब्राह्मण अपने हिस्से का सत्तू

खाने बैठा। इसी समय उसने देखा कि एक अन्नाल्पपीड़ित भूखा कंकाल व्यक्ति उसके द्वार पर खड़ा है। ब्राह्मण ने अपने हिस्से का सब सत्तू अत्यधिक श्रद्धा और विनय के साथ उसे खाने को दे दिया और स्वयं भूखा रह गया। क्षुधार्त व्यक्ति उतना सत्तू खाकर कहने लगा कि उतने से उसकी क्षुधा शांत नहीं हुई, बल्कि और बढ़ गयी। तब ब्राह्मणी ने भी अपने हिस्से का सत्तू स्नेहपूर्वक उसे दे दिया। उसे भी खाकर उस व्यक्ति ने कहा कि उसकी भूख अभी शांत नहीं हुई। तब ब्राह्मण-पुत्र ने सहानुभूतिपूर्वक अपने हिस्से का सत्तू उसे दे दिया। उसे खा चुकने के बाद भी उस व्यक्ति की भूख शांत नहीं हुई, तो पुत्र-वधू ने भी अपने हिस्से का सत्तू उसे अर्पित कर दिया। उसे खाकर उस व्यक्ति ने अपने को तृप्त किया और पुलकित मन से वह वहाँ से चला गया। एक नेवला पास के एक वृक्ष पर बैठा यह सब देख रहा था। 'कुछ जूठन बची होगी और उसे मैं खाऊँगा', सोचकर वह पेड़ से उतरा और उस व्यक्ति ने जहाँ बैठकर खाया था, वहाँ पहुँचा। किन्तु, वहाँ उसे एक कण भी नहीं मिला। तब वह उसी स्थान पर लोटने लगा और जब उठा, तो उसने देखा कि उसका आधा शरीर सोने का हो गया है। आनन्द से उसकी भूख मिट गयी। उसने सोचा कि जहाँ अतिथि खाता है, वहाँ लोटने से शरीर स्वर्णमय हो जाता है। अतएव वह उस दिन से जहाँ कहीं अतिथि को भोजन करता देखता, चला जाता और उस स्थान पर लोटता। उसकी एकमात्र इच्छा अपने शेष आधे शरीर को सोने का बना लेने की थी। किन्तु, कई वर्ष बीत गये और उसकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। असंख्य अतिथि-सत्कारवाले स्थानों में वह लोटा, पर उसका एक बाल भी सोने का नहीं हुआ। अंत में राजसूय-यज्ञ का समय आया। हजारों-लाखों व्यक्तियों ने वहाँ भोजन किया। बड़ी आशा के साथ नेवला दिन-रात राजसूय-यज्ञ के भोजनालय के एक छोर से दूसरे छोर तक लोटता रहा, किन्तु उसका एक रोम भी सोने का नहीं हुआ। युधिष्ठिर आदि ने नेवले के मुँह से उसकी सारी कहानी सुनी। राजसूय-यज्ञ करने के कारण युधिष्ठिर के मन में अहंकार उत्पन्न हो गया था। नेवले की कहानी सुनकर वह दूर हो गया और उन लोगों के हृदय में यह ज्ञानोदय हुआ कि एक गरीब दूसरे गरीब को हार्दिक सहानुभूति के साथ छोटा दान भी देता है, तो उसकी महिमा अतुलनीय है। वैसा दान जिस स्थान पर होता है, उसके आसपास का वातावरण भी पवित्र हो जाता है।

एक और कारण से भी थोड़ी भूमि के मालिकों से जमीन माँगी जाती है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "मैंने तो कई बार कहा है कि मैं अपनी सेना तैयार कर रहा हूँ। ऊँच-नीच का भेद मुझे दूर करना होगा और एक ऐसी सेना तैयार करनी होगी, जिस पर निर्भर करके हम लड़ाई करने में समर्थ होंगे। जिन लोगों ने दान दिया है या त्याग किया है और जिन लोगों ने हमारे काम के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, वही हमारे सैनिक होंगे। हमारी सेना हिंसात्मक नहीं है। हिंसात्मक सेना में उन्हीं लोगों को भर्ती किया जाता है, जिनकी छाती ३२ इंच होती है, किन्तु हमारी सेना में भर्ती होने के लिए त्याग की छाती होनी चाहिए।"

भूदान-यज्ञ में गरीबों से भूमि-दान ग्रहण करने के बारे में विनोबाजी ने और भी कहा है कि भूदान-यज्ञ में दान देना धर्मकार्य है। धर्म का आचरण केवल धनी करेंगे और गरीब नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। धनी के पास धन है, इसलिए वह रेलगाड़ी से काशी जाकर विश्वनाथ-दर्शन करेगा। किन्तु गरीब के पास गाड़ी-भाड़ा देने के लिए धन नहीं है इसीलिए वह विश्वनाथ के दर्शनों से वंचित रहेगा? वह पैदल चलकर विश्वनाथ का दर्शन कर आयगा। यह बात सुनकर हठात् विश्वास नहीं होता कि भूदान-यज्ञ के मामले में भी गरीब वैसा ही मनोभाव अपना सकेंगे। किन्तु, आज वैसे संशय का कोई कारण नहीं रह गया है। विनोबाजी के हाथ में तो एक महादरिद्र व्यक्ति भी सर्वस्व अर्पित कर अपने को धन्य मानता है। जहाँ किसी प्रतिदान की आशा न कर शुद्ध अन्तःकरण से सैकड़ों दरिद्र इस प्रकार छोटे दान कर रहे हैं, वहाँ विचार-क्रान्ति गम्भीर रूप से समाज में प्रवेश कर रही है, इस विषय में कोई सन्देह कैसे हो सकता है?

आन्दोलन में गरीब का कर्तव्य

सर्वात्मक क्रान्ति को सम्पन्न करने का कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि उसमें देश के सभी श्रेणी के लोगों के लिए कार्यक्रम हो, अर्थात् सभी श्रेणी के लोग क्रान्ति की सृष्टि में सक्रिय भाग लेने का सुयोग पायें और भाग लें। ऐसा न होने से वास्तविक क्रान्ति की सृष्टि नहीं होगी। भूमि माँगने के साथ-साथ सम्पत्ति का अंश न माँगने से भूदान-यज्ञ का उद्देश्य पूरा न होगा। इसी-

लिए सम्पत्तिदान-यज्ञ का प्रवर्तन हुआ है। इससे उन धनवानो को, जिनके पास भूमि नही है, इस क्रान्तिकारी आन्दोलन में भाग लेने का सुअवसर मिला है।

विनोबाजी चाहते है कि भूमिहीन अपनी भूमि-क्षुधा की बात स्वयं ही कहे। अतः वे सोचते है कि अब भूमिहीनो को जगाने का समय आ गया है। वे कहते है : "मैने चौदह महीने तक बिहार में भ्रमण किया है। एक काम यहाँ हुआ है। अब समय आ गया है, जब भूमिहीनो को अपनी भूमि-क्षुधा की बात स्वय ही कहनी पडेगी। मैं तो उनकी क्षुधा की बात कह रहा हूँ, पर अब उन्हींके आगे आने की आवश्यकता आ पडी है। कोई-कोई मुझसे पूछते है 'आप गरीबो को जाग्रत करना चाहते हैं क्या ?' मैं कहता हूँ : 'इसीलिए तो मै पद-यात्रा कर रहा हूँ।' बिहार में तेरह लाख एकड भूमि प्राप्त हुई है। एक लाख एकड भूमि प्रतिमास मिली है। उसके मूल्य के बारे मे मैं कुछ नही सोचता। किन्तु, भूमिहीन गरीब जागे हैं और यह समझ पाये है कि जमीन पर उनका अधिकार है, केवल अधिकार ही नही है—जमीन को आबाद करना उनका कर्तव्य है। इसका मूल्य बहुत अधिक है, ऐसा मैं समझता हूँ।" विनोबाजी चाहते है कि भूमि पाने के लिए ग्राम-ग्राम में भूमिहीनो को अपनी माँग सामने रखनी पडेगी। इस सम्बन्ध में उन्होने कहा है "शिशु रोकर ही अपनी माँग सामने रखता है। माँ और शिशु के बीच कितना प्रेम का सम्बन्ध है। फिर भी शिशु के रोने पर ही माँ उस पर ध्यान देती है और उसे दूध पिलाती है। इसीलिए भूमिहीनों को भी अपनी माँग सामने रखनी चाहिए। मै तो उन्हीका होकर उन्हीकी ओर से माँग रहा हूँ। परन्तु, उन्हें भी गाँव-गाँव मे सभा करके भूमि की माँग रखनी चाहिए। तभी उनको जमीन मिलेगी। अधिकार समझकर यह माँग करनी होगी, प्रेम के साथ करनी होगी और भक्ति के साथ करनी होगी। गरीब को यह कहना पडेगा कि भविष्य मे युद्ध छिडने पर देश की रक्षा के लिए गरीब लोग अपने प्राणो की बाजी लगा देंगे, ऐसी आशा की जाती है। यदि ऐसा है, तो मातृभूमि की सेवा करने का अधिकार उसे न हो—यह कैसा न्याय है? इसीलिए गरीबों की माँग की पूर्ति होनी जरूरी है। इस माँग को गरीबो को स्वय ही ऊँचा उठाना होगा।"

गरीब भूमिहीन के और भी कई कर्तव्य हैं। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है "पहली बात यह है कि गरीबों को आत्मशुद्धि करनी होगी। उनमें जितने व्यसन हैं, उन्हें छोड़कर अपने को शुद्ध करना पड़ेगा। तभी उनकी शक्ति बढ़ेगी, अन्यथा नहीं। जरा सोचिये तो, कल गरीबों के बीच भूमि का वितरण होगा। जिन्हें भूमि दी जायगी, यदि वे शराबी होंगे, तो वे अपने हाथ में जमीन नहीं रख सकेंगे। इसलिए शहर से जो व्यसन गाँवों में आ गये हैं, उनसे उन्हें मुक्त होना होगा। यह आत्म-शुद्धि का काम गरीबों को ग्रहण करना होगा।

"दूसरी बात, आलस्य को छोड़ना पड़ेगा। मेरी यह बात सुनकर शायद आप आश्चर्यान्वित होंगे। आप कहेंगे, गरीब तो सदा परिश्रम करते रहते हैं। मैं कहूँगा, वे परिश्रम करते हैं यह सत्य है परन्तु बाध्य होकर। जितना काम वे करते हैं, उसमें भी उनका आलस्य रहता है। सुबह से शाम तक वे जो काम करते हैं, उस पर विचार करने से पता चलेगा कि सुबह खेत जाने और सन्ध्या समय लौट आने के बीच के आठ घंटों को छोड़कर बाकी पूरे समय वे आलस्य में बिता देते हैं। आलस्य एक महारोग है। धनी लोगों में तो यह है ही, गरीबों में भी घर कर गया है। इसलिए उन्हें आलस्य छोड़कर हमेशा काम में लगा रहना पड़ेगा। तीसरी बात, गाँव में न्याय-व्यवस्था की स्थापना करनी होगी। लड़ाई-झगड़े आपस में ही तय करने होंगे। विवाद में शक्ति नष्ट होती है, इसलिए इस बात की कोशिश करनी पड़ेगी कि हमारे बीच झगड़े-फसाद न हों। मतभेद होने पर नाना प्रकार की समस्याएँ पैदा हो सकती हैं, यह ठीक है; किन्तु उनका गाँव के भले आदमियों के द्वारा समाधान करा लेना होगा। आपस में जो झगड़े मिट सकते हैं, उन्हें बाहर क्यों ले जाया जाय? घर का झगड़ा बाहर ले जाना कितनी बुरी बात है। प्रत्येक ग्राम में कुछ-न-कुछ प्रभावशाली भले आदमी होते ही हैं। इसलिए उनके पास जाकर उनकी बात मान लेना ही उचित है।"

साम्यवाद और भूदान-यज्ञ

ऐसा कहा जाता है कि कम्युनिस्ट-दल के आन्दोलन को नष्ट करने के उद्देश्य से ही भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का श्रीगणेश किया गया है। यह सत्य

नहीं हैं। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सफल होने से हिंसात्मक क्रान्ति का निवारण हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, उसी उद्देश्य से भूदान-यज्ञ-आन्दोलन शुरू किया गया है, ऐसा नहीं है। यह एक स्वतन्त्र विचार है। यह विधायक (Positive) है, निषेधात्मक (Negative) नहीं। यदि ऐसा होता कि कम्युनिस्ट लोग जिस मार्ग का अनुसरण करते हैं, उसके अलावा भारत की भूमि-समस्या के समाधान का कोई अच्छा मार्ग नहीं है और होने पर भी भूदान-आन्दोलन के द्वारा उसी पथ से भूमि-समस्या के समाधान की चेष्टा न कर केवल हिंसात्मक क्रान्ति सफल करने की ही चेष्टा हो रही है, तो यह कायरता होती। किन्तु, कम्युनिस्ट लोग संघर्ष, अशान्ति और खून-खराबी के मार्ग से जो कुछ करना चाहते हैं, भूदान-यज्ञ शान्ति और प्रेम के मार्ग से वही करने के लिए अग्रसर हुआ है। हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा केवल बाहरी परिवर्तन सम्भव होता है। किन्तु, अहिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा भीतरी और बाहरी, दोनों ही विप्लव होते हैं। हिंसात्मक क्रान्ति के द्वारा भूमि का बँटवारा होने से लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है, किन्तु समाज के हृदय में विचार-क्रान्ति नहीं आयगी और न प्रेम की शक्ति ही पैदा होगी। अहिंसात्मक क्रान्ति से हृदय में चिन्तन-क्रान्ति और विचार-क्रान्ति आयगी। 'सबै भूमि गोपाल की', 'भूमि पर सबका समान अधिकार'—यह ज्ञान समाज के हृदय में प्रतिष्ठित होगा और इससे प्रेरित होकर भू-स्वामी अपने द्वारा किये गये अन्याय के प्रतिकार के लिए स्वेच्छा से स्वामित्व-विसर्जन कर देंगे और इससे समाज में क्रान्ति आयगी। डा० राधाकृष्णन् ने इसको Revolution by consent 'सहमति से क्रांति' नाम दिया है। बहुत बड़ी समस्या की तुलना में बहुत कम होने पर भी ४ वर्षों में ४० लाख एकड़ से अधिक भूमि का संग्रह हो चुका है। इस आन्दोलन के प्रति देश में प्रायः सर्वत्र सभी श्रेणियों के लोगों का अनुराग बढ़ता जा रहा है। देश का वातावरण परिवर्तित हो रहा है। परन्तु केवल भूमि-समस्या के समाधान में ही इस आन्दोलन की परिणति नहीं है। भूमि-समस्या का शान्तिपूर्ण समाधान अहिंसात्मक समाज-रचना का आधार बनेगा और वह अहिंसक समाज की रचना कर सकेगा। यदि इस पवित्र मार्ग से भारत की समस्या का समाधान सम्भव हो, तो यह कोई बुरा उपाय नहीं होगा। विनोबाजी कहते हैं: "किसीको प्यास लगी हो,

तो वह साफ जल मिलने पर गंदा जल नहीं पियेगा। किन्तु, साफ जल न मिलने पर वह गंदा जल पियेगा। भारत में, अच्छे मार्ग से गरीबों की समस्या का समाधान होने से, बुरा मार्ग नहीं आ सकता।" मोटी-सी बात यह है कि जहाँ दरिद्रता रहेगी, वहाँ साम्यवाद आयगा। भारत में भी आ सकता है—पृथ्वी में अन्यत्र भी आ सकता है; उसमें बाहरी आक्रमण की आवश्यकता नहीं है।

कम्युनिस्टों का कहना है कि भूदान-यज्ञ धीरे-धीरे चलने का मार्ग है। इस पर विनोबाजी कहते हैं "किन्तु जिस स्थान में अब तक 'लेने' का ही अभ्यास था, वहाँ मैं 'दान देने' का अभ्यास समाज को सिखा रहा हूँ। अभ्यास डालने का काम धीरे-धीरे ही होता है। मेरी इच्छा तो सारे संसार में भूमि के पुनर्वितरण की है। आज संसार के छोटे-बड़े, सभी राष्ट्र भय-ग्रस्त हैं। इस भय से मुक्ति पाने का उपाय किसीको भी मालूम नहीं है। मुक्त होने का उपाय बाहरी नहीं, अन्तर का होना चाहिए। यह पथ हमने खोज निकाला है। किन्तु, लोग कहते हैं कि मेरा अहिंसा का मार्ग बहुत लम्बा है। यदि वे जल्दी पहुँचने का मार्ग चाहते हैं, तो यह नहीं भूलना चाहिए कि वह मृत्यु की ओर ले जायगा।"

बिहार में कम्युनिस्टों और फारवर्ड ब्लाक के लोगों ने जनसाधारण को विनोबाजी के कार्यक्रम के सम्बन्ध में सतर्क होने की चेतावनी दी थी। उस सम्बन्ध में इशारा करते हुए विनोबाजी कहते हैं "ये लोग कहते हैं कि संघर्ष ही जीवन की बुनियाद है। उन लोगों की दृष्टि में सारा जीवन ही संघर्षमय है। माता बच्चे को दूध पिलाती है, तो क्या उसे माता के स्तन के साथ पुत्र का संघर्ष मानना पड़ेगा ? संसार संघर्ष से नहीं, प्रेम से चलता है। मृत्यु के समय अपने प्रियजन को सामने देखने पर शान्ति से मृत्यु होती है। तब क्या वह उसकी आँखों के साथ प्रियजन का संघर्ष होता है ? ये लोग ठीक से सोचते भी नहीं, इसीलिए इनके सब काम निष्फल हो जाते हैं।

"इन लोगों ने कहा है कि लोग मेरे मोहजाल में न पड़ जायँ। किन्तु, ये लोग जनता से कहना क्या चाहते हैं ? जिन लोगों को जमीन मिली है या जिन्हें मिलेगी, उन्हें क्या ये यही समझायेंगे कि जमीन वे ग्रहण न करें या फिर भूमि-दाताओं से कहेंगे कि वे भूमि-दान न करें ? इन लोगों ने अब तक बराबर

सुअवसरो को खो दिया है। स्वाधीनता-संग्राम में भी कम्युनिस्टो ने सहयोग नही किया और इस प्रकार एक बडा सुअवसर खो दिया। इसीलिए मैं इन्हें निमंत्रण देता हूँ कि ये इस बार फिर सुअवसर को नष्ट न करें और इस आन्दोलन में सहयोग करें। इन लोगो ने अपने हृदय और बुद्धि का दरवाजा बन्द कर रखा है। इस विज्ञान के युग में तो दरवाजा सदा खुला रखना चाहिए।"

कम्युनिस्टों के अभियोगों का खण्डन

३१ अक्तूबर, १९५३ को बिहार के मुंगेर जिले के बीहट ग्राम में कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओ ने विनोबाजी के पास एक प भेजा था, जिसमें भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के विरुद्ध कई प्रश्न उठाये गये थे। विनोबाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में उन प्रश्नो का उत्तर दिया। मार्क्सवादियो की ओर से भूदान-यज्ञ के विरुद्ध सामान्यत जो अभियोग लाये जाते है, उन सबका खडन विनोबाजी के उस जवाब से हो जाता है। उत्तर देते हुए विनोबाजी ने कहा है "पहले कम्युनिस्ट लोग भूदान-यज्ञ को केवल भूल ही नही मानते थे, बल्कि यह भी कहते थे कि यह आन्दोलन उनके विरुद्ध किया गया है। किन्तु, प्रसन्नता की बात है कि ज्यो-ज्यो भूदान-यज्ञ के विचार जन-साधारण में फैल रहे है, आन्दोलन की भावधारा का विकास हो रहा है, दानपत्र मिल रहे है, भारत में जाग्रति आ रही है और उसका प्रभाव सारे विश्व में फैल रहा है, त्यो-त्यो कम्युनिस्टो के बीच से भी कुछ लोग आगे आ रहे है और हम उनसे सहयोग पा रहे है। कई स्थानो में उन्होंने मुझे दानपत्र भी दिये है और मानपत्र भी। और अब तो एक बडे कम्युनिस्ट नेता श्री गोपालन् ने घोषणा की है कि "यद्यपि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन से विनोबाजी जितनी आशा करते है, उतनी हम नही करते और हमारे विचार में कानून, के अतिरिक्त और किसी माध्यम से इस समस्या का समाधान नही होगा, तथापि मैं इस आन्दोलन को एक अच्छा आन्दोलन मानता हूँ।" मैं समझता हूँ कि श्री गोपालन् की यह उक्ति उन लोगो के हृदय-परिवर्तन का परिचायक है। जो लोग ऐसा सोचते है कि किसीका भी हृदय-परिवर्तन नही हो सकता, उनका सोचना ठीक नही है। जो यह स्वीकार करते है कि हृदय-परिवर्तन होना सम्भव है, वे गौरव के पात्र हैं। जो अपने हृदय को अपरिवर्तनीय मानते

है, वे जड हैं, क्योंकि ऐसा चिन्तन जड का लक्षण है, चेतन का नही। मैं जानता हूँ कि कम्युनिस्ट चेतन हैं, जड नहीं। इसीलिए उनका कुछ हृदय परिवर्तन हुआ है। पहले वे इस आन्दोलन को केवल असफल ही नही मानते थे, बल्कि इसे भ्रान्त भी कहते थे। आज इसे वे असफल मानते हुए भी भ्रमात्मक नही मानते।"

कम्युनिस्टो की एक आपत्ति यह है कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सफल होने से भूमि छोटे-छोटे टुकडो में बँट जायगी और इससे भारत को क्षति पहुँचेगी। पूँजीपति भी ऐसा ही सोचते हैं और इस विषय में वे कम्युनिस्टो के साथ एकमत हैं। विनोबाजी कहते हैं : "कम्युनिस्ट और पूँजीपति, दोनो ही चाहते हैं कि उत्पादन-व्यवस्था केन्द्रीभूत रहे। किन्तु वितरण के विषय में दोनो में पार्थक्य है। पूँजीपति कहते हैं कि दक्षता के अनुसार वितरण हो और कम्युनिस्ट समान वितरण चाहते हैं। उनके बीच इतना ही भेद है। किन्तु हम चाहते हैं कि उत्पादन का भी विकेन्द्रीकरण हो। इस विषय में वे दोनो ही मिलकर हमारा विरोध करते हैं। इस प्रकार जो परस्पर-विरोधी हैं, वे भी किसी-किसी विषय में एकमत हो जा सकते हैं।" यहाँ कम्युनिस्ट और पूँजीपति, दोनो ही उत्पादन-व्यवस्था का केन्द्रीकरण चाहते हैं, इसलिए बडे-बडे भू-खण्ड उनके लिए सुविधाजनक हैं। किन्तु, भूमि की विकेन्द्रीकृत उत्पादन-व्यवस्था मे भूखड छोटे होने पर भी वैज्ञानिक पद्धति से खेती करने, उपयुक्त सिंचाई की व्यवस्था रहने तथा खाद देने से केन्द्रीकृत उत्पादन-व्यवस्था की अपेक्षा कम उत्पादन नही होगा, बल्कि कई स्थानो में अधिक ही होगा।

कम्युनिस्टो ने अपने पत्र में लिखा था "आपके आन्दोलन में कई त्रुटियाँ हैं। इसलिए हम उसमे विश्वास नही करते।" इसके उत्तर में विनोबाजी ने कहा "इसका अर्थ यही है कि यदि त्रुटि न रहे, तो वे इस आन्दोलन में विश्वास करेंगे।"

कम्युनिस्ट लोग यह अभियोग लगाते हैं कि विनोबाजी गरीबो के सगठन को क्षति पहुँचाते हैं। इसके उत्तर मे विनोबाजी ने कहा "मेरे सम्बन्ध में उनकी यह धारणा गलत है। उल्टे मैं यह दावा करता हूँ कि हमारे इस दो वर्ष के आन्दोलन-काल मे भूमिहीनो के बीच जो जागरण आया है,

वह अन्य किसी आन्दोलन से नही आ सका है। मेरे पास हजा ो की सख्या में भूमिहीन आते है। वे स्वीकार करते है कि उन्हीकी ओर से मैं काम कर रहा हूँ।"

कम्युनिस्टो की इस आपत्ति का कि विनोवाजी भूमि की भिक्षा माँगकर भूमिहीनो के अधिकारो का हनन कर रहे हैं, उत्तर देते हुए विनोवाजी कहते है "मैं अधिकार ही माँग रहा हूँ, भिक्षा नही। मैं पष्ठाश की माँग करता हूँ। यदि इससे काम नही होगा, तो अधिक माँगूँगा। भिक्षुक कभी यह नहीं कह सकता कि मुझे इतना दो। भिक्षुक जो पाता है, उसीसे सन्तुष्ट हो जाता है। यदि हम आश्रम के लिए भूमि माँगते और कोई थोडी-सी भूमि दे देता, तो हम उसका उपकार मानते और आश्रम के कार्य विवरण में उसके दान की बात का उल्लेख करते कि हम उनके आभारी है। किन्तु, यह दूसरे ढग की बात है। यदि कोई एक हजार एकड भूमि का दान करता है और उसके पास उससे कई ुनी अधिक भूमि बच जाती है, तो वह एक हजार एकड भूमि लेने से भी मैं इनकार कर देता हूँ। मैं कहता हूँ कि यह तो भिक्षा देना हुआ। मैं भिक्षा लेने नही आया हूँ, दीक्षा देने आया हूँ।"

कम्युनिस्ट लोग यह भी कहते है कि धनवानो ने विनोवाजी को केवल आबादी के अयोग्य खराव भूमि दान में दी है। इसके उत्तर में विनोवाजी कहते हैं "मैं हनुमान् का काम कर रहा हूँ। पूरा पहाड ही मैं राम के पास ला उपस्थित करूँगा। उसमें से आवश्यकतानुसार काम की वनस्पति छाँट ली जायगी। मैने धनवानो से कहा है कि उनसे ३२ लाख एकड अच्छी जमीन पाना चाहता हूँ। इसके अलावा वे पहाड भी देंगे, तो ले लूँगा, क्योकि वह भी हमारी मातृभूमि का अश है। हम उसे प्यार करते है। और फिर खराव जमीन देने पर भी तो वे कुछ दे रहे हैं। जिस किसी भी दिन हो, जब कोई कुछ देता है तब उनके आँगन में हम लोग प्रवेश करते हैं। इसके बाद धीरे-धीरे पैर उठाकर हम उनके रसोईघर में पहुँच जायें और कहेंगे कि 'आपका पुत्र आया है—उसे भोजन दें।' तब उन्हें खिलाना ही पडेगा।"

भूदान-यज्ञ की कार्यप्रणाली के विषय में कम्युनिस्टो की जो आपत्तियाँ थी, उनका उत्तर देने के प्रसग मे विनोवाजी ने कहा कि धनवानो में जो सज्जन और उदार-चित्त है, उन्हे दान देने और स्वामित्व त्याग करने की प्रेरणा देकर

और उनके पास से दान लेकर वे उन्हें अपनी विचारधारा में दीक्षित कर रहे हैं और धनवानों में जो कजूस और सकीर्ण-हृदय हैं, उनसे उन्हें अलग कर दे रहे है। कम्युनिस्ट लोग धनवानो को गरीबो का शत्रु मानते है और उनके साथ गरीबो की लडाई कराना चाहते हैं। इसीलिए कम्युनिस्ट लोग भेद, विरोध और लडाई की भाषा का व्यवहार करते हैं। इसलिए ऐसी भाषा में उन्हें समझाना अधिक सहज होता है। वे भेद की भाषा सहज ही समझते हैं। इसीलिए विनोबाजी अभेदवादी होते हुए भी भेद की भाषा और लडाई की भाषा का व्यवहार करते हुए कहते हैं "मैं गरीबो के शत्रुओ के बीच फट डाल रहा हूँ। कम्युनिस्ट लोग गरीबो के सभी शत्रुओ को एक करते हैं। इससे सज्जन और दुर्जन एक हो जाते हैं और इससे दुर्जनो की ही शक्ति बढती है। धनवानो में अन्तत दस प्रतिशत लोग तो अच्छे हैं। यदि वे ही १० व्यक्ति मिल सकें, तो उनके पुण्य का फल बाकी ९० व्यक्तियो को मिलेगा। इसलिए उन लोगो के बीच जो सज्जन है, उन्हें मैं अहिंसात्मक रग से फोड लेने की चेष्टा कर रहा हूँ। भेद-नीति की इस प्रयोग-कुशलता को जो लोग नही समझते, वे राजनीति नही समझते, नीति-शास्त्र भी नही जानते।" वे और भी कहते है कि कुश्ती लडते समय सामने के आदमी से हाथ मिलाना पडता है—चाहे जीत किसीकी भी हो। इसीलिए उन्होने बडे-बडे जमीदारो और राजाओ के साथ कुश्ती लडने के लिए हाथ मिलाया है। यदि उनकी पराजय हुई, तो कम्युनिस्ट लोगो का यह कथन सही साबित होगा कि शत प्रतिशत धनवान् दुर्जन है और विजय होने पर गरीबो का कल्याण होगा। अतएव उन्होने जो हाथ पसारा है, उससे कम्युनिस्टों को कोई क्षति नही है।

वर्तमान स्थिति में कानून के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान होना सम्भव है या नही, इस बारे में वे कहते हैं "प्रभाव तीन प्रकार के होते हैं। (१) हत्या करके, 'भूमि दो, नही तो गोली चलेगी', (२) कानून का प्रभाव और (३) नीति के द्वारा जनमत का प्रभाव। हम नैतिक प्रभाव चाहते हैं। नैतिक दबाव के बिना हृदय-परिवर्तन कर सकूँगा—ऐसा दावा मैने नही किया है। इसके बाद ही कानून बनाया जा सकता है। आप लोग कानून में विश्वास करते है, परन्तु कानून में शक्ति आती कहाँ से है ? कानून में या तो जनता से या फिर सेना से शक्ति आती है। यदि २५ एकड की

'सीलिंग' (व्यक्तिगत स्वामित्व में भूमि रखने का अधिकतम परिमाण) निर्धारित हो, तो हजारों मध्यवित्त लोगों के हाथ से भूमि लेनी होगी। दुनिया में मध्यश्रेणी के लोग ही राज्य करते हैं। वे शिक्षित हैं। समाचारपत्रों का स्वामित्व उन्हींके हाथ में है। इसलिए मध्यवित्त लोगों के हाथ से बिना क्षति-पूर्ति दिये जमीन नहीं ली जा सकती। उनके पास से यदि जमीन लेनी होगी, तो रक्त-क्रांति के द्वारा ही। रक्त-क्रान्ति यहाँ असम्भव है। हमने यह भी देखा है कि जब 'सीलिंग' की बात उठती है, तब लोग अपने बीच भूमि का बँटवारा कर लेते हैं। अतएव कानून के द्वारा समस्या का समाधान तभी सम्भव होगा, जब बिना क्षति-पूर्ति दिये जमीन लेने का कोई उपाय निकलेगा। वह भी मध्यवित्त लोगों की सम्मति के अनुसार करना होगा। भारत के संविधान में क्षति-पूर्ति की बात है। वह भी कोई अनुचित बात नहीं है, क्योंकि कानून जनमत के आधार पर तैयार किया गया है। कम्युनिस्ट कहते हैं कि वह *गलत तैयार हुआ है। किन्तु जो भूल जनमत ने की हो,* उसे भूल नहीं कहा जाना चाहिए। इसलिए वर्तमान स्थिति में कानून बनाकर भी भूमि प्राप्त नहीं की जा सकेगी। लोग अपने बीच भूमि बाँट लेंगे और जो थोड़ी-बहुत जमीन प्राप्त भी होगी, वह खराब होगी। मैं खराब भूमि लेने के साथ-साथ अच्छी भूमि भी लोगों से माँगता हूँ।"

मानव-हृदय की मौलिक सत्यता और अन्त में राष्ट्र के विलुप्ति-संघटन के बारे में विनोबाजी कहते हैं "कम्युनिस्ट भाई यदि सज्जनता पर विश्वास नहीं रखेंगे, तो उनके गुरु ने उन्हें जो शिक्षा दी है, उसे सफल नहीं कर सकेंगे। उनके गुरु कार्ल मार्क्स ने कहा है कि आरम्भ में गरीबों का राष्ट्र होगा और उसके बाद राष्ट्र समाप्त हो जायगा। इसका अर्थ यही होता है कि किसीके हाथ में किसी प्रकार की क्षमता नहीं रहने पर भी राष्ट्र चल सकता है। यदि इसमें विश्वास किया जाय, तो भी जनसाधारण में विश्वास रखना ही पड़ेगा। वे कहते हैं कि अन्त में राष्ट्र विलुप्त हो जायगा, किसी प्रकार के अधिकार की आवश्यकता नहीं रहेगी और सब लोग समान भाव से जीवन-यापन कर सकेंगे। वैसी स्थिति में सज्जनता पर विश्वास रखना पड़ेगा। मार्क्स ने जो बात कही है, वह दस लाख वर्षों के बाद सत्य होगी, ऐसा नहीं है। वह अभी ही सत्य होने की बात है। यदि सज्जनता पर विश्वास नहीं

रहेगा, तो राष्ट्र को कायम रखना ही पड़ेगा और स्वीकार करना होगा कि State will wither away, अर्थात् 'राष्ट्र विलुप्त हो जायगा', यह कहना गलत है। राष्ट्र का प्रयोजन है, ऐसा सोचनेवाले केवल कम्युनिस्टों के बीच ही नहीं है, बल्कि कांग्रेस और सर्वोदय में विश्वास करनेवाले लोगों में भी है। इस विचारधारा के बारे में तीन विभिन्न मत हैं (१) कम्युनिस्ट लोगों का विश्वास है कि अन्त में राष्ट्र का अस्तित्व नहीं रहेगा, किन्तु अभी यह आवश्यक है कि राष्ट्र बहुत पक्का और मजबूत रहे। इसलिए अभी समस्त अधिकारों को केन्द्रीभूत होना चाहिए। उसे वे लोग Dictatorship of Proletariate (सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व) कहते हैं। वे सोचते हैं कि अभी अधिनायकत्व होने पर भी अन्त में वह क्षमता क्षीण हो जायगी। (२) दूसरा मत हम लोगों का है। हम सोचते हैं कि राष्ट्र नहीं रहेगा और अभी से ही उसे क्षीण करने की दिशा में काम शुरू होना चाहिए। धीरे-धीरे अधिकारों के विकेन्द्रीकरण का प्रयोजन है। विकेन्द्रीकरण के बिना अधिकार-लोप होना असम्भव है। (३) ऐसे लोगों की संख्या संसार में काफी है, जो यह स्वीकार करते हैं। कांग्रेसियों और प्रजा-समाजवादियों में से भी अनेक लोग यह बात स्वीकार करते हैं, किन्तु उनका कहना है कि किसी-न किसी रूप में राष्ट्र हमेशा बना रहेगा। इसीलिए मैं कम्युनिस्टों से कहता हूँ कि उनकी और हमारी विचार-धारा में एक जगह जो एकता है, वह यही कि अन्त में राष्ट्र नहीं रहेगा। यदि वे यह जानते हैं और इसे स्वीकार कर लिया जाय, तो यह किस सिद्धान्त पर आधृत है? क्या इस सिद्धान्त पर नहीं कि मनुष्य के हृदय में सज्जनता है और इसलिए अन्त में राष्ट्र का प्रयोजन ही नहीं रहेगा? ऐसी अवस्था में मनुष्य की सज्जनता पर विश्वास रखना ही उचित है।"

साम्ययोग

सभी मनुष्यों का सम्यक् और समान विकास सर्वोदय का लक्ष्य है। केवल सबसे अधिक लोगों का सबसे अधिक हित-साधन होने से ही काम नहीं चलेगा, क्योंकि इसका अर्थ यह होता है कि बाकी जो लोग बच जाते हैं, उनका लोप हो तो हो, उनका नाश हो तो हो—उस बारे में चिन्ता करने की कोई

आवश्यकता नहीं। बल्कि, बहुसंख्यकों के सम्यक् विकास के मार्ग को सरल करने के लिए उनका नाश भी आवश्यक हो जा सकता है। किन्तु, ऐसा तो नहीं माना जा सकता, क्योंकि 'मैं क्या हूँ'—इस बारे में यदि हम गम्भीरतापूर्वक विचार करें, तो यह प्रकट होगा कि जो मैं हूँ, वही दूसरे भी हैं। मैं दूसरों में और दूसरे मुझमें समान भाव से विद्यमान हैं। मेरा विकास या अभ्युदय तब तक पूर्ण नहीं होगा, जब तक दूसरे लोगों का विकास या अभ्युदय न हो। इसका कारण यह है कि सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा विराजमान है। यह आत्मा अनन्तगुण-सम्पन्न और अनन्त प्रकार से विकासशील है। सबमें एक ही आत्मा है। अतएव सबका समान विकास हो सकता है, भले ही एक जीवन में वह सम्भव न हो। जीवन के सभी क्षेत्रों में यह प्रयोज्य है। जीवन को विभक्त करके नहीं देखा जाता। इसलिए आध्यात्मिक, नैतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि सभी क्षेत्रों में यही समदर्शन होना चाहिए और समता-स्थापना की जानी चाहिए। आज यदि हम व्यक्तिगत जीवन तथा सामाजिक एवं सांसारिक जीवन-प्रवाह की ओर दृष्टिपात करें, तो व्यावहारिक क्षेत्र में इसकी आवश्यकता अनुभव करेंगे। आज संसार के विभिन्न देशों के बीच इतना द्वेष, हिंसा और द्वन्द्व क्यों है? एक देश दूसरे देश से भय क्यों खाता है? इसके मूल में यही है कि एक देश अपने को दूसरे देश से बड़ा मानता है और चाहता है कि वही उन्नति करे—वही सुख-भोग करे, दूसरा नहीं। वह यह समझता है कि दूसरे देश की उन्नति उसकी अपनी उन्नति के मार्ग में बाधा बनेगी। इस भ्रमात्मक मनोवृत्ति से हिंसा और द्वेष की उत्पत्ति होती है और आदमी अपना सर्वनाश बुला लेता है। समाज की ओर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि जो मनुष्य जन्म के आधार पर अपने को ऊँचा मानता है और दूसरों के स्पर्श से भी दूर रहता है, वह स्वयं संकीर्ण हो जाता है और यह मनोवृत्ति उसे जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी संकीर्ण बना देती है। मैं जिसे नीचे रखने या दबा रखने की चेष्टा करूँगा, वह भी मुझे नीच कहकर पुकारेगा। यदि हमारे आसपास के सभी लोग नैतिक दृष्टि से पतित हो चुके हैं, तो उसकी प्रतिक्रिया हमारे नैतिक जीवन पर भी होगी ही। आर्थिक क्षेत्र में भी व्यक्तिगत जीवन की उन्नति समाज की आर्थिक उन्नति के आधार पर बहुत-कुछ निर्भर करती है। सबमें एक ही आत्मा विराजमान है, इस मूल बात पर विश्वास

है। पूंजीवाद के प्रचलन के कारण कुछ लोगों का जीवन-मान उच्चतम स्तर पर पहुँच गया है, यह सत्य है, किन्तु बहुत-से लोगों का जीवन अवनति की चरम सीमा पर भी पहुँच गया है। पूंजीवाद के पास इसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं है। पूंजीवाद ने स्पष्ट रूप से कह दिया है कि जो कार्यदक्ष नहीं हैं, वे अवनत ही रहेंगे। इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है। और, जो लोग योग्य हैं, उन्हें सुख-स्वच्छन्दतापूर्वक जीवन बिताने का अधिकार है—यह अनिवार्य है। इसीलिए सारा संसार आज दुःखार्त है और इसीलिए पूंजीवाद के समर्थक भी कम हैं। आज हो या कल, इसका नाश अवश्यम्भावी है।"

गणतान्त्रिक समाजवाद में समाज-कल्याण का एकमात्र साधन मताधिकार है। किन्तु मत के आधार पर काम चलने से अनेक क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों के स्वार्थ सिद्ध नहीं होते। इसका प्रतिकार गणतान्त्रिक समाजवाद के पास नहीं है। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं : "गणतन्त्र में प्रत्येक व्यक्ति को एक मत का अधिकार प्राप्त है। यहाँ मत के आधार पर काम होता है। इससे अल्पसंख्यकों की स्वार्थ-रक्षा नहीं होती। बहुसंख्यकों का ही हित-साधन होता है। गणतान्त्रिक समाजवाद इस बात का दावा करता है कि उसमें सबकी स्वार्थ-रक्षा की व्यवस्था हो सकती है। किन्तु, गणतान्त्रिकता के क्रम में जो बुराइयाँ सामने आती हैं, उन्हें दूर करने के उपाय समाजवाद के हाथ में नहीं हैं। जब तक बहुसंख्यकों की राय के द्वारा अल्पसंख्यकों की स्वार्थ-रक्षा की चेष्टा होगी, तब तक पूर्ण समाजवाद प्रतिष्ठित नहीं होगा।"

अब साम्यवाद के बारे में विचार किया जाय। विनोबाजी कहते हैं : "साम्यवाद कहता है कि उच्च श्रेणी का लोप नहीं होने तक साम्य-प्रतिष्ठा कर सकना सम्भव नहीं होगा। वर्ग-संघर्ष और सम्पन्न लोगों के लोप के अलावा और कोई उपाय नहीं है। इतनी दूर तक हिंसा का आश्रय ग्रहण करना आवश्यक है और यही धर्म है। यह सर्वथा स्पष्ट है कि इसके द्वारा संसार में शान्ति-स्थापना नहीं हो सकती, क्योंकि हिंसा से प्रतिहिंसा का ही जन्म होता है, भले ही हिंसा के द्वारा उसे कुछ दिनों तक दबाकर रखा जाय। केवल यही नहीं, इसके कारण मनुष्यत्व का मूल्य भी घटता है और मनुष्यत्व की प्रतिष्ठा नष्ट होती है।"

अतएव साम्ययोग की विचारधारा गम्भीर रूप से समझना सबके लिए आवश्यक है। साम्ययोग क्या है, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं : "साम्ययोग कहता है कि सभी मनुष्यों में एक ही आत्मा समान रूप से विद्यमान है। मनुष्य-मनुष्य के बीच कोई भेद है, यह साम्ययोग स्वीकार नहीं करता। इसके अतिरिक्त मनुष्य की आत्मा और अन्य प्राणियों की आत्मा में कोई मौलिक भेद नहीं है। तब, वह इतनी दूर तक स्वीकार करता है कि मनुष्य की आत्मा का जो विकास हो सकना सम्भव है, वह अन्य प्राणियों के मामले में सम्भव नहीं है। यद्यपि अनुशीलन के द्वारा मनुष्य की आत्मा का विकास किया जाता है, तथापि सभी मनुष्यों का विकास समान भाव से नहीं होता। प्राणिमात्र में एक ही आत्मा विद्यमान है, इसलिए जितनी दूर तक सम्भव हो, प्राणियों की रक्षा के लिए प्रयत्न करना कर्तव्य है।

"साम्यवाद और साम्ययोग का अन्तर यही है कि साम्यवाद आत्मा की अभिन्नता में विश्वास नहीं करता, किन्तु साम्ययोग करता है। साम्ययोग केवल आत्मा की अभिन्नता में विश्वास करके ही शान्त नहीं हो जाता। वह इसी विश्वास के आधार पर और भी गम्भीर क्षेत्र में प्रवेश करता है। इसके फलस्वरूप नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में क्रान्ति का संघटन होता है।

"जब हम कोई मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त स्वीकार करते हैं, तब वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करके कार्यशील होता है। हम अपनी बुद्धि-शक्ति के मालिक नहीं हैं—उसके मालिक एकमात्र भगवान् हैं। हम जिन गुणों के अधिकारी होते हैं, वह समाज के ही कारण। अतएव हम सबने जो शक्ति प्राप्त की है, उसका समाज की सेवा में ही उपयोग करना होगा। हम अपने शरीर के मालिक नहीं हैं। हम तो केवल उसके संरक्षक हैं। हमारे पास जो कुछ सम्पत्ति है, उसके मालिक हम नहीं, भगवान् हैं। ट्रस्टीशिप या संरक्षण की विचारधारा ग्रहण करने से पूर्ण विचार-क्रान्ति आ जाती है। हमारे पास जो कुछ है, वह समाज की सेवा करने के लिए है। व्यक्तिगत स्वार्थ को समाज के चरणों में अर्पित कर देना ही व्यक्तिगत स्वार्थसिद्धि है। साम्ययोग और साम्यवाद के बीच यही बड़ा अन्तर है।"

साम्ययोग का सिद्धान्त ग्रहण करने से आर्थिक क्षेत्र में वह कैसा क्रान्ति-

रखकर ही अपने को दूसरों में और दूसरों को अपने में देखने की दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। उससे सुख-दुख में सबको समान रूप से देखने की शिक्षा मिलती है। विनोबाजी ने उसे 'साम्ययोग' नाम दिया है। साम्ययोग ही भूदान-यज्ञ की मूल विचारधारा है। श्रीमद्भगवद्गीता के छठे अध्याय के चार श्लोकों में 'साम्ययोग' की व्याख्या की गयी है। वे श्लोक निम्नलिखित हैं :

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

'योग में समाहित चित्तवाला और सर्वत्र समदृष्टि रखनेवाला योगी ही अपने को सभी भूतों में और सभी भूतों को अपने में देख सकता है।'—२९

'जो मुझे (आत्मा को) सभी भूतों में देखता है और सब भूतों को मुझमें देख पाता है, वह मेरी दृष्टि से बाहर नहीं होता और मैं भी उसकी दृष्टि से बाहर नहीं होता।'—३०

'जो सब भूतों में अवस्थित मुझे (आत्मा को) अपने से अभिन्न मानकर साधना करता है, वह चाहे कहीं भी निवास करे, मुझमें ही निवास करता है।'—३१

'हे अर्जुन, जो सुख और दुःख में सभी जीवों को अपने बराबर ही देखता है, वही योगी सबसे श्रेष्ठ होता है—यह मेरा मत है।'—३२

यही साम्य की समग्र दृष्टि है। विनोबाजी युवावस्था के आरम्भ से ही निष्ठावान् सन्यासी हैं। इसीलिए उनकी प्राथमिक दृष्टि आध्यात्मिक रही। आध्यात्मिकता पर आवृत उनकी साम्य की पहली दृष्टि थी—साम्ययोग या समग्र दृष्टि। इस मौलिक आध्यात्मिक सिद्धान्त ने उनके जीवन के विशेष-विशेष क्षेत्रों में प्रवेश पा लिया है। उनकी साम्यदृष्टि सामान्य

से विशेष की ओर, समष्टि से व्यष्टि की ओर संक्रमित हुई है। उनका एकत्व-बोध आध्यात्मिकता की समग्रता अर्थात् आत्मा के एकत्वबोध से जीवन के विशेष विशेष व्यावहारिक क्षेत्रों में पहुँचा है। दूसरी ओर, महात्मा गाधी ने रस्किन के 'अन टु दिस् लास्ट' ग्रन्थ से आर्थिक क्षेत्र मे अर्थात् जीवन के एक विशेष क्षेत्र में समदृष्टि की प्रेरणा प्राप्त की। क्रमश यह समदृष्टि जीवन के अन्यान्य विशेष-विशेष क्षेत्रों में प्रवाहित होती है और अन्त में साम्ययोग या साम्य की समग्र दृष्टि में परिणत हो जाती है। इसीलिए महात्मा गाधी के जीवन-दर्शन की प्रगति प्रणाली inductive (आरोही) है और विनोबाजी की जीवन-दृष्टि की प्रगति प्रणाली deductive (अवरोही) है। उनके अपने-अपने जीवनारम्भ की विशिष्टता के कारण प्रगति-प्रणाली-सम्बन्धी उनके दृष्टिकोण में अन्तर है।

साम्यवाद और साम्ययोग

विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ की मूल विचार-धारा को नाम दिया है—"साम्ययोग।" साम्ययोग के आधार पर सर्वोदय-समाज का सघटन करना होगा। आज ससार में जो विचारधाराएँ प्रचलित है, उनके साथ साम्ययोग के तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। इससे साम्ययोग की विशिष्टता और उत्कर्ष का अनुमान लगा सकना आसान हो जायगा। इसके अतिरिक्त जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में साम्ययोग कैसा विप्लवी परिवर्तन लाता है, इस पर भी विशेष रूप से विचार कर लेने की आवश्यकता है। इससे सर्वोदय का स्वरूप सहज ही समझ सकने में हम समर्थ होंगे।

आज ससार में मुख्यत तीन विचारधाराएँ प्रचलित है (१) पूँजीवाद, (२) गणतान्त्रिक समाजवाद और (३) साम्यवाद। इन सबमे पूँजीवाद सबसे पुराना है। योग्यता और कार्यदक्षता की वृद्धि करना ही पूँजीवाद का उद्देश्य है। विनोबाजी कहते है "पूँजीवाद केवल कार्यदक्षता को ही स्वीकार करता है। पूँजीवाद कहता है कि कुछ लोगो की कार्यदक्षता कम है, इसलिए उन्हें कम पारिश्रमिक मिलना चाहिए। कुछ लोगो की कार्यदक्षता अधिक है, इसलिए उन्हें अधिक पारिश्रमिक देना आवश्यक है। कार्यदक्षता के अनुसार पारिश्रमिक देकर पूँजीवाद समाज में योग्यता बढाने का प्रयास करता

कारी परिवर्तन लायेगा, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं: "जो व्यक्ति अपने साधनों के अनुसार समाज का पूरा-पूरा काम करेगा, वह अपने जीवन-यापन की आवश्यक चीजें समाज से पाने का अधिकारी होगा। जिस व्यक्ति की आँखें नहीं हैं, वह यदि अंधा रहने पर भी यथासम्भव काम करता है, तो अपना पूर्ण भरण-पोषण पाने का अधिकार उसे भी प्राप्त होगा। जो व्यक्ति दृष्टि-शक्ति से हीन है, वह पूरी शक्ति लगाकर काम करने पर भी आँखवालों की तुलना में कम काम कर सकता है, किन्तु इसी कारण से काम करने की शक्ति और तारतम्य के अनुसार पालन-पोषण की व्यवस्था और तारतम्य की व्यवस्था करना अन्याय है। पोषण भौतिक वस्तु है और सेवा नैतिक वस्तु। नैतिक वस्तु का मूल्य भौतिक वस्तु के मूल्य के द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। डूबते हुए व्यक्ति का उद्धार करनेवाले व्यक्ति की दस मिनट की सेवा का ही मूल्य क्या मजदूरी के हिसाब से आंका जा सकता है ? माँ सन्तान की, पुत्र पिता की, शिष्य गुरु की, मंत्री समाज की सेवा करते हैं, किन्तु इन सब सेवा-कार्यों का मूल्य पैसे के रूप में नहीं आंका जा सकता। जिस सेवा में हृदय उँडेल दिया गया है, उसका मूल्य किस प्रकार पैसे के द्वारा निश्चित किया जा सकता है ? पुत्र ने माता को जो कुछ दिया है, विद्यार्थी ने गुरु को जो कुछ दिया है, किसान ने समाज को जो कुछ दिया है, वह अमूल्य है। नैतिक मूल्य की तरह ही आर्थिक क्षेत्र में भी श्रम का मूल्य समान होना चाहिए। किन्तु, आज इसके सर्वथा विपरीत स्थिति है। शारीरिक कार्य की अपेक्षा बुद्धि के कार्य को अधिक मूल्य दिया जा रहा है—प्रतिष्ठा भी अधिक दी जा रही है। किन्तु, इस प्रकार का वैषम्य सर्वथा आधारहीन है। साम्ययोग की विचारधारा आत्मा के समत्व पर आधृत है। इसीलिए उसमें आर्थिक क्षेत्र में किसी प्रकार की विषमता स्वीकार नहीं की जाती। तब सेवक की भूमिका के अनुसार सेवा का प्रकार-भेद हो सकता है। जो सेवा माँ कर सकती है, वह पुत्र नहीं कर सकता और जो सेवा पुत्र कर सकता है, वह माँ नहीं कर सकती। जो सेवा स्वामी कर सकता है, वह सेवक नहीं कर सकता और जो सेवा सेवक कर सकता है, वह स्वामी नहीं कर सकता। भाई जो सेवा कर सकता है, वह बहन नहीं कर सकती और बहन जो सेवा कर सकती है, भाई नहीं कर सकता। इसी तरह व्यक्ति के पार्थक्य और

शक्ति के पार्थक्य के अनुसार सेवा का पार्थक्य हो सकता है। किन्तु, सबके लिए समान रूप से चिन्ता करनी होगी।

"अँगुलियाँ कम-बेशी काम देती हैं, किन्तु वे सब समान हैं। एक अँगुली से जो काम होता है, वह दूसरी से नहीं होता। इसी प्रकार यह समझना आवश्यक है कि समाज में एक की सेवा दूसरे की सेवा से भिन्न हो सकती है, परन्तु उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए।

"हमने यह समझ लिया है कि साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार जब नैतिक मूल्य में कोई अन्तर नहीं होता, तब आर्थिक क्षेत्र में भी अन्तर होना उचित नहीं है। विकास के लिए सबको समान सुयोग प्राप्त होना चाहिए। विद्यार्थी अपनी ग्रहण-शक्ति के अनुसार शिक्षा ग्रहण करेगा, यह सही है, किन्तु पारिश्रमिक का परिमाण कम-बेशी करने से सबका ठीक तरह से विकास नहीं होगा। इससे क्षेत्र-परिवर्तन करके अन्य क्षेत्र में जाने का आकर्षण आ जाता है—जैसा कि आजकल होता है। समान वेतन की व्यवस्था होने से इस मनोवृत्ति का दमन होगा।

"आर्थिक क्षेत्र में साम्ययोग का परिणाम यह होगा कि प्रत्येक ग्राम पूर्णरूप से स्वावलम्बी हो जायगा। अन्न, वस्त्र, दूध, घी आदि जिन सब वस्तुओं की मूलतः आवश्यकता होती है, वे प्रत्येक ग्राम में पर्याप्त परिमाण में उत्पन्न होंगी और इससे ग्राम स्वावलम्बी बन जायेंगे। इस प्रकार सबके स्वावलम्बी होने से समता का उद्भव होगा। यदि यह ग्राम अपूर्ण रहे और वह ग्राम भी अपूर्ण रहे, तो दोनों की अपूर्णता के कारण साम्य की स्थापना नहीं हो सकेगी। जिन सब वस्तुओं की मूलतः आवश्यकता होती है, उनका गाँव में उत्पादन होना आवश्यक है। भगवान् ने सबको परिपूर्ण करके पैदा किया है। बुद्धि और शक्ति कम-बेशी है। किन्तु, भगवान् की व्यवस्था इस प्रकार विकेन्द्रित है कि सबका विकास हो सकता है। इस प्रकार की विकेन्द्रित व्यवस्था आर्थिक क्षेत्र में भी होने की आवश्यकता है।"

राजनीतिक क्षेत्र में साम्ययोग के फल की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं, "साम्ययोग के फलस्वरूप राजनीतिक क्षेत्र में भी वर्तमान मूल्य का परिवर्तन होगा। हम केवल शोषणहीन समाज नहीं चाहते—हम शासन-हीन समाज भी चाहते हैं। साम्ययोग के सिद्धान्त के अनुसार शासन-सत्ता

का ग्राम-ग्राम में वितरण होगा। अर्थात् ग्राम-ग्राम में अपने राज की प्रतिष्ठा होगी। मुख्य केन्द्र में नाममात्र की सत्ता रहेगी और इस प्रकार होते-होते अन्त में शासनहीन समाज स्थापित हो जायगा।"

साम्ययोग सामाजिक क्षेत्र में जिस क्रांतिकारी परिणाम की सृष्टि करेगा, उसका वर्णन करते हुए विनोबाजी कहते हैं : "सामाजिक क्षेत्र में भी जातिभेद या ऊँच-नीच का भेद नहीं रहेगा। यदि किसीमें ब्राह्मण के गुण रहेंगे, तो उसे तदनुरूप काम दिया जायगा। किन्तु, इसी कारण उसे अन्य लोगों से ऊँचा नहीं माना जायगा। इसी प्रकार मेहतर, मोची आदि को भी नीच नहीं माना जा सकेगा, क्योंकि उनके न रहने से समाज नहीं चल सकेगा।"

असली क्रांति या विप्लव एकमात्र साम्ययोग के द्वारा ही आ सकता है। यह दावा करते हुए विनोबाजी कहते हैं : "इसी प्रकार नैतिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था में भी परिवर्तन लाना साम्ययोग का उद्देश्य है। इसे क्रांति कहा जाता है। आजकल हिंसा को ही विप्लव या क्रांति समझा जाता है, किन्तु जहाँ मौलिक विषय में क्रांति नहीं होती, वहाँ केवल ऊपर-ऊपर परिवर्तन आने को विप्लव कहना गलत है। विप्लव तभी होगा, जब हम नैतिक जीवन में विप्लवी परिवर्तन ला सकने में सक्षम हों। हम यह दावा करते हैं कि साम्ययोग नैतिक मूल्य में परिवर्तन लाता है, क्योंकि साम्ययोग का आधार आध्यात्मिक है और वह जीवन के हर क्षेत्र में क्रांति की सृष्टि करता है।" अर्थात् आत्मा की एकता स्वीकार करने से ही नैतिक क्षेत्र में समता की मनोवृत्ति आ सकती है, अन्यथा नहीं। जहाँ नैतिक क्षेत्र में समता-वृत्ति का अभाव है, वहाँ जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में मौलिक समता की सृष्टि कर सकना सम्भव नहीं है।

साम्ययोग के व्यापक दृष्टिकोण की व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं : "साम्ययोग का विचार हृदयंगम करने के लिए पहले मोह-ममता से मुक्त होने की आवश्यकता है। भूदान-यज्ञ मोह-ममता से मुक्त होने का उपाय है। किस प्रकार मुक्त हुआ जा सकेगा ? जमीन का स्वामित्व-भाव त्याग करके यह मुक्ति-साधना आरम्भ करनी होगी। भूदान करना किसी पर कृपा करना नहीं है। और भी आगे बढ़कर मैं कहूँगा कि किसी प्रदेश में

यदि जमीन कम और आबादी अधिक हो, तो एक प्रदेश के लोग दूसरे प्रदेश में जाकर निवास कर सकेंगे। इसी प्रकार एक देश के लोग दूसरे देशों में भी जाकर बस सकें। पृथ्वीमाता का द्वार सबके लिए खुला है। जो जहाँ रहना चाहेंगे, वहाँ रहेंगे। इस प्रकार हम विश्व के नागरिक बनना चाहते हैं और सभी प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक भेद दूर करना चाहते हैं। जमीन थोड़ी हो, छोटा टुकड़ा हो या बड़ा हो, वह सब परमेश्वर का ही दान है। हम उसके मालिक नहीं हो सकते। भारत के निवासी भारत के मालिक हैं और जर्मनी के निवासी जर्मनी के, यह धारणा गलत है। संसार में जितनी वायु है, जितना जल है, जितना प्रकाश है, जितनी भूमि है, सब सबकी सम्पत्ति है—यह साम्ययोग की व्यापक दृष्टि है।"

कांचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन के समय वहाँ अपने प्रथम दिन के प्रार्थना-प्रवचन में विनोबाजी ने व्याख्या करते हुए बतलाया कि समग्र दृष्टि से साम्यवाद और साम्ययोग के बीच क्या पार्थक्य है। उन्होंने कहा : "साम्यवाद विषमतावाद की प्रतिक्रिया है—यह साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की प्रतिक्रिया है। साम्ययोग एक जीवन-विचार है, वह स्वयम्भू है। यूरोप में पूँजीवादी समाज-रचना के कारण जो विचारधारा प्रसारित हुई थी, उसमें कई त्रुटियाँ थीं। इसलिए वहाँ प्रतिक्रिया-स्वरूप साम्यवाद का जन्म हुआ। इस तरह की प्रतिकारात्मक विचारधारा जीवन-विचार नहीं हो सकती। वह एक तात्कालिक वस्तु है और किसी समय-विशेष के लिए उपयोगी साबित होती है। मेरी धारणा है कि साम्यवाद का काम प्रायः समाप्त हो गया है—उसका सार-तत्त्व संसार ने ग्रहण कर लिया है। उसकी ओर आज सारा संसार आकृष्ट है। हम उसे 'सर्वोदय' कहकर पुकारते हैं। हमने उसे 'साम्ययोग' नाम दिया है। वह एक जीवन-विचार है। चिरकाल तक उसकी उपयोगिता बनी रहेगी, क्योंकि उसका आधार आत्मा की एकता है। आत्मा की एकता भारत के ऋषियों द्वारा अनुभवसिद्ध है। आत्मा की एकता के सम्बन्ध में वे मनुष्य-समाज को शिक्षा दे गये हैं।"

सख्य भक्ति का युग

अनादिकाल से मानव-समाज का विकास होता आ रहा है। आत्मा अनन्तगुण-सम्पन्न है। एक-एक युग के प्रयोजन के अनुरूप आत्मा के एक-

एक गुण का विकास होने की आवश्यकता होती है। तब उस गुण का विकास होता है और समाज में उस गुण का चिन्तन-मनन होने लगता है। इसी प्रकार समाज में एक समय वस्त्र-धारण गुण के विकास की आवश्यकता हुई थी। उस युग के समाज में वस्त्र-धारण को ही धर्मस्वरूप माना जाता था। और एक युग में काम-नियमन की आवश्यकता हुई थी। उस समय काम-नियमन की चेष्टा में विवाह-प्रथा की सृष्टि हुई। गुणमात्र का ही लोग आदर करते हैं, यह सत्य है, किन्तु युग के प्रयोजन के अनुसार और परिस्थिति की परिणति के फलस्वरूप समाज में जिस गुण के विकास का प्रयोजन होता है, उस गुण का प्रयोग करने के लिए समाज उत्सुक हो उठता है। वस्त्र-धारण का आज मनुष्य आदर करता है। काम-नियमन का मनुष्य निश्चय ही आदर करता है, किन्तु आज उसके विकास के लिए समाज उत्सुक नहीं है। तब, जिस गुण के प्रयोग और विकास के लिए आज समाज उत्सुक हुआ है, वह कौन-सा गुण है अथवा वे कौन-कौन-से गुण हैं? विनोबाजी कहते हैं कि आज तीन गुणों की आवश्यकता का उद्भव हुआ है (१) निर्भयता, (२) समता और (३) समाजनिष्ठा। समता के विषय में हम यहाँ विचार करेंगे। एक युग में सदुद्देश्य से प्रेरित होकर ही वर्ण-व्यवस्था कायम की गयी थी। विनोबाजी इस सम्बन्ध में कहते हैं 'ऐसी व्यवस्था थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा ग्रहण कर सके। उस युग में मनुष्य की योग्यता देखी जाती थी। उस युग के लोग सोचते थे कि जिन्हें कम बुद्धि है, उन्हें पढने-लिखने की क्या आवश्यकता है? उन्हे मेहनत के काम में लगाना अच्छा होगा, और यदि उन्हें बुद्धि के काम में लगाया जायगा, तो उनसे बुद्धि का भी काम नही होगा और मेहनत का भी नही।" इसीलिए श्रेणियो या वर्णों की सृष्टि की गयी थी। किसी पर राज्यभार और देश-रक्षा का भार दिया गया। किसी पर वाणिज्य-व्यवसाय का भार डाला गया। और, किसीको शारीरिक परिश्रम करने का भार दिया गया। अन्य वर्णों की सेवा करने का भार एक अन्य श्रेणी को दिया गया। अभी हम ऐसा सोच सकते हैं कि वर्णभेद करने में उनका उद्देश्य अच्छा नही था, किन्तु यह ठीक नही है। किसी बुरे उद्देश्य से वर्णभेद नही किया गया था। विनोबाजी कहते है "बाद में असमता बढी और लोगो ने सोचा कि प्रत्येक की योग्यता बढ़ायी

जा सकती है। जिस युग में विज्ञान नहीं था, उसी युग में वर्णों का जन्म हुआ था। किन्तु, जब विज्ञान का विकास होने लगा, तब यह सोचा जाने लगा कि विज्ञान की सहायता से सभी मनुष्यों का समान विकास किया जा सकता है। अतएव वर्णों अथवा श्रेणियों की अब कोई आवश्यकता नहीं है।" समाज में जिन अन्य असमतामूलक या समता की विरोधिनी व्यवस्थाओं का जन्म हुआ था या जिन्हें पैदा किया गया था, उनके सम्बन्ध में भी वही बात प्रयोज्य है। अर्थात् आज विज्ञान के युग में इन सब असम व्यवस्थाओं को कायम रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसीलिए आज समाज में समता की इतनी तीव्र भूख जगी है। समता-विरोधी कोई बात समाज को अच्छी नहीं लगती। समाज में समता लाने-सम्बन्धी कोई भी आन्दोलन जनसाधारण में उत्साह पैदा करता है, क्योंकि आज युग की यही आवश्यकता है।

आज समता का युग आया है। इसलिए समाज में, श्रेणी-श्रेणी में, व्यक्ति-व्यक्ति में जो श्रद्धा या भक्ति विद्यमान थी, उसकी भूमिका में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आना निश्चित है। पारस्परिक सम्पर्क की तरह ही पारस्परिक प्रेम, भक्ति या श्रद्धा का भी रूप होगा। पारस्परिक सम्पर्क की भूमिका में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। इसीलिए प्रेम, श्रद्धा या भक्ति के रूप में भी क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं। समता के युग में भक्ति का रूप 'सख्य भक्ति' होता है। शास्त्र में पाँच प्रकार के प्रेम-भाव या भक्ति-भाव की चर्चा हुई है। शास्त्र कहता है कि प्रेम-भाव या भक्ति-भाव पाँच प्रकार के होते हैं। जैसे,—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। ऋषि लोगों का भाव शान्त-भाव होता है। "स्वानन्दभावे परितुष्ट।" "आत्मन्येवात्मना तुष्ट।" माँ का सन्तान के प्रति वात्सल्य-भाव होता है, जैसा कि गोपाल के प्रति यशोदा का भाव है। पत्नी का भाव मधुर-भाव होता है, जैसे गोपिकाओं का भाव। दास्य-भाव होता है स्वामी के प्रति सेवक का भाव। रामचन्द्र के प्रति हनुमान् का दास्य-भाव था। और सखा-भाव कहते हैं बन्धु के प्रति बन्धु के, सखा के प्रति सखा के भाव को। श्रीकृष्ण के प्रति अर्जुन की जो भक्ति, श्रद्धा या प्रेम है, वह सख्य-भक्ति का उदाहरण है। जो व्यक्ति दूसरे को जैसा देखता है या समझता है, उसका भाव वैसा ही होता है। "यो यच्छ्रद्धः स एव सः।" जिसकी जैसी श्रद्धा होती है, वह वैसा ही होता है। आज

भाई की पत्नी को लोग नाम से पुकारने लगे हैं। उन लोगों के बीच परस्पर श्रद्धा या भक्ति में कमी नहीं आयी है, किन्तु आज वह सख्य भक्ति में परिणत हो गयी है। आधुनिक रुचि-सम्पन्न गुजराती परिवार में बच्चे पिता को नाम लेकर पुकारते हैं। जैसे, पिता का नाम 'मनुभाई' है, तो पुत्र पिता को 'मनुभाई' कहकर पुकारता है। यहाँ पिता-पुत्र के बीच प्रेम-भाव नष्ट नहीं होता—केवल युग-परिवर्तन के अनुसार उसका प्रकार-भेद हो जाता है।

विनोबाजी आगे कहते हैं : "युग की माँग के अनुसार हमें समाज का गठन करना होगा। आज यह समझ लेना आवश्यक है कि पुराने युग का जो मूल्य था, वह ठीक उसी रूप में टिक नहीं सकता। तुलसी-रामायण के समय जिसका जो मूल्य था, इस युग में उसका वही मूल्य नहीं रहेगा। उस युग में ब्राह्मण श्रेष्ठ माने जाते थे, किन्तु वर्तमान युग की रामायण में यह नहीं माना जा सकता कि केवल ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है। जो अच्छे हैं, वे श्रेष्ठ माने जायँगे (किन्तु समता का सम्बन्ध रहेगा)।

"वर्तमान युग में कारखानों में मालिक और मजदूर रहेंगे। एक की बुद्धि अधिक और दूसरे की शारीरिक शक्ति अधिक। मजदूर यह नहीं कहेगा कि 'आप मालिक हैं और मैं आपका नौकर हूँ।' यह सम्बन्ध और अधिक दिनों तक नहीं चलेगा। अब तो दोनों ही भागीदार होंगे। बुद्धि के लिए मालिक को जो पारिश्रमिक मिलेगा, शारीरिक श्रम के लिए मजदूर को भी वही पारिश्रमिक मिलेगा। पारिश्रमिक बराबर होगा, परन्तु जिसकी योग्यता अधिक होगी, वह आदरणीय होगा। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का मित्र होगा, साथी होगा।

"वर्तमान युग में भाई-भाई, गुरु-शिष्य, पति-पत्नी आदि के सम्बन्ध नवीन ढंग के होंगे। उसमें एक नयी रुचि आयगी। प्राचीन युग में भी पारस्परिक सम्बन्ध प्रेमपूर्ण थे। किन्तु आज वह प्रेम विकारग्रस्त हो गया है। पति महोदय बिगड़ गये हैं, फिर भी उन्हें देवता माना जा रहा है और साध्वी होने पर भी पत्नी का आदर नहीं है। जहाँ सम्बन्ध खराब हो गया है, वहाँ नवीन युग की माँग सामने आ गयी है।

"आज यदि स्वयं रामचन्द्र भी संसार में आकर राजा राम होना चाहें, तो हम यह स्वीकार नहीं करेंगे। महात्मा गांधी भी यदि आयें, तो हम उन्हें

राजा गांधी नहीं बनायेंगे। वे महात्मा गांधी रहेंगे। प्राचीन काल में अच्छे राजा थे, किन्तु उनकी अपेक्षा खराब राजा अधिक थे। पहले प्रजा का विकास सीमाबद्ध था, किन्तु आज समय आगे बढ गया है। जो व्यक्ति समय के परिवर्तन के अनुसार चलना नहीं सीखता, वह हार भी खाता है और मार भी। धारा में पड़ा हुआ व्यक्ति यदि हाथ-पाँव न चलाये, तो भी धारा उसे आगे ले जाती है। किन्तु, यदि वह धारा के विपरीत जाने की चेष्टा करेगा, तो उसका कुछ व्यायाम होगा, यह तो सही है, किन्तु वह आगे नहीं बढ सकेगा।

"मनुष्य कितना भी बड़ा क्यों न हो, उसकी प्राचीन प्रतिष्ठा और आडम्बर आज और नहीं चलेगा। हमारे पास इसका एक उदाहरण है। परशुराम कितने महान् पुरुष थे। उनकी बड़ी ख्याति भी थी। उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन किया था। वे अवतार थे। किन्तु, जब रामचन्द्र आये तब उन्हें यह पहचान लेना जरूरी था कि नया अवतार आ गया है। किन्तु, उन्होंने यह नहीं पहचाना और रामचन्द्र के साथ लड़ाई करने को बढ़े। उसमें वे पराजित हुए। परशुराम-सदृश शक्तिशाली पुरुष जब यु के विरुद्ध जाने के उपक्रम में नहीं टिक सका, तब दूसरा कोई कैसे टिकेगा? पुरानी रीति कितनी भी अच्छी क्यों न हो, वह नये युग में अच्छी तरह ठहर नहीं सकेगी।

"आज जब कार्यकर्ताओं के साथ मे ी वार्ता हुई, तब मैंने उनसे कहा कि हमें जो एक-षष्ठांश चाहिए, वह मानो टैक्स की अदाई की जा रही है। मैं तो यह विचार समझा रहा हूँ कि भूमि, सम्पत्ति और उत्पादन के साधनों पर अब सबका समान अधिकार है। युग की माँग की बात जो व्यक्ति बतलाता है, उसे लोग उद्धत मानते हैं। यदि उसे उद्धत माना जायगा, तो वह उद्धत हो जायगा। किन्तु, यदि युग की भूख पहचान ली जाय तो जो माँगने आयेगा, वह नम्र होकर रहेगा और छोटे-बड़े की श्रद्धा करेगा।"

माता-पिता के साथ सन्तान के सम्बन्ध के विषय में चर्चा करते हुए विनोबाजी कहते हैं "लोग कहते हैं कि आजकल सन्तान माता-पिता की श्रद्धा नहीं करती। सन्तान तो बाल्यावस्था से ही माँ पर पूर्ण श्रद्धा रखकर चलती रहती है। माँ यदि कहेगी कि वह चाँद है, तो बच्चा मान लेगा। बच्चा यह नहीं कहता कि ठहरो, जरा मैं पता लगा लूँ कि वह सचमुच चाँद

समता का युग है। इसकी विशद व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं 'अर्जुन और भगवान् श्रीकृष्ण के बीच सख्य भक्ति की भूमिका थी। एक दूसरे को समान मानकर वे काम करते थे। श्रीकृष्ण ज्ञान के भंडार थे। अर्जुन का ज्ञान सीमित था। वे पराक्रमी तो थे, किन्तु उनकी शक्ति परिमित थी। श्रीकृष्ण की शक्ति असीम थी। किन्तु उन दोनों के बीच सखा-सम्बन्ध था। दोनों के बीच समानता का सम्बन्ध था। भगवान् के प्रति अर्जुन के मन में आदर-श्रद्धा थी, किन्तु उसका मूल समता में था। उसके पूर्व एक युग दास्य भक्ति का युग था। उस युग में स्वामी-सेवक का भाव था। स्वामी और सेवक के बीच प्रेम था। किन्तु, स्वामी सेवक का पालन-पोषण करता था और सेवक स्वामी की भक्ति करता था। वह हनुमान् का युग था। हनुमान् राम की जो भक्ति करते थे, वह दास्य भक्ति थी। आज संसार में सख्य भक्ति की भूख बहुत अधिक है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जो पूज्य पुरुष हैं उनके प्रति भक्ति नहीं रहेगी। अब भक्ति के साथ साथ समता का सम्बन्ध रहेगा। जब युद्ध का समय आया, तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा 'आप मेरी सहायता करेंगे क्या ? आप मेरे सारथी बनें और मेरे घोड़ों की देख रेख करें।' इस प्रकार अर्जुन ने अपने परमपूज्य व्यक्ति को घोड़ों की सेवा का काम सौंपा था। मित्रता का सम्बन्ध था, इसलिए उन्होंने ऐसा किया था।

"हनुमान् के युग में समाज का गठन ऐसा था कि शक्तिशाली व्यक्ति स्वामी होता था और सेवापरायण व्यक्ति सेवक। स्वामी और सेवक के बीच प्रेम और आदर रहता था, किसी तरह का विवाद उनके बीच नहीं था। किन्तु उस युग में विकास की सीमा निर्दिष्ट थी।

'रामचन्द्र 'राजा राम' थे, किन्तु कृष्ण 'राजा कृष्ण' नहीं थे। वे 'गोपाल-कृष्ण' थे—बन्धु ही थे। वर्तमान युग में आपस में कितना भी प्रेम क्यों न रहे स्वामी-सेवक का सम्बन्ध उपयोगी नहीं प्रतीत होता। बीच में एक समय आया था, जब स्वामी अत्याचारी बन गया था और सेवक के मन में स्वामी के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रह गया था। आज भी स्वामी-सेवक के सम्बन्ध सुधर सकते हैं, परन्तु आज के युग की माँग सख्य भक्ति' है। स्वामी-सेवक के सम्बन्ध इस युग में पर्याप्त नहीं हैं।

"इसीलिए हम जब दान माँगते हैं, तो यह नही कहते कि 'आप श्रेष्ठ हैं, आप स्वामी हैं, आप मालिक हैं हमे दान दीजिये। हम आपकी सेवा करेंगे। हम आपके कृतज्ञ होंगे।' हम तो यही कहते हैं कि सब भाई-भाई हैं। मैं बराबर का हिस्सेदार हूँ। मुझे मेरा हिस्सा दीजिये। दान का अर्थ समान विभाजन है, समान वितरण है। यह शंकराचार्य द्वारा निर्दिष्ट अर्थ है। इसीलिए जब कोई एक सौ एकड में से दो एकड का दान देता है, तो मैं उसे स्वीकार नही करता। यदि मैं दास्य-भाव लेकर माँगता, तो दो एकड भी स्वीकार कर लेता और उसे प्रणाम करता, उसके प्रति कृतज्ञ रहता, उसका उपकार मानता। किन्तु आज हम सखा-सम्बन्ध के आधार पर माँग रहे हैं। आज का सामाजिक सगठन सखा भाव को मान लेगा। आज गुरु-शिष्य एक-दूसरे के मित्र होंगे। एक का दूसरे के प्रति प्रेम रहेगा। गुरु शिष्य को शिक्षा देगा और शिष्य भी गुरु को शिक्षा देगा। जिसके पास जो कुछ है, वह दूसरे को देगा। दोनो ही दोनो का उपकार स्वीकार करेंगे। इस प्रकार समता का सम्बन्ध स्वीकार करके गुरु-शिष्य रहेंगे, मालिक-मजदूर रहेंगे, स्वामी-सेवक रहेंगे।

"एक समय था, जब पत्नी पति को पतिदेव मानती थी और अपने का दासी। वह समय बुरा नही था। किन्तु, आज हम एक कदम आगे बढ गये हैं। वर्तमान युग की पत्नी पतिव्रता होगी और पति पत्नीव्रत होगा। एक-दूसरे को देवता समझेंगे। जिसकी योग्यता अधिक होगी, वह आदरणीय होगा। यदि पति की योग्यता अधिक होगी, तो पत्नी उसकी श्रद्धा करेगी और यदि पत्नी की योग्यता अधिक होगी, तो पति उसके प्रति श्रद्धा-भाव रखेगा। किन्तु, उन दोनो के बीच समानता का सम्बन्ध होगा। इसीको मैं सख्य भक्ति का युग कहता हूँ।"

वर्तमान युग के इस परिवर्तन का लक्षण और भी दो-एक पारिवारिक सम्बन्धो के क्षेत्र में देखा जा रहा है। पहले बगाली-परिवार में भाई की पत्नी को बेटी की तरह माना जाता था और भाई की पत्नी अपने पति के बडे भाई को पिता की तरह मानती थी और इसीके अनुसार दोनो एक-दूसरे को सम्बोधित करते थे। आजकल आधुनिक रुचि-सम्पन्न बगाली-परिवार में बधू अपने पति के बडे भाई को "दादा" कहकर पुकारने लगी है और छोटे

है या नहीं। इतनी श्रद्धा रहने पर भी लोग कहते हैं कि सन्तान माँ-बाप को नहीं मानती। मैं तो यह कहूँगा कि माता-पिता युग की प्रवृत्ति को नहीं समझते। माता-पिता सन्तान के साथ समानता का सम्बन्ध रखकर चलें और समता के आधार पर प्यार करें। उन्हें माता-पिता आदेश नहीं, परामर्श दें। आज्ञा न दें। मारें-पीटें भी नहीं। पहले भी माता-पिता मार पीट करते थे, किन्तु प्यार का ही भाव लेकर। इस युग में ऐसा और नहीं चलेगा। इस युग में माँ कहेगी कि मैं तुम्हें दंड नहीं दूँगी, अपने को दंड दूँगी, उपवास करूँगी।

"सबकी अपनी-अपनी विशेषता है। मजदूर की बुद्धि कम होने पर भी उसकी सहृदयता अधिक हो सकती है। किसीके लिए भी यह मृत्यु का आलिंगन करने के लिए तैयार हो सकता है। हमारी बुद्धि अधिक हो सकती है, किन्तु हम शारीरिक दृष्टि से दुर्बल हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ-न-कुछ दुर्बलता भी है और विशेषता भी। इसीलिए समता के सम्बन्ध के आधार पर परस्पर प्रेम रहना चाहिए।"

इस दृष्टि से यदि भूदान-यज्ञ को देखा जाय, तो यह इस युग की माँग है, यह बात सहज ही समझ में आ जाती है। यदि यह युग की माँग नहीं होती तो गरीब पर्यन्त दान नहीं देते और धनी लोग विनोबाजी के मार्ग में बाधा देते। इसीलिए विनोबाजी इस सम्बन्ध में कहते हैं "यह नवीन विचार मैंने अपनी थैली से बाहर नहीं निकाला है। युग प्रवाह से मैंने इसे ग्रहण किया है। इस विचार का प्रसार करने की दृष्टि से काम कीजिये—केवल 'कोटा' पूरा करने की दृष्टि से नहीं। 'कोटा' पूरा कर देने से ही काम नहीं चलेगा। जब आप जनसाधारण को यह समझा दे सकेंगे कि सख्य भक्ति का समय आ गया है, तभी आपका काम सफल माना जायगा।"

साम्य का स्वरूप

आज का समाज-संघटन बहुत विकारग्रस्त है। विनोबाजी कहते हैं "वह संगठन नहीं है, वह विध्वंस है। उसकी सबसे बड़ी त्रुटि है—बहुत अधिक वैषम्य। इस वैषम्य को दूर कर समाज में साम्य-स्थापना करनी होगी।" यह साम्य किस प्रकार होगा? विनोबाजी कहते हैं - "हमें नया राग न

तैयार करना होगा। इसके लिए हमें अपने हाथ की पाँच अँगुलियों से शिक्षा लेनी होगी। ये अँगुलियाँ पूर्णत समान भी नही है और असमान भी नही। प्रत्येक अँगुली अपने में स्वतन्त्र है। इसके अतिरिक्त अन्य अँगुलियों का सहयोग लेकर प्रत्येक अँगुली काम करती है। इसी आधार पर हमे भी समाज-रचना करनी होगी, जिसमे कि नये समाज मे अत्यन्त असाम्य भी न रहे और अत्यन्त समानता भी न रहे। उस समाज में प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना व्यक्तित्व रहेगा, प्रत्येक के व्यक्तित्व का विकास होगा और प्रत्येक व्यक्ति दूसरो के सहयोग से काम करेगा। यही समझाने के लिए मैं द्वार-द्वार घूमता फिर रहा हूँ।" समाज मे साम्य-प्रतिष्ठा करने के लिए हमें विवेक-बुद्धि के सहारे चलना होगा। ऐसा होने पर ही हम हाथ की पाँचों अँगुलियों की शिक्षा सम्यक् रूप मे ग्रहण कर सकेंगे। विनोबाजी ने एक उदाहरण देकर यह बात समझायी है। माता अपने बच्चों को गणित के हिसाब से समान भोजन नही देती। सबसे छोटे बच्चे को वह केवल दूध देती है। उससे कुछ बडे बच्चे को वह थोडा दूध और रोटी खाने को देती है और बड़े को केवल रोटी देती है। यही विवेकयुक्त समता है। अहिंसा के पथ पर समता आने से ऐसी ही समता आयगी। किन्तु, अन्य देशो मे हिंसा के पथ पर जो समता लाने की चेष्टा की गयी है, वह असफल साबित हुई है। विनोबाजी कहते हैं : "समाज मे प्रत्येक व्यक्ति की भूख और पचेन्द्रिय शक्ति देखकर उसके भोजन की व्यवस्था करनी होगी। किन्तु, जहाँ हिंसा के द्वारा समता की स्थापना की गयी है, वहाँ सबको एक ही साँचे मे ढाला गया है। हम इस प्रकार सबका एक साँचे में ढला होना कभी पसन्द नही करेंगे। हम विवेक के द्वारा समता लाना चाहते है। आध्यात्मिक समता की स्थापना हमारा लक्ष्य है।" आध्यात्मिक समता का आधार है, स्वामित्व-भाव का त्याग। यह जमीन मेरी है, यह घर मेरा है, यह खेत मेरा है—इस प्रकार के मोह का विसर्जन करना होगा। ये सब जो चीजें हमारे पास है, वे दूसरों की सेवा के लिए है, मैं उनका रक्षक-मात्र हूँ, मैं ट्रस्टी-मात्र हूँ—ऐसी विचारधारा समाज में प्रतिष्ठित करनी होगी। तभी साम्य का आदर्श सार्थक हो सकेगा। जो सम्पत्ति है, यदि उससे सबका पूर्णत पोषण न हो पाये, तो सभी थोडा-थोडा उसका उपभोग करेंगे। एक रोटी से पेट भरता है, आठ व्यक्ति हैं और रोटियां

है केवल छह। एक व्यक्ति को तीन, एक व्यक्ति को दो और बाकी छह व्यक्तियो के लिए केवल एक रोटी ! इस स्थिति में इस प्रकार परिवर्तन लाना होगा कि सब थोडा-थोडा खाना स्वीकार करें और कोई भी दो से अधिक रोटी न खाये। ऐसी समतामूलक मनोवृत्ति का एक दृष्टान्त विनोबाजी ने दिया है : "एक तमिल साधु एक छोटी झोपडी के बाहर सोकर रात काटते थे। एक रात वर्षा होने के कारण वे उठकर अन्दर जाकर सोये। तभी बाहर से किसी व्यक्ति ने दरवाजा खटखटाया। साधु ने कहा : 'आओ भाई, घर में एक आदमी सो सकता है, परन्तु दो आदमी बैठे रह सकते हैं।' उन्होंने आगतुक को अन्दर ले लिया और दोनो बैठे रहे। इसके बाद एक तीसरे व्यक्ति ने आकर दरवाजा खटखटाया। साधु ने कहा : 'यहाँ एक व्यक्ति सो सकता है, दो व्यक्ति बैठ सकते हैं, किन्तु तीन व्यक्ति खडे रह सकते हैं। अत आओ, हम तीनो व्यक्ति खडे रहेंगे।' उन्होंने तीसरे व्यक्ति को भी अन्दर ले लिया और तीनो व्यक्ति खड़े रहे।" भारत में साम्य का यही आदर्श प्रतिष्ठित होगा। इस प्रसग में रूमी की मसनवी की एक कहानी याद आती है।* एक सूफी था। उसने अपने एक मित्र के घर जाकर दरवाजे पर धक्का दिया। मित्र ने भीतर से पूछा : 'Who is there ?' (कौन है ?) सूफी मित्र ने कहा : 'I am.' (मैं हूँ तुम्हारा मित्र।) मित्र ने तब उत्तर दिया : 'Begone . at my table there is no place for the two' (वापस जाओ मित्र, मेरी मेज पर दो व्यक्तियो के लिए स्थान नहीं है।) सूफी मित्र तब मन में दुःख लिये चले जाने को बाध्य हुआ। किन्तु विरह की अग्नि में उसका हृदय जला जा रहा था। इसीलिए वह भय और श्रद्धा लिये वापस लौटा और उसने पुन मित्र के दरवाजे पर आवाज दी। अन्दर से पहले की ही तरह प्रश्न हुआ : 'Who is there ?' (कौन है ?) सूफी ने उत्तर दिया : 'Thou beloved thou.' (हे प्रियतम, तुम।) तब दरवाजा खुल गया और मित्र बोला : 'Since thou art I, come in, there is no room for two, I's in this room.'

---

* 'विश्ववाणी'—कार्तिक, १३५९ । पृष्ठ ३९५—'मन ओ मानुष' शीर्षक निबन्ध से उद्धृत।

(तुम जब मेरे साथ मिलकर एक हो गये हो, तुम्हारा अहम् जब समाप्त हो गया है, तो तुम अन्दर आ जाओ। मेरे घर में दो 'मैं' के लिए स्थान नहीं है।)

श्मशान की शान्ति

एक जगह यह आपत्ति की गयी थी कि वहाँ शान्ति विराजमान थी, किन्तु विनोबाजी के आन्दोलन के कारण स्थानीय लोगों के मन में भूमि की भूख पैदा हो गयी है और उससे अशान्ति की सम्भावना दिखाई पड़ी है। इस पर विनोबाजी ने कहा कि वह शान्ति 'श्मशान की शान्ति' है एवं वैसी शान्ति के बदले किसी प्रकार की अशान्ति होने से वे उसे सह लेंगे, क्योंकि सुषुप्त जनता की अपेक्षा जाग्रत जनता अच्छी है।

असफलता की प्रतिक्रिया

यदि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन पूर्ण रूप से सफल न हो, तो जन-साधारण और भूमिहीनों पर इसकी कैसी प्रतिक्रिया हो सकती है, इस विषय में अनेक लोग विवेचना करते हैं। किन्तु, अभी इस बारे में विवेचना करने से कोई लाभ नहीं है, बल्कि क्षति की ही सम्भावना अधिक है। ज्वलन्त विश्वास लेकर और एकान्त-निष्ठा के साथ एकाग्रचित्त होकर क्रान्ति के काम में अपने को लगाना पड़ता है। अन्यथा, पूर्ण फल प्राप्त नहीं होता। इसीलिए असफलता की सम्भावना के बारे में चिन्ता और विवेचना करने से उसकी प्रतिक्रिया अवसादपूर्ण हो सकती है। जो हो, इस सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि चूँकि इस आन्दोलन का उद्देश्य शान्ति-मार्ग से मनुष्य के हृदय में पड़ोसी के लिए प्रेम पैदा करना और परिवार की सीमा का विस्तार करना है, यह धर्म का काम जितना भी होगा, उसका फल और प्रतिक्रिया अच्छी ही होगी। गीता की भाषा में यह कहा जा सकता है कि इस महान् धर्मकार्य का आरम्भ-मात्र भी विफल नहीं होगा। थोड़ा भी काम होने से महाभय से परित्राण मिलेगा।

किन्तु इस आन्दोलन की विफलता की प्रतिक्रिया स्वयं विनोबाजी पर कैसी होगी, इस विषय में विचार करने की आवश्यकता है। कौतूहलवश

लोग विनोबाजी से बीच-बीच मे प्रश्न करते है कि यदि भूदान-यज्ञ पूर्ण रूप से सफल न हो तो वे क्या करेंगे ? इस प्रश्न के उत्तर में विनोबाजी ने दो-एक बार आभास दिया है कि वे सत्याग्रह कर सकते हैं। उस क्षे मे विनोबाजी जो सत्याग्रह करेगे उसका स्वरूप और प्रकृति कैसी होगी, इस बात को हृदयगम करने की आवश्यकता है। वह सत्याग्रह कैसा होगा, इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा था "यदि धनी लोगो का हृदय नही खुलेगा, तो मै एक कदम और आगे बढ़ूगा। आज जो कर रहा हूँ, उससे एक पग भी आगे नही बढ़ूंगा—ऐसा कोई बन्धन या सीमा-रेखा हम लोगो के लिए नही है। ऐसे बन्धन मे मेरा विश्वास भी नही है। हममें प्रेम की शक्ति रहनी चाहिए। माँ अपनी सन्तान के लिए कितना त्याग करती है, किन्तु जब वह देखती है कि उसकी सन्तान बुरे मार्ग पर जा रही है एव उससे उसे दुख हो रहा है तो वह क्या करती है ? वह सत्याग्रह करती है। वह उपवास करती है और अपनी सन्तान को समझाती है। दूसरे को दुख न देकर स्वय दुख सहने और समझाते रहने का ही नाम सत्याग्रह है।" किन्तु, आजकल चारो ओर छोटी-छोटी बातो को लेकर सत्याग्रह के नाम पर जो कुछ किया जाता है, वह वैसा 'सत्याग्रह' नही है। सत्याग्रह की बात सुनकर लोगो के मन में वह गलत धारणा उत्पन्न नही होनी चाहिए। उसकी प्रतिक्रिया कतई अच्छी नही होती—उसमें जिसके लिए सत्याग्रह किया जाता है, उसके मन मे प्रेम-भाव का उद्रेक न होकर विरोध भाव ही बढता है। इस बारे में सतर्क करते हुए विनोबाजी ने कहा है "सत्याग्रह की बात उठाकर मै भय-प्रदर्शन नही कर रहा हूँ। मै जानता हूँ कि सत्याग्रह का 'दुरुपयोग' होता है और आजकल यही हो रहा है। किन्तु मेरा विश्वास है कि आग्रहपूर्वक सत्य का आचरण किया जाना चाहिए, जिससे आसपास के सभी लोगो का हृदय पिघले। इसके लिए जिस किसी भी त्याग के लिए तैयार होना सत्याग्रह है। मेरा यह भी विश्वास है कि यदि ससार में एक भी विशुद्ध सत्याग्रही हो, तो उसका प्रभाव सारे ससार पर पडेगा और सारे ससार का हृदय द्रवीभूत होगा। किन्तु उसके हृदय में सम्पूर्ण ससार के लिए प्रेम रहना चाहिए।'

जिस अनशन के फलस्वरूप सबके हृदय में प्रेमभाव पैदा हो, वही विशुद्ध अनशन है। किन्तु जिस अनशन से विपरीत प्रतिक्रिया हो, द्वेष-भाव और

विरोध-भाव आये, वह अनशन गलत है। जिसके लिए अनशन किया जाय, उसे यह अनुभव होना चाहिए कि उसने भूल की है। अतएव सत्याग्रह की बात सुनकर किसीको भय नहीं होना चाहिए। वे कहते हैं : "मैं अपनी विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए सत्याग्रह की बात करता हूँ। साथ ही मैं यह अनुभव करता हूँ कि दो वर्षों से जो काम हो रहा है, वह एक प्रकार का सत्याग्रह ही है। सत्याग्रह के सम्बन्ध में मैंने अध्ययन किया है। इसलिए सत्याग्रह क्या है, इस बात को मैं थोड़ा समझता हूँ। सत्याग्रह का अर्थ यह नहीं है कि किसी बात को लेकर किसीके विरुद्ध कुछ किया जाय। केवल यही सत्याग्रह हो, ऐसी बात नहीं है। इसलिए जो सब काम किया जा रहा है, जैसे, पदयात्रा, ग्राम-ग्राम में जाकर लोगों को विचार समझाना, जमीन माँगना—यह सब सत्याग्रह ही है।"

उग्र सत्याग्रह

कोई-कोई व्यक्ति सोचते हैं कि यदि भूमि-समस्या के समाधान के लिए अहिंसात्मक आन्दोलन का आश्रय लेना हो, तो स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए जैसा सत्याग्रह किया गया था, वैसा ही सत्याग्रह भूमि-स्वामियों के विरुद्ध भी क्यों नहीं होगा? ऐसे भिक्षामूलक आन्दोलन से क्रान्ति आना सम्भव नहीं है। उन लोगों की इस बात के उत्तर में हम यह कहना चाहते हैं कि स्वाधीनता-आन्दोलन में अंग्रेज-सरकार के विरुद्ध जो सत्याग्रह किया गया था, वह उग्र सत्याग्रह था। किन्तु पहले जो विचार किया गया है, उससे स्पष्ट है कि बाहरी बल-प्रयोग न कर किसीके विरुद्ध कुछ करना ही एकमात्र सत्याग्रह है, ऐसी बात नहीं है। अन्यान्य प्रकार के सत्याग्रह भी हैं। किस समय में, किस स्थिति में कैसे सत्याग्रह को अपनाना चाहिए, यही विचारणीय विषय है। स्वराज या स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए अंग्रेज-सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह किया गया था। गांधीजी के आने के पहले ही स्वराज या स्वाधीनता कांग्रेस का उद्देश्य था। पराधीनता के बन्धन तोड़ने होंगे और स्वाधीनता प्राप्त करनी होगी—यह विचार लोगों के समक्ष नवीन नहीं था। इसलिए वहाँ विचार-विप्लव की आवश्यकता नहीं थी। केवल प्रश्न यही था कि कौन-सा मार्ग अपनाने से शीघ्र स्वाधीनता प्राप्त होगी। अतएव उस युग में वैसा

सत्याग्रह ही उपयोगी था, यह बात सहज ही समझ में आ जाती है। किन्तु, भारत की भूमि-समस्या के समाधान के लिए एक अभिनव विचार-बोध समाज में जाग्रत करना होगा। व्यक्तिगत सम्पत्ति-बोध पर वर्तमान समाज आधृत है। इसके विपरीत एक विचार समाज में पैदा करना होगा। भूमि भगवान् की है। भूमि पर सबका समान अधिकार है। केवल यही नहीं, हमारे पास जो कुछ है, संसार में जो कुछ है, सब भगवान् का है। इसलिए सब भगवान् को, अर्थात् समाज को, अर्पित कर केवल अल्पमात्रा में उसका प्रसाद-स्वरूप भोग करना होगा। ऐसी क्रान्तिकारी विचारधारा की प्रतिष्ठा के लिए किसी भी प्रकार का उग्र सत्याग्रह निष्फल होगा। अतएव यदि पहले ही भूमि-मालिकों के विरुद्ध या धनी लोगों के विरुद्ध उग्र सत्याग्रह का अवलम्बन किया जाता, तो वह केवल जबरदस्ती होती और उससे विचार-प्रचार या विचार-प्रतिष्ठा कर सकना सम्भव न होता। इसके अतिरिक्त समाज में एक विपर्यय-मात्र की सृष्टि होती, कोई सुफल नहीं निकलता। अभी जिस पथ का अवलम्बन किया गया है, वह यदि पूर्णरूप से सफल न भी हो, तो उक्त क्रान्तिकारी विचार समाज में सर्वत्र प्रचारित हो रहा है, इस बारे में सन्देह नहीं है। यह विचार जब समाज-मानस में प्रतिष्ठित हो जायगा, तब उक्त विचारमूलक कार्य को पूरा करने के लिए अन्य प्रकार के सत्याग्रह का आश्रय ग्रहण करना होगा। तब भी वह किसी प्रकार का उग्र सत्याग्रह नहीं होगा।*

सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह

यह बात पहले ही कही गयी है कि भूदान-यज्ञ में उग्र सत्याग्रह के लिए स्थान नहीं है और अभी जो काम किये जा रहे हैं, जैसे—पदयात्रा, ग्राम-ग्राम में जाकर विचार समझाना और प्रेमपूर्वक भूमि-दान माँगना—यह भी सत्याग्रह है और सौम्य सत्याग्रह है। यदि यह असफल हो जाय, तो बाद में कौन-सा मार्ग अपनाया जायगा? बिहार में पदयात्रा के समय विनोबाजी ने इस सम्बन्ध में कहा था कि अभी वे जो कुछ कर रहे हैं, उससे एक पग भी वे आगे नहीं बढ़ेंगे, ऐसी बात नहीं है। अर्थात् असफलता मिलने पर वे और

---

* "सत्याग्रह-शास्त्र का संशोधन" प्रकरण देखिये।

भी एक या अधिक कदम उठा सकते हैं। वह कदम कैसा होगा, इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा था कि माँ जब देखती है कि उसकी सन्तान कुपथ पर जा रही है, तब वह अनशन करती है और सन्तान को समझाती है। अर्थात् सन्तान को दुःख न देकर वह स्वयं दुःख उठाती है और सन्तान को समझाती है। यह सत्याग्रह है और सौम्य सत्याग्रह। इतने दिनों तक उन्होंने स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा कि सत्याग्रह के बादवाले कदम अधिकाधिक सौम्य होने चाहिए अथवा परवर्ती सत्याग्रह-समूह सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम होगा। किन्तु पुरी के सर्वोदय-सम्मेलन में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि हमें अपना सत्याग्रह उत्तरोत्तर अधिक सौम्य बनाना पड़ेगा। वह सौम्य से सौम्यतर, सौम्यतर से सौम्यतम—इसी प्रकार आगे बढ़ेगा। इस प्रकार उन्होंने सम्पूर्ण सत्याग्रह-शास्त्र पर एक अभिनव प्रकाश डाला। अतएव सत्याग्रह की प्रकृति और स्वरूप कैसा होना चाहिए, यह अब सर्वथा स्पष्ट हो गया है। हिंसा की शक्ति उग्रता पर निर्भर करती है। हिंसा का प्रथम प्रयोग विफल होने पर बाद के प्रयोग में अधिक उग्रता लानी पड़ती है। तभी वह अधिक शक्तिशाली और सफल होगी। दूसरी ओर, अहिंसा की शक्ति और सफलता का मूल है सौम्यता। सौम्यता पर ही उसकी शक्ति निर्भर करती है। इसीलिए अहिंसा का प्रथम प्रयोग असफल होने पर बादवाले प्रयोग में अधिक सौम्यता लाने की आवश्यकता होती है और प्रथम प्रयोग में जो कुछ उग्रता रह जाती है, उसे दूर कर देना होता है। ऐसा होने से शक्ति और सफलता बढ़ती है। होमियोपैथी चिकित्सा-शास्त्र में औषधि की सूक्ष्मता पर उसकी शक्ति निर्भर करती है। इसीलिए पहली खुराक का यदि अच्छा परिणाम नहीं निकलता है, तो दूसरी खुराक में औषधि की अधिक सूक्ष्म मात्रा का प्रयोग करना पड़ता है। इससे औषधि की शक्ति के साथ-साथ उसकी उपयोगिता या सफलता भी बढ़ जाती है। अहिंसात्मक प्रयोग के क्षेत्र में भी यही बात है। यही कारण है कि 'उग्र सत्याग्रह' आदर्श सत्याग्रह नहीं होता। पुरी-सम्मेलन में विनोबाजी ने कहा : "अब सत्याग्रह-शास्त्र आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ। जो लोग सत्याग्रह की बात सोचते हैं, वे साधारणतः यह समझते हैं कि मानव-समाज छोटी हिंसा से बड़ी हिंसा की ओर और बड़ी हिंसा से अति हिंसा की ओर बढ़ रहा है। वे सोचते हैं कि पहले सौम्य सत्याग्रह करना होगा। अपनी इस पदयात्रा

को मैं सत्याग्रह ही मानता हूँ। लोग कहते हैं कि हाँ, यह सौम्य सत्याग्रह है, किन्तु इससे ठीक ग से काम न होने पर तीव्र सत्याग्रह करना पडेगा। उससे भी काम न होने पर तीव्रतर सत्याग्रह का प्रयोग करना होगा। इस प्रकार तीव्रता में वृद्धि करनी होगी। किन्तु, वास्तव मे हमें इसके ठीक विपरीत सोचना चाहिए। हम लोगो ने जो सौम्य सत्याग्रह शुरू किया है, उससे काम न चलने पर, अपेक्षाकृत अधिक सौम्य सत्याग्रह की खोज करनी पडेगी, जिससे शक्ति बढे। उससे भी काम न होने पर शक्ति और बढाने के लिए सौम्यतम सत्याग्रह करना होगा। आप लोग जानते हैं, होमियोपैथी यह शिक्षा देती है कि औषधि का कम मात्रा मे ही व्यवहार होना चाहिए। बार-बार 'डाल्युशन' के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर बढा जाता है, जो अधिक फलदायी साबित होता है। हिंसा के क्षेत्र मे ऐसा समझा जाता है कि सौम्य अस्त्र से काम न चलने पर तीव्र अस्त्र के व्यवहार से शक्ति बढेगी और काम पूरा होगा। हिंसा की इस प्रक्रिया के ठीक विपरीत हमारी प्रक्रिया है। हममें यह दृढ धारणा रहनी चाहिए कि हम लोग जो कर रहे हैं, उससे काम न चलने का कारण हमारी सौम्यता की कमी होगा और हमें सौम्यता मे वृद्धि करनी पडेगी। यही सत्याग्रह का स्वरूप है। स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जिस सत्याग्रह का आश्रय ग्रहण किया गया था, वह था दबाव के द्वारा अंग्रेजी राजशक्ति को दूर करने का 'निगेटिव' कार्य। उस समय और उस अवस्था में भारत निःशस्त्र रहते-रहते निराशा में डूब गया था। कुछ लोग भ्रान्त होकर यहाँ-वहाँ कुछ छोटे-बडे हत्याकाण्ड कर रहे थे। उस समय या तो हिंसा का मार्ग अपनाना और नही तो निराश हो चुपचाप बैठे रहना, साधारणत यही दो मनोभाव थे। इसी अवस्था में अहिंसा का विचार आया और लोगो ने, जितना सम्भव हो सका, उसे ग्रहण किया। अतएव उस समय सत्याग्रह की जिस प्रक्रिया का प्रयोग किया गया था, वही सत्याग्रह का परिपूर्ण रूप था, ऐसा सोचना ठीक नही होगा। उस विशेष परिस्थिति में एक प्रक्रिया का जन्म हुआ था। स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद आज जो अवस्था देखी जा रही है, और सारे ससार मे आज जो शक्ति क्रियाशील है, उसका सूक्ष्म अध्ययन करके यह समझना होगा कि सत्याग्रह की मात्रा हमे क्रमश अधिक सौम्य करनी है। यदि सत्याग्रह सौम्य से सौम्यतर, सौम्यतर से सौम्यतम की ओर बढ़े, तो वह अधिक सफल और

शक्तिशाली होगा। तुलसीदासकृत रामायण में सुरसा की कहानी है "सुरसा नाम अहिन की माता।" सुरसा ने हनुमान के समक्ष उपस्थित होकर एक योजन तक मुँह फाडा। यह देखकर हनुमान दो योजन के हो गये। तब सुरसा ने दो योजन अपना मुँह फाडा। यह देख हनुमान चार योजन के हो गये। तब सुरसा का मुँह आठ योजन विस्तृत हो गया। तब हनुमान सोलह योजन के हुए। तब सुरसा 'बत्तीस भयऊ'। सुरसा का मुँह बत्तीस योजन का हो गया। यह देख हनुमान ने समझ लिया कि इसके सामने इस प्रकार गुणन क्रिया से काम नहीं चलेगा—३२ से ६४ और ६४ से १२८ यह गुणन-क्रम बढता जायगा। इस वृद्धि का कोई अन्त ही नहीं होगा। 'म्यू क्लियर विपन्' तक पहुँच जायगा इसमें कोई सार नहीं है। तब 'अति लघुरूप पवनसुत लयऊ'। हनुमान ने तब अत्यन्त छोटा रूप धारण किया और वे सुरसा के मुँह के अन्दर प्रवेश करके उसके नासिकारन्ध्र से बाहर हो गये। इस प्रकार बात खतम हो गयी। हमें यह समझना होगा कि जहाँ विशाल सुरसा भयकर रूप धारण करके ऐटम-हाइड्रोजन बम के रूप में मुँह बाये खडी है, वहाँ हमें अत्यधिक सूक्ष्म रूप धारण करके उसके अन्दर प्रवेश करना होगा और उसके नासिकारन्ध्र से होकर बाहर आना पडेगा। मैं यही प्रेरणा पा रहा हूँ।"

सत्याग्रह-शास्त्र में संशोधन

भूमि-मालिकों के विरुद्ध आक्रमणमूलक या उग्र सत्याग्रह का आश्रय नहीं लिया जायगा। इस बारे में पिछले दो प्रकरणो में विचार किया जा चुका है। भूदान-यज्ञ आन्दोलन पिछले पाँच वर्षों से चल रहा है। कोई-कोई व्यक्ति ऐसा सोचते हैं कि भूदान-यज्ञ की पद्धति से जो-कुछ होना था, वह हो चुका है। अब एक नवीन आक्रमणमूलक कार्यक्रम अपनाने की आवश्यकता है। भूदान-यज्ञ में असीम सम्भावनाएँ निहित हैं। उसके माध्यम से जो कुछ होना था, वह हो चुका है ऐसा सोचना भूदान-यज्ञ के महत्त्व को न समझने का द्योतक है। यदि यह मान भी लिया जाय कि भूदान-यज्ञ की पद्धति से जो होना था, वह हो चुका है और नया कुछ करने की आवश्यकता है, तब भी पीछे के दो प्रकरणो से यह बात सहज ही समझ में

आ जाती है कि नया जो कुछ करना होगा, उसे सौम्यतर होना चाहिए। वह कदम उग्र या आक्रमणमूलक कदापि नही होना चाहिए। विनोबाजी ने कांचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन के समय दक्षिण भारत के कार्यकर्ताओ के साथ इस बारे में विचार-विमर्श किया और समग्र सत्याग्रह-शास्त्र पर एक नया प्रकाश फेंका। इसके फलस्वरूप, अब तक सत्याग्रह के सम्बन्ध मे जो धारणा थी, उसमें सशोधन करना पडेगा। उन्होने कहा "सत्याग्रह के सम्बन्ध में बहुत कुछ समझने की आवश्यकता है। गाधीजी ने अग्रेजो से कहा था : 'भारत छोडो' और उन्हे भारत छोडकर जाना पडा। किन्तु, हम अपने देश के पूँजीपतियो या भूस्वामियो से इस प्रकार 'भारत छोडो' नही कह सकते। अतएव अभी जो सत्याग्रह चलेगा, वह गाधीजी के समय के सत्याग्रह के समान निषेधात्मक (Negative) नही होगा। अभी तो सत्याग्रह के विधायक (Positive) होने की आवश्यकता है, अर्थात् उसे सौम्य से सौम्यतर होना चाहिए।" जैसा कि जयप्रकाशजी ने कहा है हम सब लोग अपनी-अपनी छाती पर हाथ रखकर यह प्रश्न कर सकते है कि क्या हमने अपने सम्पूर्ण हृदय और शक्ति से काम किया है अथवा हमारा आधा समय परस्पर के झगड-फसाद में नष्ट हुआ है? यदि हम यह समझें कि अभी निषेधात्मक (Negative) सत्याग्रह नही चलेगा, तब हम सत्याग्रह-शास्त्र में सशोधन करेंगे। अन्यथा, यह कहना होगा कि सत्याग्रह का शास्त्र गाधीजी के जाने के साथ-साथ समाप्त हो गया है और अब उस पर पूर्ण विराम पड गया है। गाधीजी ने सत्याग्रह के लिए जो सब प्रयोग किये थे, उनमे से कई सफल नही हुए थे, ऐसा वे स्वय ही स्वीकार करते थे। उन्होने स्वय ही कहा था कि राजकोट में अनशन करना गलत था। इसके अतिरिक्त अहमदाबाद में मजदूरो के लिए जो अनशन किया गया था, उसके द्वारा कुछ दबाव डाला गया था। इस कारण वह अनशन त्रुटिपूर्ण था। साम्प्रदायिक पचाट (Communal Award) में परिवर्तन कराने के लिए उन्होने जो कुछ किया था, उसके फलस्वरूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर अनुचित दबाव पडा था। सत्याग्रह मे किसी पर किसी प्रकार का दबाव पडना उचित नही है।

गाधीजी के समय का काम निषेधात्मक (Negative) था। इसलिए वह उस समय के सत्याग्रह में सफल हुआ था। अग्रेज यहाँ ठहर ही

नहीं सकते थे। उन्हें यहाँ सद्भावनापूर्वक राज्य-संचालन करना होता, अथवा इस देश को त्यागकर चला जाना पड़ता। गांधीजी पहले राजभक्त थे। उस समय उन्होंने स्वराज्य की माँग नहीं की थी। किन्तु, बाद में गांधीजी ने उन्हें यहाँ से चले जाने की बात कही। अंग्रेज यहाँ से चले गये, क्योंकि वे बाहर से आये थे। किन्तु, इस देश के मुसलमान, ब्राह्मण, मिल-मालिक, जमीन्दार आदि किसीका भी इस देश से चला जाना सम्भव नहीं है। यदि वे अन्याय करते हैं, तो इसका अर्थ यही है कि हम भी अन्याय कर रहे हैं और राष्ट्र का बहुमुखी शुद्धीकरण होने की आवश्यकता है। इसीलिए अभी जो सत्याग्रह होगा, वह बहुत ही कोमल होगा और सूक्ष्म बुद्धि से वह सत्याग्रह करना होगा। हम सब लोगों को यहाँ आपस में मिल-जुलकर रहना होगा। इसलिए हम यह नहीं कह सकते कि या तो तुम अपने को सुधारो या भारत छोड़कर चले जाओ (End or mend)। हम केवल एक बात कह सकते हैं, वह यह कि—'सुधार करो'। हमारे सामने एकमात्र यही मार्ग है। यह सत्याग्रह का एक पक्ष है, जिसके सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता है।

सत्याग्रह में संशोधन की बात उठने से अनेक लोग यह सोच सकते हैं कि गांधीजी सत्याग्रह में संशोधन नहीं चाहते थे, किन्तु बात ऐसी नहीं है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं : "मैं यह कहना चाहता हूँ कि गांधीजी के समय जो सत्याग्रह हुआ था, यदि उसे हम आदर्श मान लेंगे, तो हम भूल करेंगे। कारण, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद यहाँ गणतंत्र चल रहा है, यहाँ जो भी सत्याग्रह होगा, वह अधिक स्पष्ट होगा। उस सत्याग्रह को अधिक शक्तिशाली और विधायक होना चाहिए। इसीलिए बापू अनेक बार कहते थे : 'सत्याग्रह का शास्त्र मैं नहीं लिख पाऊँगा। उसका धीरे-धीरे विकास हो रहा है'।"

एकाग्रता और आत्मविश्वास

पहले कहा गया है कि विचारधारा की समग्रता को स्पष्ट रूप से समझाने के लिए विनोबाजी ने सत्याग्रह का उल्लेख किया है। किन्तु, उन्हें विश्वास है कि यह सत्याग्रह नहीं करना होगा। सबके मन में, विशेषकर कार्यकर्ताओं के मन में अनुकूल विश्वास रहना चाहिए और यह विश्वास हृदय में सदा

जाग्रत रखकर काम करना चाहिए। सम्भावित सत्याग्रह की बात मन में रहने से उनकी एकाग्रता और आत्मविश्वास नष्ट होगा और इससे आन्दोलन को क्षति पहुँचेगी। सन्तान के बीमार पडने पर माँ अपने मन में यह दृढ विश्वास रखती है कि उसका बच्चा अवश्य बच जायगा और इसी विश्वास पर वह चलती रहती है। सन्तान की हालत कितनी ही खराब क्यो न हो जाय, माँ का यह विश्वास अक्षुण्ण रहता है। इसीसे बीमार पुत्र की सेवा-शुश्रूषा उचित रूप से होती है। सन्तान के कुपथ पर जाने पर माँ यह विश्वास रखती है कि एक-न-एक दिन उसका बच्चा जरूर सुधरेगा और उसका यह विश्वास इतना दृढ होता है कि बार-बार की असफलताएँ भी उसे नही टिगा पातीं। वह सन्तान को बराबर समझाती रहती है। वृद्ध पिता बीमार पडा है। पुत्र ने उसकी सेवा-शुश्रूषा करने और दवा खिलाने का भार सँभाला है। यदि पुत्र यह सोचे कि पिताजी वृद्ध हो गये, वे नही बचेंगे और पिताजी की मृत्यु होने पर खटिया और लकडी की आवश्यकता पडेगी, अत इन चीजो की व्यवस्था करनी चाहिए तो पिता को दवा खिलाने और उसकी सेवा-शुश्रूषा करने में वह ढिलाई देने लगेगा। नियमित रूप से दवा खिलाने का खयाल पुत्र का नही रहेगा और फलस्वरूप पिता की मृत्यु निकट आ जायगी। इस मामले में भी यही बात है। अहिंसा के काम में विशेष रूप से विश्वास रखना ही चाहिए, अन्यथा उसकी सफलता की आशा दुराशा मात्र साबित होगी।

सम्पत्ति-दान-यज्ञ

भूदान-यज्ञ के साथ-साथ सम्पत्ति-दान-यज्ञ के प्रवर्तन की भी बात विनोबाजी ने सोची थी। किन्तु बुनियादी समस्या है भूमि की समस्या। तेलगाना में तत्क्षण ही भूमि-समस्या के समाधान के लिए कुछ न किये जाने पर एक बडी विपत्ति आने की सम्भावना को विनोबाजी ने अनुभव किया था। भूमि भगवान् का दान है—उत्पादन का मौलिक साधन है। इसीलिए गरीबी की समस्या के समाधान की चेष्टा को प्रथमत भूमि-समस्या तक ही सीमित रखना युक्तियुक्त माना गया। दूसरी ओर, उनके मन में यह बात भी आयी कि सम्पत्तिदान के बिना भूमिदान सफल नही होगा। भूदान-यज्ञ का सकल्प पूरा करना एक बात है और उसे सफल करना दूसरी बात। जो

लोग जमीन पायेंगे, वे जब सर्वोदय-वृत्ति ग्रहण करेंगे और हमारे कार्यकर्ता बन जायेंगे, तभी भूदान-यज्ञ सफल होगा। विनोबाजी ने कहा है "परन्तु मैंने सोचा कि पहले ही दो काम एक साथ शुरू करना ठीक नहीं है और दोनों काम एक साथ आरम्भ करने का संकेत भी मैंने नहीं पाया। यदि बिना संकेत के कोई काम हाथ में लूं, तो यह अहंकार होगा। उससे कोई फल नहीं निकलेगा और मेरी शक्ति विच्छिन्न हो जायगी। उस समय केवल भूदान का संकेत ही मैंने पाया था।" किन्तु, जब भूदान-यज्ञ का काम आगे बढ़ने लगा, तब यह स्पष्टतः अनुभव किया जाने लगा कि भूमि के साथ-साथ धन का अंश न मांगने से आन्दोलन में निहित उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। जब उन्होंने बिहार में प्रवेश किया, तब उन्होंने सम्पत्तिदान-यज्ञ की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की और जिस सम्राट् अशोक ने भगवान् बुद्ध के विचारों को मूर्तरूप दिया था, उसीके पाटलिपुत्र नगर में २३ अक्टूबर, १९५२ को विनोबाजी ने सम्पत्तिदान-यज्ञ की घोषणा की और, आमदनी का षष्ठांश सम्पत्तिदान-यज्ञ में देने की अपील की। अपने परिश्रम से उपार्जित धन भी केवल अपने लिए नहीं है, बल्कि सबके उपभोग के लिए भगवान् ने यह दिया है। जिस बुद्धि, शक्ति और पुरुषार्थ की सहायता से इस धन का उपार्जन किया गया है, वह परमेश्वर का ही दान है। धन मांगने की पृष्ठभूमि में यही विचार-धारा है।

सम्पत्तिदान-यज्ञ में 'सम्पत्ति' शब्द का क्या अर्थ है, यह जानने की आवश्यकता है। सम्पत्तिदान का अर्थ धनदान, अर्थदान या आयदान होता है। सम्पत्तिदान-यज्ञ में आय का षष्ठांश मांगा गया है। इस यज्ञ के द्वारा कोई धन-भंडार संग्रह करने का इरादा नहीं है। किस मनोभाव से सम्पत्ति-दान-यज्ञ में दान देना कर्तव्य है और उसका परिचालन किस पद्धति से होना चाहिए, यह समझाते हुए विनोबाजी ने कहा है "जो व्यक्ति नित्यजीवन के विचार को ग्रहण कर सम्पत्तिदान करेंगे, उन्हींकी सम्पत्ति का उपयोग हम करना चाहेंगे। किसीके द्वारा उत्साहित किये जाने पर सम्पत्तिदान नहीं करना चाहिए—चिन्तन-मनन के उपरान्त सम्पत्तिदान होना चाहिए। चालू वर्ष में व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही इसे सीमित रखने की बात मैंने सोची है। जो लोग सम्पत्तिदान को नित्य धर्मस्वरूप मानेंगे, उन्हींका दान स्थायी होगा।

यह सहज धर्म होना चाहिए। भार-स्वरूप इसे नही माना जाना चाहिए। हमारे शरीर का वजन यदि ठीक परिमाण में हो, तो वह बोझ-स्वरूप नही मालूम देता। इसी प्रकार सम्पत्तिदान-यज्ञ में सहज दान दिया जाना चाहिए। घर में बच्चा पैदा होने पर वह आहार तो ग्रहण करता ही है, पर वह बोझ-स्वरूप नही मालूम देता। गार्हस्थ्य जीवन का वह सर्वश्रेष्ठ अंग है—ऐसा माना जाता है। उससे सब लोग आनन्द अनुभव करते हैं। उसी प्रकार जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ में दान दें, उन्हें आनन्द का अनुभव होना चाहिए। इसीलिए सम्पत्तिदान-यज्ञ को व्यक्तिगत रूप से चलाने की आवश्यकता है—कम-से-कम इस वर्ष तक। आगामी वर्ष की बात बाद में सोची जायगी।" वे कहते हैं : "जो देंगे, उन्हें यह समझना पड़ेगा कि उन्हें जीवन भर देना है। एक बार दान देने पर सारा जीवन दान देना पड़ेगा। इस विचार को बहुत-से लोग हृदयंगम नही करते। किन्तु, वे लोग यह नही सोचते कि एक बार विवाह होता है और सारे जीवन को बन्धन में बाँध देता है।" सम्पत्तिदान पहले क्यो नही आरम्भ किया गया और अब भी उस पर जोर क्यो नही दिया जाता, इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने एक जगह कहा है : "गंगा से यमुना छोटी है, किन्तु यमुना गंगा में मिल गयी है। इसी प्रकार आज सम्पत्तिदान-यज्ञ यमुना-स्वरूप है। भूमि उत्पादन का जितना अनिवार्य साधन है, रुपया-पैसा उतना अनिवार्य साधन नही है। रुपया-पैसा तो मोहमय साधन है। रुपये-पैसे का कोई मूल्य नही है। वह तो नासिक के छापाखाने में तैयार होता है। किन्तु, कोई छापाखाना भूमि तैयार नही कर सकता। इसीलिए भूमि के साथ रुपये-पैसे की तुलना नही हो सकती। धनवानो के धन को हम मूल्यहीन कर दे सकते हैं। इसीलिए भूमि की तुलना में धन-दौलत बहुत गौण है। भूमि बुनियादी वस्तु है। यह सब सोचकर हमने भूमि-समस्या में पहले हाथ लगाया है। सम्पत्तिदान-यज्ञ पर अभी इसलिए अधिक जोर नही दिया जा रहा है कि वह एक ऐसा पौधा है, जो बहुत शीघ्र पैदा हो तो जायगा, पर शीघ्र ही सूख भी जायगा।"

विनोबाजी सम्पत्ति ग्रहण नही करते, फिर भी वे सम्पत्ति माँग रहे हैं। इन दोनो का सामञ्जस्य कैसे हो? विनोबाजी सम्पत्ति अपने हाथ मे नही लेंगे। वह दाता के ही पास रहेगी और दाता विनोबाजी के निर्देश के

अनुसार उसे खर्च कर विनोबाजी को हिसाब देगा। तत्सम्बन्धी निवेदन करते हुए विनोबाजी ने कहा था : "मैं सम्पत्ति अपने हाथ मे नहीं लूँगा और उसे रखने का दायित्व भी न लूँगा। इन सब बातो से मैं पूर्णत. मुक्त रहूँगा। जनसाधारण के उपकार के लिए जो अर्थ-सग्रह होता है, उसकी देख-रेख के लिए साधारणतः ट्रस्ट बना दिया जाता है। मैं वैसे ट्रस्ट के निर्माण की बात भी नही सोचता। विभिन्न उद्देश्यो से सगृहीत कोष और इस सम्पत्ति-दान-यज्ञ के बीच एक बड़ा अन्तर है। वह यह कि आय का एक अश प्रत्येक वर्ष इस यज्ञ में देना होगा। इसलिए मैंने यह निश्चय किया है कि दाता के पास ही यह धन रहेगा। दाता मेरे निर्देश के अनुसार यज्ञ मे अर्पित धन को व्यय करेंगे और उसका हिसाब प्रत्येक वर्ष मेरे पास भेजेंगे। इसका यह अर्थ है कि केवल धन का एक अश देकर ही दाता मुक्ति नही पा लेंगे, बल्कि व्यय के मामले में भी उन्हें अपनी बुद्धि खर्च करनी पडेगी। यह सही है कि दाताओ को मेरी इच्छा के अनुसार धन खर्च करना पडेगा, किन्तु वे मुझे यह बता सकते है कि धन को खर्च करने के बारे में उनकी क्या राय है।"

इस काम में दाता पर विश्वास रखकर उसके ऊपर सम्पूर्ण दायित्व छोड दिया गया है। समालोचकगण इस व्यवस्था में दोष देख सकते हैं, इसलिए विनोबाजी ने कहा है : "किन्तु, विश्वास ही धर्मप्रेरणा का आधार है। मनुष्य पर विश्वास करके उसकी सच्चाई के सम्बन्ध मे जितना निश्चिन्त हुआ जा सकता है, उतना कानून के बधन से नही। इसी दृष्टिकोण से मैंने सम्पत्ति-दान की यह पद्धति निश्चित की है।"

इस प्रसग में महात्मा गाधी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त की बात मन में आती है। महात्मा गाधी धनी लोगो से कहते थे "देखो धनिको, तुम्हारे हाथ में जो धन-सम्पत्ति सचित हुई है, उसके मालिक तुम नहीं हो। वह सबकी है। यह गरीबों की है। गरीबों का धन भगवान् ने तुम्हारे पास जमा कर रखा है। तुम गरीबो के ट्रस्टी हो। इसलिए तुम अपनी धन-सम्पत्ति गरीबो के हित में खर्च करो।" महात्मा गाधी का यह विश्वास था कि एक दिन धनी लोगो में सद्बुद्धि का उदय होगा और वे अपनी धन-सम्पत्ति को गरीबो के कल्याण के लिए खर्च करेंगे। यह सिद्धान्त महात्मा गाधी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त के रूप में प्रख्यात हुआ। इस सिद्धान्त में ही भूदान-यज्ञ और सम्पत्ति-दान-

यज्ञ का बीज निहित था। सम्पत्ति-दान-यज्ञ और भूदान-यज्ञ के द्वारा महात्मा गाधी का ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त प्रयोग में लाया जा रहा है। ट्रस्टी को कोई क्षतिपूर्ति देने का प्रश्न ही नही उठता। ट्रस्टियो को तो ट्रस्ट-सम्पत्ति का वितरण करना ही होगा। उसे अपने पास रखने से तो काम नहीं चलेगा। ट्रस्टी भी हमारे भाई हैं। उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिए भी कुछ चाहिए। इसीलिए भूदान-यज्ञ या सम्पत्तिदान-यज्ञ मे सम्पूर्ण भूमि या सम्पत्ति नही माँगी जाती। दरिद्रनारायण का ही हिस्सा माँगा जाता है। उस समय लोग ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का मजाक उडाते थे, आज उसकी सफलता लोग प्रत्यक्षत देखेगे। विनोबाजी 'ट्रस्टीशिप' शब्द का व्यवहार करने के पक्ष मे नही है। फिर भी सम्पत्तिदान यज्ञ में ट्रस्टीशिप की जो भावधारा विद्यमान है, उसका विश्लेषण और व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं "सम्पत्तिदान मे भूमिदान की तरह एक बार ही दान देने की बात नही है। उसमे प्रत्येक वर्ष आय का एक अश देना होगा। अतएव इसके लिए जीवन को निष्ठापूर्ण बनाने की आवश्यकता है। इसके लिए अत करण की निष्ठा का विकास होना चाहिए। जब भरत राम के दर्शन के लिए जा रहे थे, तब उनका अन्तर इस भाव से पूर्ण था कि कब राम से भेंट होगी किन्तु वे कुछ क्षणो के लिए रुके। राज्य के अधिकारियो को बुलाकर उन्होने कहा 'मैं राम के दर्शनार्थ जा रहा हूँ, इसलिए तब तक के लिए आप लोग राज्य का ठीक ढग से सचालन करे।' तुलसीदास ने लिखा है कि भरत ने अत्यन्त उदारचेता होन पर भी वैसा किया, क्योकि सारी सम्पत्ति राम की थी। इसीलिए उसका ठीक प्रबन्ध करना भरत का कर्तव्य था। इसी प्रकार गाधीजी कहते थे कि हमें अपनी सम्पत्ति का ट्रस्टी बनकर रहना चाहिए। ट्रस्टी आधुनिक चीज है। उसका बडा दुष्प्रयोग हुआ है। इसीलिए मैं ट्रस्टी शब्द का व्यवहार नही करता। किन्तु, गाधीजी ट्रस्टी शब्द का व्यवहार करते थे क्योकि वे कानून विशेषज्ञ थे। इसीलिए उस शब्द के प्रति उनका आकर्षण था। उतना आकर्षण मुझे नही है। मैं इस विचार को उपनिषद की भाषा मे प्रकाशित करना चाहता हूँ। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा'—जिसका भोग करना है, उसे त्याग कर ही भोग करना चाहिए। तुलसीदासजी ने भी कहा है कि 'सम्पति सब रघुवर कै आही।' अतएव एक पष्ठाश देना गौण चीज है। अपना सब-कुछ समाज

को देने की आवश्यकता है। अपने शरीर की आवश्यकता के लिए उसमें से केवल थोडा अश ग्रहण किया जा सकता है। किन्तु, अभी समाज मे इस प्रकार की व्यवस्था नही है और यह व्यवस्था शीघ्र ही स्थापित भी नही हो सकती। इसीलिए अभी षष्ठाश देना होगा और जो बाकी बच रहेगा, उसमें से भी कुछ देने की बात सोचनी होगी। षष्ठाश दान देने का उद्देश्य यही है कि जीवन-पर्यन्त वह निश्चित रूप से देना होगा। यदि उतना अश नही दिया जायगा, तो हम पापी माने जायँगे और हमारा जीवन भी पापमय हो जायगा। इसलिए सम्पत्तिदान देना कर्तव्य है, ऐसा समझना पड़ेगा।"

जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ में दान करना चाहते हैं, उन्हे चाहिए कि वे अपने परिवार के सभी लोगो के साथ परामर्श करके और इस सम्बन्ध मे सबको सतुष्ट रखते हुए प्रेमपूर्ण हृदय से दान करें। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "अभी यहाँ जो भाई लोग बैठे हैं, उनके अन्तर में यदि धर्म-भाव जाग्रत हुआ हो, तो वे अपने-अपने घर के सभी लोगो के साथ—माता, पत्नी एव बच्चो के साथ, मत्रणा करके सम्पत्तिदान कर सकते है। इस काम के लिए उनके परिवार के सभी लोगों के मन में आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उन्हें ऐसा लगना चाहिए कि मानो उन्होने मीठे आम खाये हैं और उनका मधुर-मधुर स्वाद पा रहे हैं। सम्पत्ति का षष्ठाश देने में उन्हें अत्यधिक आनन्द का अनुभव होना चाहिए। उनका हृदय नृत्य करता रहेगा। किसी प्रकार के दबाव में पड़कर देना या लज्जा अथवा भय के कारण देना उचित नही है, क्योकि सम्पूर्ण जीवन उन्हें पञ्चमाश या षष्ठाश देना पड़ेगा।"

भूदान-यज्ञ मे भूमि-दान लिया जाता है और वह भूमि भूमिहीनो को दी जाती है। भूमि कोई भोग्य वस्तु नही है। वह उत्पादन का साधन है, और मौलिक साधन है। उसमें हड्डी-तोड परिश्रम करने से भोग्य वस्तु उत्पन्न होती है। फिर दान में प्राप्त भूमि जो भूमिहीनो को दी जाती है, वह हर किसी भूमिहीन को नही दी जाती। जो भूमिहीन गरीब खेती करना जानता है और खेती करके जीविकोपार्जन करना चाहता है और जिसके पास जीविकोपार्जन का और कोई साधन नही है, केवल उसीको यह भूमि दी जाती है। भूमिदान यज्ञ में जो लोग धन देकर सहायता पहुँचाना चाहते हैं, उनसे नगद पैसा नहीं लिया जाता। उन्हें खेती के यत्र और सरजाम आदि

खरीदकर देने पडते है। इस प्रकार भूदान-यज्ञ का मूलभूत उद्देश्य है—उत्पादन का साधन उत्पादक के हाथ मे पहुँचाना, अर्थ की प्रतिष्ठा की समाप्ति का उपाय करना और उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा स्थापित करना। किन्तु सम्पत्तिदान-यज्ञ में ऐसा कोई क्रान्तिकारी उद्देश्य है, ऐसा सहसा दिखाई नही पडता। सम्पत्तिदान-यज्ञ में अर्थ-दान लिया जाता है, भले ही वह अर्थ दाता के ही हाथ में रह जाता है। अर्थ उत्पादन का साधन नही है। वह उपभोग्य वस्तुओं की खरीद का माध्यम है। इसके अतिरिक्त, एक बडे कारखाने का मालिक, जो श्रमिको का शोषण करके अर्थ का उपार्जन करता है, उसने अपनी आय का षष्ठाश सम्पत्तिदान-यज्ञ मे दान किया, किन्तु उसका श्रमिक-शोषण और कारखाना समान रूप से चलता रहा। ऐसा दान ग्रहण करने से वर्तमान अर्थ-व्यवस्था को बचा रखने के पक्ष में परोक्ष रूप से सहमति प्रकट की जाती है। किसी नर्तकी, वेश्या, मादक-द्रव्य-विक्रेता ने अपनी आय का षष्ठाश दान किया, किन्तु उन्होंने अपने उपार्जन का वह पथ नही छोड़ा, तो यहाँ भी उनके उपार्जन-पथ के बारे मे सहमति ही प्रकट की गयी। ऐसी अवस्था में विनोबाजी के इस नये आन्दोलन का क्या महत्त्व है? 'सर्वोदय' पत्र के सम्पादक श्री दादा धर्माधिकारी ने सम्पत्तिदान-यज्ञ के सम्बन्ध में अपने एक चिन्तनपूर्ण लेख मे यह प्रश्न उठाया है और इसका सुन्दर उत्तर भी दिया है। दान किये हुए न का व्यय विनोबाजी के निर्देश के अनुसार दाता को करना होगा, इसीमें सम्पत्तिदान-यज्ञ का क्रान्तिकारी तत्त्व निहित है। कारखाने का मालिक यदि दाता हो, तो विनोबाजी उसे निर्देश दे सकते है कि उस धन से कारखाने के मजदूरों के अधिकाधिक स्वास्थ्य और सास्कृतिक उन्नति की व्यवस्था करनी होगी। साथ-साथ वे यह उपदेश भी दे सकते हैं कि वह इस प्रकार चले कि जिससे शनै शनै वह अपना कारखाना विनोबाजी को अर्पित कर सके। किसी महाजन-दाता को वे यह निर्देश दे सकते है कि वह खेती के अथवा अन्य प्रकार के उत्पादन के सरजामो की खरीद के लिए उक्त धन उत्पादको को दान करे। इसके साथ ही विनोबाजी दाता से यह भी कह सकते है कि 'आपका यह उपार्जन-पथ पापमय है। इस प्रकार का उपार्जन क्रमश. बन्द करें।' इसी प्रकार किसी अनुत्पादक दाता को वे उत्पादन के सहायक कार्य में लगाकर अनुत्पादक व्यवसाय को समाप्त करने की प्रेरणा दे सकते

है। इस प्रकार विनोवाजी जब दान किये हुए पैसे के खर्च के लिए निर्देश देना आरम्भ करेंगे, तब इस नवीन आन्दोलन का उद्देश्य क्रमश. स्पष्ट होने लगेगा।

अपरिग्रह और अस्तेय के अनुसरण के बिना आर्थिक क्षेत्र में अहिंसात्मक क्रान्ति अर्थात् आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा सम्भव नही है। इसीलिए सम्पत्तिदान-यज्ञ की मूल विचार-धारा अपरिग्रह और अस्तेय की भावधारा पर प्रतिष्ठित है। उसकी व्याख्या करते हुए विनोवाजी कहते है : 'अस्तेय' और 'अपरिग्रह' दोनो के मिलने से अर्थ-शुचित्व पूर्ण होता है। इसके बिना व्यक्ति और समाज के जीवन मे धर्म की प्रतिष्ठा हो सकना सम्भव नही है। सत्य और अहिंसा तो मूल है ही, किन्तु आर्थिक क्षेत्र में इन दोनो का आविर्भाव केवल अस्तेय और अपरिग्रह के माध्यम से ही सम्भव है। और, आर्थिक क्षेत्र जीवन का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है। इसीलिए धर्मशास्त्र उसकी उपेक्षा नही कर सके। परन्तु उसके नियमन और नियोजन का दायित्व धर्म-विचार पर आ पडता है। इसीलिए मनु ने विशद भाव से कहा है 'य. अर्थशुचि स शुचि'। अर्थात् जिसके जीवन में आर्थिक पवित्रता है उसका जीवन पवित्र है।

"अस्तेय अर्थ-प्राप्ति की पद्धति का नियमन करता है और अपरिग्रह उसकी मात्रा का। अस्तेय बतलाता है कि प्रधानत शारीरिक श्रम द्वारा, अर्थात् उत्पादक श्रम द्वारा शरीर-निर्वाह होना चाहिए। शारीरिक श्रम किये बिना यदि हम अन्न ग्रहण करते है, तो एक विपत्ति की सृष्टि करते है। शारीरिक श्रम करने की इच्छा रखते हुए भी कोई व्यक्ति यदि किसी प्रकार का शारीरिक श्रम नही कर पाता है, तो उसे दूसरी और खूब कठोर परिश्रम करना होगा। तभी वह विपत्ति दूर होगी। वह परिश्रम इतना ही कठोर होगा, अर्थात् उसमें इतना ही अध्यवसाय भरा रहेगा कि उसकी तुलना में शारीरिक श्रम भी कम कष्टपूर्ण रहेगा, अर्थात् साधारण लोगो के लिए अस्तेय का पालन तभी सम्भव होगा, जब शरीर-क्षुधा रखनेवाले लोग शारीरिक श्रम करेंगे। आज ससार में जो अत्यधिक वैषम्य, दुख-कष्ट और पाप है, उसका कारण शारीरिक श्रम न करने की अभिलाषा है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर रहना चाहता है, उसे गुप्त अथवा प्रकट रूप से चोरी करनी पड़ती है।

"शारीरिक श्रम के द्वारा जो उत्पादन होगा, केवल उसका ही उपयोग करेंगा—यह नियम यदि हम मानकर चलें, तो उसके द्वारा अपरिग्रह पर्याप्त

मात्रा में प्रकट होगा। कारण, शारीरिक श्रम के द्वारा इतना अधिक उत्पादन नहीं हो सकता कि आदमी बहुत अधिक संग्रह करके रख सकता है। फिर भी अस्तेय से अलग अपरिग्रह के नियमन की आवश्यकता रह जाती है, क्योंकि यद्यपि शारीरिक श्रम के द्वारा उत्पादन 'बहुत अधिक' मात्रा में नहीं हो सकता तथापि उत्पादन 'अधिक' होना सम्भव है और, यदि उस अधिक उत्पादन का व्यवहार अपरिग्रह के द्वारा नहीं किया जायगा, तो विपत्ति सम्पूर्ण रूप से दूर नहीं हो सकेगी। बचपन से ही हमने अनेक लोगों का उपकार लिया है। उस उपकार-ऋण के परिशोध के लिए शारीरिक श्रम के मान्य मार्ग से हम जो उत्पादन करें, उसका एक अंश समाज को प्रदान करना हमारा कर्तव्य है। उसमें सम्यक् विभाजन का उद्देश्य निहित है। इसीलिए यद्यपि वह एक प्रकार की ऋण-मुक्ति है, तथापि उसमें दान का रूप है।"

सम्पत्तिदान-यज्ञ में आय का (अथवा व्यय का) षष्ठांश माँगा जाता है। तब जो पंच-षष्ठांश बच जाता है, क्या उसे छोड़ दिया जायगा? इसके उत्तर में विनोबाजी कहते हैं कि उसे छोड़ देने का प्रश्न ही नहीं उठता। दाताओं ने तो छह षष्ठांशों को ही अपना मान रखा था। एक षष्ठांश माँगकर उनकी इसी मान्यता को आघात पहुँचाया गया है। विचार को समझने के लिए उन्हें प्रेरणा दी जा रही है। भक्त कहते हैं कि जिन्होंने एक बार हरिनाम लिया है, वे मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रस्तुत हुए। जिन्होंने एक षष्ठांश समाज को आजीवन प्रदान करने का नियम एक जीवन-निष्ठा के रूप में स्वीकार किया है, उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति, अपना सारा जीवन, यहाँ तक कि अपना शरीर-निर्वाह भी समाज को अर्पित कर देने के पथ पर कदम बढ़ाया है। यही धर्मनीति है। आसक्त व्यक्ति को आसक्ति त्यागने की दीक्षा देने के उपरान्त धर्म धीरे-धीरे आसक्ति छुड़वाकर मोक्ष की ओर अग्रसर करा देता है। इस प्रकार भोग और मोक्ष के बीच धर्म पुल की तरह काम करता है। धर्मनीति की इस विचारधारा को हृदयंगम करने से एक षष्ठांश माँगने में अन्तर्निहित अर्थ समझा जा सकता है। इसकी व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है : "शरीर और आत्मा के बीच, अथवा व्यवहार और तत्त्व-विचार के बीच, अथवा वर्तमान स्थिति और भावी स्थिति के बीच धर्म पुल का काम करता है। पुल नदी के एक किनारे खड़ा नहीं किया जाता—वह

नदी के दोनों तटों पर खड़ा रहता है। भोग इस पार की, मोक्ष उस पार की और धर्म दोनों पार की चीज है। समाज की वर्तमान स्थिति में उसे आदर्शाभिमुखी करने के लिए जो विचार प्रस्तुत किया जायगा, वही धर्म-विचार होगा। वह विचार केवल परिशुद्ध तत्त्वज्ञान का स्वरूप ग्रहण नहीं करेगा, परिशुद्ध तत्त्वज्ञान तक पहुँचा देने के लिए भी वह वाहनस्वरूप होगा। पथ और घर के बीच जो पार्थक्य और सम्बन्ध है, धर्म और मोक्ष के बीच भी वही सम्बन्ध है।"

जो लोग सम्पत्तिदान-यज्ञ में दान देंगे, वे सम्पूर्ण जीवन देते रहेंगे। सारा जीवन आय का एक षष्ठांश या एक अष्टांश या उससे भी कम देते जाते रहने का संकल्प अनेक लोगों को कठिन मालूम पड़ सकता है। विनोबाजी उनसे कहते हैं : "किन्तु, मैं यह नहीं सोचते कि एक बार विवाह करके लोग अपने सम्पूर्ण जीवन को एक बंधन में आबद्ध कर देते हैं।" इस सम्बन्ध में उन्होंने बाद में जो कुछ कहा है, वह वास्तव में महती प्रेरणा देनेवाला है। उन्होंने कहा है "लोग मुझसे पूछते हैं : 'आजीवन दान देते रहना सम्भव है क्या?' मैं पूछता हूँ कि आजीवन भोजन करते रहना कैसे सम्भव है? आपने यह कठिन व्रत ग्रहण किया है कि जन्म से मृत्यु तक भोजन करते रहेंगे। आजीवन व्रत ग्रहण करना सहज बात है। वेद में कहा है : मरण न होने तक प्रतिज्ञापूर्वक साँस लेते रहोगे। श्वास-प्रश्वास का व्रत कठिन है। इस व्रत को ग्रहण करने की बात वेद ने इसी उद्देश्य से कही है कि श्वास-प्रश्वास के साथ-साथ राम-नाम लेना होगा, जिसमें वृथा श्वास ग्रहण न किया जाय। राम के काम में प्रत्येक क्षण लगाना परम आवश्यक है। इस प्रतिज्ञा का यही अर्थ है। हमारी आँखों ने आजीवन देखने का व्रत ग्रहण किया है। हमारे दोनों पैरों ने आजीवन चलते रहने का व्रत लिया है। वे व्रत उन्हें कठिन नहीं मालूम पड़ते, क्योंकि वे नैसर्गिक और स्वाभाविक हो गये हैं। इसी प्रकार त्याग का व्रत भी नैसर्गिक और स्वाभाविक है। घर-घर में माताएँ इस व्रत का पालन कर रही हैं। माँ सन्तान को कितना अधिक प्यार करती है। किन्तु, उसके इस धर्मभाव को घर तक ही सीमित न रखकर हम प्रसारित करना चाहते हैं। हम कहते हैं, 'माँ, तुम मूर्तिमती धर्म हो, तुम मूर्तिमती त्याग हो। तुम इतना त्याग कर रही हो, थोड़ा और त्याग

करो। जिसके पास खाने को कुछ नहीं है, उसके लिए कुछ त्याग करो।' त्याग का व्रत कठिन नहीं है। त्याग के बाद भोग अधिक रुचिकर हो जाता है।"

सम्पत्तिदान कौन करेगा ? बहुत अधिक धनी लोग भी दान करेंगे और बहुत गरीब लोग भी दान करेंगे। इस त्याग-धर्म का पालन करने का सुयोग सबके लिए सुलभ है। बालक-बालिकाएँ भी इस यज्ञ में भाग लेकर बचपन से ही त्यागधर्म में दीक्षित हो सकती हैं।

सम्पत्तिदान-यज्ञ में एक गम्भीर जीवन-विचार निहित है। वह गार्हस्थ्य-जीवन के सर्वश्रेष्ठ धर्म के रूप में माना जाता है। जो सम्पत्तिदान देंगे, उनके और उनके परिवार के सभी लोगों के हृदय में परमानंद का संचार होना चाहिए। इसीलिए प्रथम पर्याय में सम्पत्तिदान-यज्ञ को व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया है, जिसमें कि वह जीवन के निगूढ़ प्रदेश में प्रवेश करके धीरे-धीरे वृद्धि पा सके। इसी उद्देश्य से इसे आरम्भ में सार्वजनिक आन्दोलन की तरह व्यापक रूप प्रदान नहीं किया गया है। बिहार में भूदान-यज्ञ-आन्दोलन ने जब आशातीत प्रगति की, तब सन् १९५३ की शरत् ऋतु में विनोबाजी ने सम्पत्ति-दान-यज्ञ को सार्वजनिक रूप प्रदान कर सर्वसाधारण को इसमें दान देने के लिए कहा और बोधगया-सम्मेलन के समय से सम्पूर्ण देश में इसे विस्तृत रूप से चलाने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

सम्पत्तिदान-यज्ञ के लिए जन-साधारण से निवेदन करते हुए विनोबाजी ने लिखा है : "मैं विश्वास करता हूँ कि यदि भक्तजन विश्वास और शुभेच्छा लेकर इस यज्ञ में आहुति प्रदान करेंगे, तो इस कल्पना में जो नवीन जीवन-विचार वर्तमान है, वह देश में विकास पायेगा और साम्ययोग की ओर समाज सहज ही अग्रसर होगा। इसी उद्देश्य से मैं सज्जन और सद्विचार-सम्पन्न लोगों के मनन और चिन्तन के लिए इस विचारधारा को उनके सम्मुख प्रस्तुत कर रहा हूँ।"

जिन लोगों से भूमिदान और सम्पत्तिदान माँगा जाता है, उनके लिए विनोबाजी ने ऋग्वेद का एक मंत्र उद्धृत करते हुए कहा है :

"अदित्सन्तं चिन् आघृणे।
पूषन् दानाय चोदय।
पणेश् चित् वि म्रदा मनः।"

"अन्तर से मानसिक कष्ट, बाहर से परिस्थिति का कष्ट—इन दोनों प्रकार के कष्टों में शुद्धि प्रदान करनेवाले हे देव ! जो लोग आज दान नहीं देना चाहते, उनके मन में दान देने की प्रेरणा भरो। कृपण के मन को भी मृदुल बना दो।"

श्रमदान-यज्ञ

सम्पत्तिदान-यज्ञ के बाद विनोबाजी ने श्रमदान-यज्ञ को जन्म दिया। सम्पत्तिदान की ही तरह श्रमदान में भी गम्भीर अर्थ निहित है। जिसके पास जमीन नहीं है, धन भी नहीं है, उसके पास देने लायक क्या कुछ भी नहीं है? उसके पास क्या कोई सम्पत्ति ही नहीं है? क्या वह इतना गरीब, इतना कंगाल है? इसके उत्तर में विनोबाजी कहते हैं कि भूमिवालों या धनवानों की दान देने की क्षमता सीमित है, किन्तु जिसके पास जमीन या धन तो नहीं है, परन्तु शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य है, उसकी दान देने की क्षमता असीम है। जमीन या धन का तो एक ही बार में दान कर दिया जा सकता है। उसके बाद तो उसके दाताओं के पास देने को कुछ भी शेष रह नहीं जायगा, किन्तु जिसके पास ईश्वर का दिया हुआ स्वस्थ और सबल शरीर है, उसकी दान करने की शक्ति कभी भी समाप्त नहीं होती। आजीवन वह प्रतिदिन दान कर सकता है। विनोबाजी कहते हैं : "उसके समान दान और कौन कर सकता है? भूदान-यज्ञ में भूमि तो मिले, किन्तु भूमि पर परिश्रम न किया जाय, तो वह आबादी-योग्य नहीं होगी। ग्राम के चरित्रवान् और सम्मानित लोग एक साथ जुलूस निकालकर भूमि कोड़ने जायँगे। सिर्फ यही नहीं, भूमि का वितरण किया जायगा। जिसे भूमि दी जायगी, वह किसी आकस्मिक कारण से अच्छी तरह भूमि आबाद न कर पाये, तो गाँव के चरित्रवान् और सेवा-परायण प्रभावशाली व्यक्ति साथ मिलकर इस जमीन को आबाद करने के काम में सहायता करने जायँगे। इसके फलस्वरूप सभी ग्रामों में एक ऐसे वातावरण की सृष्टि होगी कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति श्रमदान के काम में योग देने में गौरव का अनुभव करेगा। लोग समझ पायेंगे कि यह केवल राम की जमीन लेकर श्याम को देने तक ही सीमित नहीं है, क्योंकि जो जमीन दी जा रही है, उसके सम्बन्ध में ग्रामवासी चिन्तन और मनन

करते रहेंगे। इस प्रकार श्रम की विलुप्त मर्यादा के पुन प्रतिष्ठित होने का मार्ग सुगम हो जायगा।" यही कारण है कि विनोबाजी शरीर से दुर्बल और अस्वस्थ रहते हुए १०-१२ मील की पैदल यात्रा करके आने पर भी थकाति को भूलकर सदल्बल एक घटा कुदाल चलाते हैं और श्रमदान-यज्ञ करके समाज को श्रम की मर्यादा की प्रतिष्ठापना के लिए भारी शिक्षा प्रदान करते हैं।

प्रेम और बुद्धिदान-यज्ञ

मनुष्य की पांच इन्द्रियां हैं। इस प्रकार मनुष्य पांच प्रकार के धन का अधिकारी है जैसे हृदय मस्तिष्क, देह, स्थावर सम्पत्ति और अस्थावर सम्पत्ति अर्थात् प्रेम बुद्धि और विचक्षणता, शारीरिक श्रम, भूमि और अर्थ। एक ही व्यक्ति इन पाँचो धनो का अधिकारी हो, यह जरूरी नहीं है। किन्तु, ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं है, जिसके पास इन पांच में से एक प्रकार का भी धन न हो। गरीब और सब प्रकार से अक्षम व्यक्ति के पास भी हृदय तो रहेगा। इसीलिए विनोबाजी ने पांच प्रकार के यज्ञ करने का आह्वान किया है। भूदान, सम्पत्तिदान और श्रमदान की बात पहले कही जा चुकी है। प्रेमदान और बुद्धिदान की चर्चा यहां की जा रही है। जिसके पास और कुछ नहीं है वह अपने पडोसी को हृदय से अपने समान मानेगा और उसके प्रति प्रेमभाव रखेगा। अपने आत्मज्ञान का विकास ही उसकी साधना होगी। यह होगा प्रेमदान-यज्ञ। जिसके पास विद्या, बुद्धि और विचक्षणता है, वह अपना कुछ समय अपनी विद्या और बुद्धि को निःस्वार्थ सेवा के काम में लगाकर बुद्धिदान-यज्ञ का अनुष्ठान करेगा। विचारकगण आपस में विचार-विमर्श करेंगे। कानूनपेशा लोग किसी प्रकार का पारिश्रमिक न लेकर शोषित और पीडित गरीबो का पक्ष ग्रहण कर मुकदमा लडेंगे। चिकित्सक मुफ्त में गरीबो की चिकित्सा करेंगे। शिक्षक और छात्र अपने अवकाश के समय गरीबो को शिक्षा-दान करेंगे। हिसाबी लोग वेतन लिये बिना किसी दातव्य संस्था में हिसाब का काम कर देंगे आदि।

इनके अतिरिक्त सेवको के लिए एक महान् यज्ञ का आविर्भाव हुआ है और वह है—जीवन-दान।

जीवन-दान

क्रान्ति का एक लक्षण यह है कि वह आरम्भ तो होती है एक विषय लेकर, परन्तु शीघ्र ही वह जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे फैल जाती है और अन्त मे सर्वग्रासी बन जाती है। जीवन के एक क्षेत्र मे आरम्भ होकर उसी तक सीमित रहना क्रान्ति नही है। आचार्य कृपालानी ने बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन मे भूदान-यज्ञ की विप्लवी प्रकृति के बारे में बोलते हुए क्रान्ति के इस लक्षण की ओर सबकी दृष्टि आकर्षित की। उन्होने और भी कहा कि बुद्धदेव ने निर्वाण के एक पथ का आविष्कार किया। वह थी तो धार्मिक बात, पर थी क्रान्तिकारी। इसीलिए उसका प्रसार जीवन के अन्यान्य क्षेत्रो मे हुआ। नवीन राज्य-पद्धति शुरू हुई, नवीन समाज-व्यवस्था की रचना हुई, नवीन सस्कृति का सृजन हुआ। महात्मा गाधी ने राजनीतिक क्षेत्र में अपना काम शुरू किया—देश को विदेशी शासन से मुक्त करना चाहा, किन्तु क्रमश उन्होने उसके आधार पर देश को सार्वजनिक मुक्ति की राह दिखाई। उसी प्रकार भूमि-समस्या के समाधान के लिए भूदान-यज्ञ आरम्भ हुआ। अब उसके आधार पर देश के कायापलट का काम आरम्भ हुआ है। सर्वोदय की समस्त दिशाएँ उसके रग में रँग उठी है। भूमि का स्वामित्व व्यक्तिगत नहीं हो सकता। भूदान-यज्ञ की विचारधारा की पृष्ठभूमि है आध्यात्मिकता—आत्मा की एकता। ससार में जो कुछ है, सब भगवान् का है। भूमि के मालिक हम नही, भगवान् है। उसी प्रकार अपनी बुद्धि के भी मालिक हम नही है। हम अपनी सम्पत्ति धन, अर्थ आदि के भी मालिक नही है। अपने शरीर के भी मालिक हम नही है। हमारे पास भूमि, धन-सम्पत्ति, बुद्धि, शरीर, जो कुछ है, सब हमे समाज-सेवा के लिए अर्पित कर देना चाहिए। इसीलिए भूदान-यज्ञ की विप्लवी धारा प्रवाहित हो रही है। यह परम अभीष्ट-साधन सम्पत्तिदान, श्रमदान, बुद्धिदान आदि तक प्रसारित हो गया। यहीं तक वह सीमित न रहा। हमारा जीवन क्या हमारा है? हमारा जीवन क्या क्षुद्र स्वार्थो मे ही समाप्त हो जायगा? जीवन भी तो हमारा नहीं है—वह भगवान् का है। वह भगवान् का दान है। अत उसके काम में, समाज-सेवा के काम मे उसे उत्सर्ग किया जाना चाहिए। इस प्रकार यज्ञ

सर्वग्रासी बन गया। जीवन-दान तक उसकी परिणति होकर ही रही। बोधगया सर्वोदय-सम्मेलन का एक महान् अवदान है—जीवन-दान। किन्तु, विनोबाजी ने इस जीवनदान का आभास तब से कई महीने पहले अपने एक प्रार्थना प्रवचन में दिया था। उन्होंने कहा था "आज नवीन मनुष्य, नवीन समाज तैयार करना होगा। इसीलिए भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान आदि आन्दोलन शुरू किये गये हैं। इस काम के लिए ऐसी विचारधारा उत्पन्न करनी होगी, जिससे लोग जीवन समर्पित करने की ओर अग्रसर हों।"

सर्वांगीण क्रान्ति का क्षेत्र तैयार हो गया है। देश के वातावरण में एक विप्लवी प्रवाह सचारित हो उठा है। किन्तु, इस परम अभीष्ट की सिद्धि के लिए प्राणोत्सर्ग करनेवाले साधक पर्याप्त सख्या में कहाँ उपलब्ध है? सेवक कहाँ है? बोधगया-सम्मेलन के दूसरे दिन के अधिवेशन में श्री जयप्रकाश नारायणजी भाषण करने खडे हुए। वे क्षुण्ण थे, विषण्ण थे। यदि एकनिष्ठ कार्यकर्ता यथेष्ट सख्या मे होते तो बिहार में ३२ लाख एकड भूमि पहले ही इकट्ठी हो जाती। सन्त विनोबा को इतने दिनो तक बिहार में रखकर कष्ट नही देना पडता। आन्दोलन मे तीव्रता लाने के लिए प्रेरणा देने के उद्देश्य से उन्होंने कहा कि 'आज का युग इस आन्दोलन के लिए अधिक समय नही देगा। अहिंसात्मक क्रान्ति होगी, इसके लिए इतिहास रुककर प्रतीक्षा नही करेगा।' उन्होने उसके पिछले साल छात्रो से एक वर्ष का समय इस आन्दोलन में देने के लिए अपील की थी। 'किन्तु अब वर्ष की बात करने से काम नही चलेगा। अब तो जीवन अर्पित करने का समय आ गया है।' इसके बाद उन्होंने तुमुल हर्षध्वनि के बीच श्रद्धा और विनय के साथ अपने जीवन-दान की घोषणा की। सारे सम्मेलन-क्षेत्र में एक अपूर्व गम्भीरता छा गयी। विनोबाजी का हृदय पिघल गया। उन्होने धीर, स्थिर और गम्भीर भाव से बोलना आरम्भ किया। उन्होंने कहा "हमने अभी एक भाषण सुना। उसमें हृदय की बात थी। इसे सुनकर मेरे मन में रुक्मिणी के पत्र की बात आयी। रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक पत्र लिखा था। आजकल पत्र-साहित्य को साहित्य का अग माना जाता है। रुक्मिणी के पत्र को पत्र-साहित्य में प्रथम स्थान प्राप्त है। इस पत्र को शुकयोगी ने कवितावद्ध किया था। पत्र में रुक्मिणी ने भगवान् श्रीकृष्ण को लिखा था : 'मुझे सौ बार जीवन ग्रहण

करना पडे तो करूँगी, प्राण-त्याग करूँगी, शरीर को कृश से कृशतर करूँगी, किन्तु फिर भी तुम्हींको वरण करूँगी।' ऐसे शुभ संकल्प की बात सुनने से हृदय आनन्दित होता है। मैं सोचता हूँ कि इस यज्ञ के सफल होने से हमारा जीवन सफल होगा।" यही इसकी समाप्ति नहीं हो गयी, समाप्ति की बात भी नहीं है। उस समय से बोधगया-सम्मेलन का वातावरण बदल गया। सबका हृदय शीतल हो गया। दूसरे दिन सवेरे से ही विनोबाजी सोचने लगे कि इस सम्बन्ध मे उन्हें कुछ करना चाहिए। अत उन्होंने जयप्रकाश नारायणजी को एक पत्र लिख दिया : "भूदान-यज्ञमूलक, ग्रामोद्योग प्रधान, अहिंसक क्रान्ति के लिए मेरा जीवन-समर्पण।" इसके बाद सम्मेलन के प्रात कालीन अधिवेशन के प्रारम्भ में ही विनोबाजी का उक्त पत्र पढ़ा गया। इसके साथ-साथ नेताओं से लेकर गाँव के साधारण कार्यकर्ताओं तक ने एक-एक करके अपने जीवन-दान के संकल्प की लिखित रूप में घोषणा करनी आरम्भ की। इसी काम में प्रात कालीन अधिवेशन का पूरे तीन घंटे का समय समाप्त हो गया। जीवन-दानियों की संख्या साढ़े तीन सौ से भी ऊपर हो गयी। इसके बाद भी जयप्रकाश नारायणजी के पास जीवन-दान के संकल्प आते रहे। प्रश्न है कि इस जीवन-दान का अर्थ क्या है? शरीर, वाणी, मन और बुद्धि, सबको इस काम के लिए अर्पित करना। यह ठीक है, किन्तु क्या यही इतनी बात है? जीवन-दानियों में ऐसे लोग भी हो सकते हैं—हैं भी, जिन्होंने पहले ही अपना जीवन-दान कर दिया था। उनके पुन जीवनदान करने का क्या तात्पर्य है? विनोबाजी ने सम्मेलन के अन्त मे इसे स्पष्ट करके समझाया। जीवनदान का तात्पर्य क्या है, इसका आभास उसने पिछले दिन की प्रार्थना-सभा में ही अपनी स्वाभाविक भंगिमा के साथ कृपालानीजी ने दिया था। विनोबाजी ने उसका उल्लेख करते हुए कहा . 'जिस बात का आभास कृपालानीजी ने कल की प्रार्थना-सभा में दिया, उसमें एक गम्भीर चीज है। कृपालानीजी एक विशिष्ट प्रकृति के मनुष्य हैं और उनके बोलने का ढंग भी विशिष्ट है। बोलते समय उन्होंने उपनिषद् की ही बात कही है किन्तु सहज ही यह नहीं मालूम पडता कि उन्होंने क्या कहा? लोगों के मन में होता है कि वे उपहास या व्यंग्य कर रहे हैं। उन्होंने अत्यन्त सहज भाव से, और मैं कहूँगा कि अहिंसात्मक ढंग से यह समझाया है कि भादया,

जीवन-दान तो कर रहे हैं, किन्तु कोई गदी चीज तो दान नहीं कर रहे हैं ? यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। शुद्ध वस्तु ही अर्पित करनी चाहिए। जीवनदान का विचार अच्छा है, किन्तु जो लोग अपने मन में जीवन-दान का सकल्प करें, उन्हें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे अशुद्धता का दान न करें। जीवन-दान के सकल्प का अर्थ है जीवन-शुद्धि—इस बात को उन्होंने अत्यन्त रुचिकर ढग से हमारे सामने रखा है। वह हँसी-मजाक नही था। आज जो आपने मेरे सामने और अपने सामने एक या अनेक को साक्षी रखकर जीवन-अर्पण करने का सकल्प लिया है, उसके साथ-साथ जीवन-शुद्धि की साधना भी आपको करनी चाहिए। हम सार्वजनिक काम कर रहे हैं, वह भी भूदान-यज्ञ की तरह बुनियादी काम है। उसके द्वारा देश का स्वरूप बदलेगा। ऐसे काम के लिए यदि जीवन-दान किया जाय, तो चित्त-शुद्धि के लिए साधारण से अधिक प्रयत्न किया जाना चाहिए।"

इसके कई महीने बाद बिहार में जीवनदान-शिविर का उद्घाटन करते समय विनोबाजी ने बतलाया कि जीवनदान और भी गम्भीर अर्थपूर्ण है और इसलिए जीवनदानी को अधिक ऊँचे आध्यात्मिक आदर्श का अनुसरण कर चलना होगा। हम कौन हैं ? सारे ससार का सचालन कौन कर रहा है ? ससार सचालन की योजना किसकी है और वह क्या है ? क्या मनुष्य इस योजना में भाग ले सकता है ? ईश्वर ही सम्पूर्ण ससार का सचालन कर रहा है। सब उसीकी योजना है। हम लोग कुछ भी नहीं हैं। मनुष्य तुच्छ है। ईश्वर यदि अपने काम के लिए किसीको यत्र रूप में चुन लेता है तो उसका कुछ मूल्य हो जाता है। केवल तभी मनुष्य उसकी योजना में हिस्सा ले सकता है। अन्यथा मनुष्य तुच्छ रह जाता है। क्या करने से या कैसा बनने से मनुष्य भगवान् के हाथ का यत्र बनने योग्य होता है ? बीज अपने को नष्ट कर देता है तभी वृक्ष उत्पन्न होता है। बीज का अस्तित्व रहने तक वृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता। उसी प्रकार मनुष्य अपने 'स्वत्व' को नष्ट कर जब तक नवजीवन प्राप्त नहीं करेगा, तब तक ईश्वर की योजना में भागीदार होने के योग्य नहीं होगा और ईश्वर उसे ग्रहण नहीं करेगा। इस सम्बन्ध में विस्तृत व्याख्या करते हुए विनोबाजी कहते हैं 'यदि ईश्वर की योजना में योगदान करना है तो बीज की तरह अपने को समाप्त करना होगा। बीज के नष्ट

होने पर ही वृक्ष जन्म लेगा। इसीलिए बौद्ध लोग यह सिद्धान्त कहते हैं कि एक का विनाश होने पर एक अस्तित्व का जन्म होता है। यदि हम अपने रूप को बचाये रखेंगे, तो ईश्वर के काम के उपयुक्त नहीं होंगे। परन्तु लोगों को प्राय खाली नहीं देखा जाता। उनके 'अहम्' ने चारों ओर कल्पना-जाल, कर्त्तव्य-क्षेत्र और ममत्व घिरे रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति उन सबको कायम रखते हुए ईश्वर की योजना में योगदान करना चाहता है, तो ईश्वर कहता है कि तूने मेरे लिए जगह खाली नहीं छोड़ी है। यदि तू खाली हो जायगा, तभी न मेरे लिए स्थान बनेगा। यह हुआ जीवनदानी का स्वरूप। जो खाली हो गये हैं, जिन्होंने अपने को शून्य बना लिया है, जिन्होंने अपनी जगह छोड़ दी है, केवल वे ही जीवनदानी हो सकते हैं। जो शून्य नहीं बने हैं, उनमें उनका 'स्वत्व' ही चल सकता है, ईश्वर का काम नहीं चल सकता। तुलसीदासजी कहते हैं बाबा, 'अपने करत मेरी घनी घटी भई' अर्थात् मेरी ही करनी से मेरी इज्जत नष्ट हुई है। इसलिए अब से आप ही कीजियेगा, मैं नहीं करूँगा। मेरे द्वारा काम करा लीजियेगा, मैं शून्य हो गया हूँ। जब मन इस अवस्था को प्राप्त हो जाता है, तब मनुष्य जीवनदानी बनता है। गीता में भगवान् ने अर्जुन से कहा 'यथेच्छसि तथा कुरु' अर्थात् तेरी जैसी इच्छा हो, वैसा कर। यह बात कहकर भगवान् ने अर्जुन की परीक्षा लेनी चाही कि अर्जुन के पास इच्छा नाम की कोई चीज बची है अथवा नहीं। यदि अर्जुन कहते कि 'मेरी यह इच्छा है', तो भगवान् कहते कि 'तुम अयोग्य हो, तुम मेरे योग्य नहीं हो।' अर्जुन ने कहा 'मेरी क्या इच्छा हो सकती है?' 'नष्टो मोह'—मेरा मोह दूर हो गया है। इसलिए 'करिष्ये वचन तव', अर्थात् तेरी ही आज्ञा का पालन करूँगा। गीता-प्रवचन के अन्त में दादू के एक वचन का उल्लेख किया गया है। बकरी 'मे-मे' (मैं-मैं) करके बोलती है, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद जब उसके शरीर के अश-विशेष से तांत तैयार करके पिजन में लगायी जाती है, तब उससे 'तू ही-तू ही (तुम्ही-तुम्ही)' की आवाज निकलती है। अहकार का अन्त होने पर 'तू-तू' शुरू होता है। तभी भगवान् उस व्यक्ति से अपना काम कराते हैं।"

यह ससार एक रगमच है। यहाँ एक नाटक का अभिनय चल रहा है। प्रत्येक मनुष्य अभिनेता है। अभिनय करते समय यदि अभिनेता यह

सोचता रहे कि वह वास्तव में फलाँ व्यक्ति है, तो उसका अभिनय सफल नहीं होगा। उसी प्रकार भगवान् का काम करते समय यदि हम अपने स्वत्व को याद रखेंगे, तो भगवान् का काम नहीं कर सकेंगे। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं : "विनोबा यदि कल हरिश्चन्द्र की भूमिका में अभिनय करेगा, तो उसे उस समय यह नहीं सोचना पड़ेगा कि वह विनोबा है।"

मनुष्य अन्ततः अपने अहंकार का विसर्जन कर देने पर ही जीवनदानी माना जायगा। इसका चरम प्रमाण तो जीवन रहने तक नहीं मिलेगा। मृत्यु के बाद इसका निर्णय होगा कि किसने अपना जीवन अर्पित किया था और किसने नहीं। इसीलिए 'फलाँ व्यक्ति जीवनदानी है'—ऐसा नहीं कहा जा सकता। 'फलाँ व्यक्ति जीवनदानी है'—यह बात केवल अन्तर्यामी कह सकते हैं। केवल मृत्यु के बाद ही यह कहा जा सकता है कि फलाँ व्यक्ति जीवनदानी था। यह बात समझाकर विनोबाजी कहते हैं . "जो कहेंगे कि 'मैं जीवनदानी हूँ', उनका 'हूँ' खतम होगा और 'मैं' रह जायगा। इसीलिए यह कहना ठीक नहीं है कि 'मैं जीवनदानी हूँ'। जीवनदानियों की सभा स्वर्ग में हो सकती है। पृथ्वी पर हम जैसे सामान्य मनुष्यों की ही सभा हो सकती है। जीवनदानियों का सम्मेलन स्वर्ग में होगा—मृत्यु के बाद, पहले नहीं।"

मनुष्य के पहले के चरित्र को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि अमुक व्यक्ति जीवनदान का सकल्प लेकर जीवनदानी के उपयुक्त स्थिति प्राप्त कर सकेगा, अथवा नहीं? ऐसा हो सकता है कि सात्त्विक प्रकृति का भी कोई व्यक्ति जीवनदान करके अन्त तक 'अहम्' को न छोड़ सके और जीवनदानी की सज्ञा के योग्य साबित न हो सके। इसके विपरीत यह भी सम्भव है कि राजसी अथवा तामसी प्रकृति का कोई व्यक्ति श्रद्धापूर्वक जीवनदान का सकल्प लेने के बाद अपने जीवन में ऐसा परिवर्तन ले आये कि उसका आध्यात्मिक दृष्टि से पुनर्जन्म हो जाय और वह अपने को समाप्त कर अपने को ईश्वर के हाथ में पूर्णतः समर्पित करके वास्तव में जीवनदानी हो जाय। अतएव जीवनदानियों में जो लोग राजसी या तामसी प्रकृतिवाले प्रतीत हों, उन्हें छोड़ देने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। विनोबाजी कहते हैं · "किसीको भी छोड़ देनेवाला मैं कौन? मृत्यु के बाद, मैं ही जीवनदानी था या नहीं, इसका विचार होगा और मुझे कौन स्थान मिलना चाहिए, इसका

निर्णय होगा।" अतएव जिन्होंने यह घोषणा की है कि वे जीवनदानी हैं, उन्हें जीवनदानी मान लेना ही उचित है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं : "हम लोग कथन को ही सत्य मान लेते हैं। जन-गणना के समय कौन हिन्दू है—कौन मुसलमान है, यह लिखा जाता है। मुँह से जो व्यक्ति जो कहता है, उसे सच मानकर लिख लिया जाता है। इस सम्बन्ध में शास्त्र का प्रमाण नहीं माँगा जाता। लोग कहते हैं : मैं जानता हूँ कि अमुक कैसा व्यक्ति है; उसने बेकार ही नाम दिया है। यह तो ऐसा लगता है, जैसे हम मनुष्य के अन्तर्यामी हैं।" लकड़ी के जल जाने पर यह बात समझ में नहीं आती कि वह किसकी लकड़ी थी। इसीलिए आज कोई किसी भी प्रकृति का क्यों न हो, यदि जीवनदान की घोषणा करने के बाद अपने को जलाकर राख कर दे अर्थात् अपने को ईश्वर के हाथों में अर्पित कर दे, तो उस अवस्था में यह नहीं मालूम हो सकेगा (और यह जानने की आवश्यकता भी नहीं रह जाती) कि वह व्यक्ति पहले किस प्रकृति का था? यह बात समझाते हुए विनोबाजी कहते हैं : "लकड़ी में अग्नि का प्रयोग किया गया। लकड़ी जलकर अंगारे में परिणत हो गयी। तब वह बबूल या आम की लकड़ी नहीं रह जाती। उसे देखकर यदि कोई बता सके कि वह अमुक वृक्ष की लकड़ी थी, तब यह मानना पड़ेगा कि लकड़ी पूरी तरह जली नहीं। भीतर की लकड़ी को अब भी जलकर राख होना बाकी है।"

कुछ लोग कहते हैं कि जिन लोगों ने जीवन-दान किया है, उनकी आजीविका की क्या व्यवस्था होगी? इसके उत्तर में विनोबाजी कहते हैं : "इसका उत्तर यही है कि जो विश्वम्भर है, वही यह व्यवस्था करेंगे। 'मां़मी विश्वम्भरो देव स भक्तान् किं उपेक्षते?'—ईश्वर अपने भक्त की उपेक्षा नहीं करेंगे। वे विश्वम्भर हैं, यह बात कभी भी गलत प्रमाणित नहीं हुई है। यदि जीवनदानी लोग भक्त हों, तो विश्वम्भर उनकी चिन्ता करेंगे। अंग्रेजी भाषा के अनुसार हमारा यह काम 'सर्विस' नहीं है, यह परिशुद्ध सेवा है। अतएव आजीविका की व्यवस्था के लिए किसी प्रकार की इसमें गारण्टी नहीं है। शिक्षा-दान की व्यवस्था की जा सकती है; किन्तु वह भी होगी ही, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। काम के माध्यम से उन्हें शिक्षा मिलेगी। जीवनदानी लोगों की मित्र-मंडली काफी बड़ी है। इस मित्र-मंडली

के द्वारा उनके लिए कुछ व्यवस्था हो जा सकती है। यह मित्र-मंडली है—विशाल जनता। अतएव जीवनदानियों के भरण-पोषण के लिए कुछ व्यवस्था करनी होगी और इस बारे में विचार करना होगा—ऐसा मैं नहीं सोचता। भगवान् के हाथ में हमने अपना जीवन समर्पित किया है। वे ही हमारे एकमात्र आधार हैं—यही विशुद्ध भक्तिमार्ग है। पहले ही मैंने कह दिया है कि यदि अहंकार शेष रह जायगा, तो जीवनदान का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। भक्ति का संकल्प ग्रहण किया गया है। भक्ति को प्राप्त होने पर जिसकी जितनी शक्ति है, वैसा काम होगा। काम करते-करते शक्ति बढ़ेगी। इसी प्रकार युक्ति का भी विकास होगा। जिन लोगों ने जीवनदान किया है, उनकी शक्ति और युक्ति कम रह सकती है, किन्तु उनकी भक्ति कम नहीं होनी चाहिए।"

जिन लोगों ने जीवन-दान किया है, उनसे कैसे काम कराया जाय—यह एक समस्या है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "जिन्होंने जीवन-दान दिया है, उन्होंने कहा है कि वे उसी क्षण से इस काम में लग गये हैं—यह बात ध्यान में रखनी होगी। अतएव यदि मुझसे कोई परामर्श माँगेगा, तो मैं निश्चय ही परामर्श दूँगा। यदि कोई सहायता माँगेगा, तो सहायता दूँगा। जिन्होंने जीवनदान किया है, उन्होंने किसी व्यक्ति के हाथ में अपना जीवन अर्पित नहीं किया है।" अतएव उनका निर्देशक कोई नहीं है और न रहेगा। विनोबाजी कहते हैं कि वे लोग भेड़ों के झुण्ड नहीं—वे एक-एक बाघ हैं। वे अपनी शक्ति से काम करेंगे। उनके लिए किसी गड़ेरिये की आवश्यकता नहीं होगी। जिन लोगों ने जीवनदान किया है, वे आपस में परामर्श कर लेंगे। उनके बीच परस्पर उपदेशों और परामर्शों का आदान-प्रदान होगा। विनोबाजी कहते हैं "यह भक्तों का एक लक्षण है। 'बोधयन्ति परस्परम्।' ज्ञान देने के लिए कोई धर्माधिकारी नहीं रहेंगे। वे एक-दूसरे को उपदेश देंगे, परामर्श देंगे।"

जीवनदान केवल बड़ी उम्र के लोग करें, ऐसा नहीं है। बालक-बालिकाएँ भी जीवनदान कर सकती हैं।

विनोबाजी आगे कहते हैं "जीवनदान का अर्थ है अंतिम प्रयास। यह अन्तिम कार्य है। जिन्होंने जीवनदान किया है, वे अखंड यात्री बन गये हैं।

वे केवल आगे की ओर बढते जायेंगे, कभी भी पीछे नही मुडेंगे। इस अन्तिम काम में किसीके लिए कोई प्रतीक्षा नही करेगा। किसीके कारण कोई पीछे नही रहेगा। चलते चलते जो गिर जायेंगे, वे गिरे ही रहें। चलते-चलते जो रुक जायेंगे, वे रुके ही रहेंगे।•किसीके लिए कोई प्रतीक्षा नही करेगा।" इस सिलसिले मे वे पाण्डवो के स्वर्गारोहण की कथा का स्मरण दिलाते हैं। पाँचो पाण्डव और उनके साथ द्रौपदी चलने लगी। भीम गिर गये और धर्मराज से बोले 'सहायता कीजिये'। धर्मराज ने कहा 'भाई, उठ खडे हो, तब कुछ सहायता की जा सकती है'। वे भीम के लिए रुके नही। एक-एक करके अन्य सभी इसी प्रकार गिर गये। स्वर्ग के द्वार पर उनका केवल एक साथी रहा। वह था उनका कुत्ता। उसे छोडकर वे स्वर्ग में प्रवेश करने को तैयार नही हुए। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी आगे कहते हैं : "इस कार्य में सभी मुक्त हैं। मुक्त रहकर 'सामने केवल यही एक काम है' ऐसा सोचकर उसमे पिल पडना होगा। ऐसा विचार हृदय मे लाने से काम सरल हो जायगा और इस काम में किसी प्रकार के दुष्परिणाम की सम्भावना नही रह जायगी। प्रत्येक की परीक्षा होगी। जो रुक जायगा, वह रुक जायगा। जो नही रुकेगा, वह नही रुकेगा। जो हमारे साथ चलना चाहेगा, उसके साथ हम हैं। जो लोग हमारा साथ त्यागना चाहेंगे, उन्हें वैसा करने की स्वतन्त्रता होगी और हमें भी आगे बढ जाने का अधिकार होगा।"

बोधगया में जीवनदान की जो लहर उठी थी, वह मद नही हुई है। अविरल गति से जीवनदान का स्रोत बहता जा रहा है। सितम्बर, १९५५ तक एक हजार से भी अधिक व्यक्तियो ने जीवनदान का सकल्प लिया है। जीवनदानियो को चित्त-शुद्धि की प्रेरणा देने और उन्हे उनके उपयुक्त जीवन-शृखला में दीक्षित करने के उद्देश्य से शिविरो की व्यवस्था की जा रही है। इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि वे लोग अपनी योग्यता और मानसिक झुकाव के अनुकूल विभिन्न क्षेत्रो में अपने को लगा सकें। जीवनदान की प्रक्रिया में एक दैवी शक्ति का उदय हो रहा है और भूदान-यज्ञ तथा सर्वोदय-साधना के क्षेत्र में एक नवीन युग के आगमन की सूचना मिल रही है। सर्वोदय-स्थापना में इसकी सम्भावनाएँ असीम हैं।

षष्ठांश दान का रहस्य

भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध मे कोई-कोई व्यक्ति ऐसा कहते है कि जमीन्दार और मालगुजार एक-षष्ठाश भूमि का दान करने के बाद बाकी पच-षष्ठाश का आराम से और निरापद भाव से भोग करेंगे और उनकी जीवन-यात्रा पूर्ववत् चलेगी। इससे समाज मे क्रांति आने की आशा कम है।—जो लोग ऐसा सोचते हैं, वे भूदान-यज्ञ-आदोलन के रहस्य को हृदयगम नही कर सके हैं। भूदान-यज्ञ सम्पत्ति के स्वामित्व की समाप्ति की दीक्षा देनेवाला आदोलन है। जिन्होंने आज एक-षष्ठाश दान किया है, वे कल उससे अधिक दान करेंगे और जब तक उनकी सम्पत्ति का पूर्णत विसर्जन नही हो जायगा, तब तक उनका दान चलता रहेगा। विनोबाजी ने कहा है "रबड को अधिक खीचने से वह फट जाता है। अत उसे धीरे-धीरे खीचा जाना चाहिए। इसीलिए अभी मैं केवल एक-षष्ठाश माँग रहा हूँ। आज तो मालिक सबको अपने पास सचित रखता है। समाज में यही रीति चल रही है। इसीलिए प्रथमत मैं एक-षष्ठाश माँग रहा हूँ। बाद में अधिक मागूंगा। व्यक्ति के गुण-विकास के लिए पर्याप्त समय देना आवश्यक है।" सम्पत्तिदान के सम्बन्ध में विनोबाजी ने यह बात कही है। भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में भी यही बात प्रयुक्त है। उन्होने सम्प्रति रांची में बिहार राज्य के भूदान-कार्यकर्ताओ के शिविर मे जो प्रवचन किया था, उसमें उन्होने यह बात और स्पष्ट रूप से कही थी "बिहार में हम अधिक गम्भीरता में प्रवेश कर रहे हैं। मैंने यहाँ केवल भूमि और दानपत्रो के कोटे मे वृद्धि नही की, बल्कि मैं ग्रामवासियो को यह समझा रहा हूँ कि गाँव के भूमिहीन गरीबो को भूमि देने की व्यवस्था आप लोगो को करनी होगी, और आप सब लोगों को मिलकर यह काम करना चाहिए। पहले मैं कहूँगा कि प्रत्येक ग्राम से ५-१० एकड जमीन मिलनी चाहिए। बाद में एक कदम और बढूंगा। गम्भीरता में प्रवेश करने पर धीरे-धीरे जाना होता है। प्रत्येक ग्राम में प्रत्येक किसान से दानपत्र लेना होगा। इसके बाद अतिम चरण उठाऊँगा और लोगों से कहूँगा - 'अब स्वामित्व को एकदम समाप्त करना होगा।' इस प्रकार कार्यकर्ताओं को भूदान-यज्ञ के सम्पूर्ण दर्शन का ज्ञान रहना चाहिए। आप सब लोगों के मन में यह बात रहनी चाहिए और आपको एक-एक कदम आगे बढ़ना चाहिए।"

इस सम्बन्ध में उन्होंने और एक स्थान पर कहा है : "लोग पूछते हैं कि एक-षष्ठांश दे देने के बाद फिर तो नहीं माँगेंगे ? मैं कहता हूँ कि धर्मकार्य से क्या कभी छुटकारा मिलता है ? उससे तो बन्धन आता है। बाद में तो सब कुछ देकर आपको गरीबों की सेवा में लग जाना चाहिए। वामन के तीन डग उठे थे। वामन का तीसरा डग जिस प्रकार उठा था, उसी प्रकार अंत में हमें गरीब हो जाना पड़ेगा और जीवन को सीधा-सादा बना लेना होगा।

"सन्तान को उठाते समय माता को झुकना पड़ता है। उसी प्रकार ग िबों को ऊँचा उठाने के लिए हमें अपने जीवन-मान को कुछ नीचा करना होगा। एक-षष्ठांश दान के द्वारा इसका आरम्भ हुआ है।"

सम्पत्तिदान-यज्ञ के सम्बन्ध में भी ी ही आपत्ति प्रकट की गयी है, जिसका विनोबाजी ने खंडन किया है।

भूमि-वितरण

अभी तक सर्वत्र भूमि-वितरण का काम इसीलिए आरम्भ नहीं किया गया कि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ताओं की शक्ति, सामर्थ्य और समय एकनिष्ठ रूप से भूमिदान-संग्रह के काम में लगा रहे। जहाँ भूमि-वितरण आरम्भ किया गया था, वहाँ भी उसे तेजी से चलाने के लिए विशेष चेष्टा नहीं की गयी। बोधगया-सम्मेलन के बाद से भूमि-वितरण पर विशेष जोर दिया जा रहा है। भूमि-वितरण के फलस्वरूप भूदान-यज्ञ का वास्तविक और परिपूर्ण रूप जनता के सामने प्रकट हो जायगा। भूमि-संग्रह की अपेक्षा भूमि-वितरण का काम अधिक श्रमसाध्य और दायित्वपूर्ण है। भूमि-वितरण का भार जिन कार्यकर्ताओं पर पड़े, उन्हें न्याय-परायण, निरपेक्ष मनोभाव-सम्पन्न और क्रांतिकारी दृष्टिवाला होना चाहिए। इसके अतिरिक्त विनोबाजी ने वितरण के सम्बन्ध में जो नियम निर्धारित किये हैं, उनका यथातथ्य पालन करना होगा। अन्यथा, वितरण का उद्देश्य नष्ट हो जाने की सम्भावना रहेगी। वितरण-सम्बन्धी नियमों में निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं : (१) वितरण-कार्य ग्राम की सार्वजनिक सभा में करना होगा। (२) वितरण के लिए निर्दिष्ट तिथि के सात दिन पहले एक बार और उससे एक दिन पहले फिर एक बार ढोल के साथ इसकी मुनादी करा देनी होगी। (३) ग्रामवासियों की सर्वसम्मति से, अन्यथा भूमिहीनों

की सर्वसम्मति से भूमि का वितरण करना होगा। मतभेद होने पर गोटी या पर्चा डालकर निष्कर्ष पर पहुँचना होगा। सब काम एक ही सभा मे पूरा करना होगा। (४) भूमि-वितरण करनेवाले कार्यकर्ता सभा में केवल गवाह के रूप मे उपस्थित होंगे, सेवक के रूप मे रहेंगे, निर्णायक की तरह नही रहेंगे। (५) यथासम्भव दान में प्राप्त भूमि का तृतीयाश हरिजनो में वितरित किया जायगा। (६) साधारणत जिस ग्राम में भूमिदान मिला हो, उसी ग्राम के भूमिहीन गरीबों में भूमि का वितरण किया जाय। भूमिहीनो मे से जिसके पास कभी भूमि न रही हो, उसे प्राथमिकता दी जाय। उस ग्राम में वितरण हो जाने के बाद बची हुई भूमि को पास के गाँव के भूमिहीनो में बाँट दिया जाय।

भूमि-वितरण के सिलसिले मे एक बात की विशेष सावधानी बरतनी होगी। भूमि प्राप्त करनेवाले के मन मे यह धारणा उत्पन्न न होनी चाहिए कि गरीब होने के कारण दया करके उसे भूमि दी जा रही है। उसके मन में यह बात रहनी चाहिए कि गरीबो को जिस अधिकार से अब तक वचित रखा गया था वही उसे वापस किया जा रहा है। कार्यकर्ताओ को सारे कामो में ऐसा वातावरण पैदा करना होगा कि लोग यह अनुभव करें कि अब तक भूमिहीनो को भूमि न देकर समाज के प्रति बडा भारी अन्याय किया गया था। भूदान-यज्ञ के द्वारा वही भूल सुधारी जा रही है।

जो लोग जमीन जोतते नही और बिना परिश्रम के जमीन मे उत्पन्न फसल का भोग करना चाहते हैं वे जमीन के मालिक नही बन सकते। जो परिश्रम कर सकते हैं उन्हें आज उनका अधिकार लौटाया जा रहा है सही किन्तु उन्हें इसका ध्यान रहना चाहिए कि अधिकार की दूसरी ओर कर्तव्य होता है। कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करने से ही अधिकार सार्थक होता है। इस बात को भूमि प्राप्त करनेवाले के हृदय में उतारना होगा। उसे इस बात का अधिकार नही होगा कि जमीन लेकर उसके जी में जो आये, वह करे। जमीन को नष्ट करने से, जमीन में कम फसल उत्पन्न करने मे अथवा जमीन को परती रखने से वह समाज और ईश्वर के समक्ष दोषी माना जायगा।

इन सबसे बडी बात यह है कि भूमि वितरण होने के समय से ही भूमि पानेवाले को सर्वोदय की दीक्षा देनी होगी उसे सर्वोदय की विचारधारा में दीक्षित और शिक्षित करना होगा। उनके परिवार को 'सर्वोदय परिवार' मे

रूप में सगठित करना होगा। मादक द्रव्यों से उसे छुड़ाना होगा। जीविका के परिपूरक उपाय के रूप में उसे वस्त्र के मामले में स्वावलम्वी बनना पड़ेगा। इसके लिए उसे अविलम्ब ही सूत कातने की शिक्षा लेनी होगी और प्रत्येक वर्ष सूताजलि अर्पित करनी होगी। उसे ढेकी में चावल कूटना और हाथ की चक्की से गेहूँ पीस लेना होगा। उसे गुड़ या हाथ से बनी चीनी तथा घानी तेल तैयार करना होगा और उसीका व्यवहार करना होगा। इस प्रकार उसे क्रमश: सर्वोदय के पथ पर अग्रसर होना होगा। तभी भूमि-वितरण का उद्देश्य सार्थक होगा।

भूमि का खंडीकरण

ऐसा आक्षेप किया जाता है कि भूदान-यज्ञ के द्वारा भूमि और भी खण्ड-खण्ड होती जा रही है, क्योंकि दो-चार कट्ठा भूमि भी दान में ग्रहण की जाती है। इस आक्षेप को दूर करने के लिए विनोबाजी ने कहा है: "किन्तु, भाइयो! आज हृदय के टुकडे-टुकडे हो गये हैं, यह क्या आपको अच्छा लग रहा है? आज सबके हृदय खण्ड-खण्ड हो गये हैं। यदि हृदय के टुकडे जुड़ जायँगे, तो जमीन के टुकडे भी सहज ही जुड जायँगे। गरीबो को जब जमीन दी जा चुकेगी, तब उन्हें सहकार की शिक्षा देना विशेष कष्टसाध्य नही होगा। आरम्भ से ही सहकार की शर्त लगाना बाहरी प्रतिबन्ध जैसा होगा और उसके लिए एक व्यवस्थापक की आवश्यकता होगी। इसीलिए, जमीन का मालिक परमेश्वर है—यह समझाकर आज मैं गरीबो को जमीन का पूरा अधिकार देना चाहता हूँ। यदि हृदय जुड जाय, तो क्या जमीन को जोड सकना कठिन होगा? किसे पहले जोडना होगा, यह तो बुद्धि की बात है। जहाँ हृदय ही भग्न पड़ा हो, वहाँ क्या जमीन को जोड रखना सम्भव है? एक भाई ने मुझसे कहा है कि जब लोग 'सहकार' करने के लिए तैयार होगे, तभी मैं जमीन दूँगा। इस पर मैंने उनसे कहा कि आप लोगों को इसके लिए समझाय। इससे उन्हे कुछ ज्ञान मिला, क्योंकि लोग कहने लगे कि हम सहकारिता में नही पडेंगे। अन्य कार्यों में हम स्वय सहकार नही करते और इस मामले में हम इन गरीबो पर सहकार की शर्त लगाना चाहते हैं और कहते है—सहकारिता से काम करो। इससे इनके ऊपर एक प्रतिबन्धमूलक दबाव के लिए व्यवस्था की जायगी। और ये तो आज ही डरे हुए हैं। तब उन भाई को मेरी बात समझ में आयी कि पहले हृदय जोड़ देना आवश्यक है।"

खंडित भूमि का उत्पादन

ऐसी आपत्ति की जाती है कि भूदान-यज्ञ के फलस्वरूप खेत छोटे-छोटे हो जायँगे और उत्पादन कम हो जायगा। इस आपत्ति का कोई आधार नहीं है। चीन और जापान मे प्रतिव्यक्ति औसतन दो एकड जमीन है, किन्तु उत्पादन हमारे देश का तीन गुना है। खेत छोटा है या बडा, इस पर उत्पादन बहुत अधिक निर्भर नही करता। खेती में वैज्ञानिक प्रयोग किया जाता है अथवा नहीं, यही असली बात है। जहाँ खेती-बाडी में वैज्ञानिक ज्ञान और बुद्धि का प्रयोग किया जाता है, वहाँ अधिक फसल होती है। श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने अपने एक लेख में लिखा है "सम्पूर्ण विश्व में सकलित आंकडो के आधार पर यह यथेष्ट रूप से प्रमाणित हो गया है कि जमीन का क्षेत्रफल बढने और यन्त्रो का प्रयोग होने से उस जमीन की खेती के काम में लगे प्रतिव्यक्ति के हिसाब से उत्पादन में वृद्धि तो होती है किन्तु प्रति एकड भी उत्पादन बढता है, ऐसी बात नही है। वस्तुत भारत-जैसे घनी आबादीवाले देश में छोटे-छोटे खेतो में घनी खेती (intensive cultivation) ही आर्थिक समस्या का एक-मात्र समाधान है। हाँ, यह आवश्यक है कि छोटे-छोटे किसानो को अच्छे बीज, खाद, सिंचाई और सहकारी पद्धति से बिक्री-व्यवस्था की सुविधा देनी होगी।" जमीन में कम-बेशी फसल होने का एक और प्रधान कारण है। जहाँ जमीन पर खेतिहर का पूरा अधिकार होता है, वहाँ उत्पादन अपेक्षाकृत अधिक होता है। मजदूर द्वारा खेती कराने से या बटाईदारी में उत्पादन कम होता है। यह तो साधारण बात है। जमीन पर खेतिहर को पूर्ण अधिकार न देने तक जमीन में उपयुक्त खाद देने, वैज्ञानिक ढगो का प्रयोग करने या जमीन में अधिक मेहनत करनेके लिए उसे प्रेरित नही किया जा सकता। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है "छोटे टुकडे में उत्पादन अधिक होता है या बडे टुकडे में— इस पर और क्या विचार कीजियेगा ? यह तो अर्थशास्त्र की एक मामूली बात है कि जिस प्रकार के टुकडे में उत्पादन अधिक होगा, वैसे टुकडे तैयार किये जायँगे। असली बात यह है कि हृदय जुड जाने पर अधिक फसल होती है— केवल भूमि के छोटी या बडी होने पर यह निर्भर नहीं करता। परिश्रम के द्वारा अधिक फसल होती है—यह हम जानते हैं। छोटे टुकडो में अधिक फसल होती है, यह बात कई देशो के अनुभवो के आधार पर सिद्ध हो चुकी है। मजदूर

को यदि हम जमीन का मालिक बना दें, तब वह प्रेम से खेती करेगा और फलत जमीन की उत्पादन-शक्ति बढ जायगी। जहाँ अधिक उत्पादन होता है, वहाँ जाँच करने पर पता चला है कि जमीन-मालिक ग़रीब हैं और जहा फसल कम होती है, वहाँ जाँच के परिणामस्वरूप जमीन के मालिक धनी प्रमाणित हुए हैं। Absentee Land-lord (अनुपस्थित मालिक) की बात सब लोग जानते हैं। अतएव अर्थशास्त्र के ये छोटे-छोटे प्रश्न न उठायें। हमारा काम बुनियादी क्रांति का काम है, जिससे समाज में आमूल परिवर्तन होगा।"

अधिकतम सीमा-निर्धारण का प्रश्न

भूमि-समस्या के समाधान के क्रम में भूमि-वितरण की चर्चा आज सारे देश में हो रही है। इस सम्बन्ध में कुछ दिनों से एक खतरनाक बात उठायी जा रही है। वह यह है कि जमीन के मालिकों को अधिक-से-अधिक कितनी भूमि रखने दी जाय, इसके निर्धारण के लिए व्यवस्था हो। सीलिंग (Ceiling) के नाम से यह बात आजकल देश-देश में चल पड़ी है। अनेक लोग सोचते हैं कि सीलिंग निर्धारित कर देने से भूमि-समस्या का समाधान सरल हो जायगा। यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है। जिन्होंने 'सीलिंग' की बात उठायी है उनकी दृष्टि पूर्णत विपरीत दिशा में है। बड़े-बड़े भूमि-मालिकों की किस हद तक रक्षा की जाय, इसमें यही आग्रह है। भूमिहीन जमीन पायेंगे या नहीं पायेंगे इस पर उनका जोर नहीं है। किन्तु, भूमिहीन गरीबों के लिए भूमि की व्यवस्था करने की समस्या आज देश की सबसे जरूरी और बुनियादी समस्या है। पहले भूमिहीन गरीबों के लिए भूमि की व्यवस्था होनी चाहिए और बाद में अन्य सब बातें। इस बुनियादी समस्या को प्राथमिकता देकर हमें आगे बढ़ना होगा। यदि हम वैसा करें, तो सीलिंग का प्रश्न ही नहीं उठता और यदि उठे भी, तो वह बहुत गौण रह जायगा। दूसरी ओर, यदि 'सीलिंग' को प्राथमिकता देकर हम आगे बढ़ेंगे, तो बड़े-बड़े भूस्वामी स्वजन-सम्बन्धियों में जमीन बाँटकर अपने हाथ में सीलिंग के अन्तर्गत भूमि रखने की चेष्टा करेंगे। सीलिंग निश्चित होगी, इस आशंका से अभी ही बड़े-बड़े भू-स्वामियों ने जमीन के हस्तान्तरण का काम शुरू कर दिया है और कर रहे हैं। अतएव सीलिंग कम निश्चित होने पर भी भूमिहीनों के लिए कुछ विशेष जमीन बच रहेगी, ऐसा नहीं प्रतीत होता।

पहले प्रत्येक परिवार को पाँच एकड़ जमीन दी जाय। इसके बाद बची जमीन को लेकर सीलिंग के समर्थक सीलिंग निर्धारित करें। इसीलिए विनोबाजी सीलिंग-निर्धारण के अत्यधिक विरोधी हैं। उन्होने इस सम्बन्ध में कहा है : "सीलिंग की बात खतरनाक है। यह बात उठाना हमारे लिए ठीक नहीं होगा। आज यह बात सब लोग कह रहे हैं, किन्तु मैंने कहा है कि मैं 'सीलिंग' नहीं चाहता—मैं 'फ्लोरिंग' चाहता हूँ ! सब लोग यह सिद्धान्त मान लें कि प्रत्येक परिवार को ५ एकड के हिसाब से जमीन दी जायगी और उसके बाद जो बच जाय, उसे लेकर जो जी मे आये, किया जा सकता है। कोई-कोई कहते हैं : आपके कथनानुसार 'रूफिंग' करने से वह इतना नीचा होगा कि झुककर भीतर घुसना होगा। मैंने कहा है : उसमें कोई क्षति नही है। मुझे दिल्ली की 'सीलिंग' की आवश्यकता नही होगी—मुझे गाँव का 'सीलिंग' चाहिए। मैंने राँची में देखा है कि ३० एकड सीलिंग होने पर भी भूमिहीनों को जमीन नही मिलेगी। जमीनवाले लोग अपने परिवारवालों और आत्मीय स्वजनो के बीच जमीन का वितरण कर लेंगे। तेलगाना में सीलिंग की बात चली थी। वहाँ के भूस्वामियों ने वैसा ही किया था। वहाँ दो सौ एकड़ सीलिंग की बात हुई थी। यदि ३० एकड की तरह छोटे परिमाण का सीलिंग निश्चित किया जायगा, तो बहुत अधिक क्षतिपूर्ति देनी होगी। बिना क्षतिपूर्ति के आज कोई जमीन छीनी नहीं जा सकती। और, बडे परिमाण का सीलिंग निश्चित होने से जमीन मिलेगी ही नही। इसीलिए हम चाहते है कि ग्राम की जमीन ग्राम के सभी लोगों की हो जाय। अधिक-से-अधिक तीन गुनी जमीन रखी जा सकेगी, ऐसी बात भी हुई है। किन्तु, जब सबको पूरा भोजन भी नही मिल सकेगा, तब किसीको तीन गुनी जमीन रखने का अधिकार क्यों दिया जायगा ? कोई भी व्यक्ति अन्य किसी व्यक्ति की तुलना में तीन गुनी जमीन में खेती नहीं कर सकता। तब तीन गुनी जमीन रखने का अधिकार उसे कैसे होगा ? अतएव इन सारी बातों में कोई तत्त्व नही है। हमें मूल विषय पर सोचना होगा। हम चाहते हैं कि गाँव की जमीन गाँव की ही हो। सरकार कानून के द्वारा यह कर सकेगी क्या ? सीलिंग निश्चित करने से क्या काम होगा ? आज बडे-बडे लुटेरे मौजूद हैं, उनके स्थान पर छोटे-छोटे लुटेरे आ विराजेंगे। इससे केवल लुटेरों का दल बढ़ेगा।" इस सम्बन्ध मे एक अन्य स्थान पर उन्होंने कहा है - "भूमि-समस्या

के समाधान के लिए सीलिंग की बात उठ रही है। किन्तु, सीलिंग से काम नहीं होगा—फ्लोरिंग की आवश्यकता है। यदि कानून ही बनाना है, तो ऐसा कानून बनाना पड़ेगा कि प्रत्येक किसान कम-से-कम पाँच एकड़ जमीन अवश्य पाये।"

कृषि सर्वोत्तम श्रम और श्रेष्ठ आजीविका

विनोबाजी जब साबरमती-आश्रम में थे, तब वे रसोई बनाने से लेकर भंगी तक के सभी शारीरिक श्रम के कामों में योगदान करते थे। वर्धा सत्याग्रह-आश्रम में संचालक के रूप में उन्होंने आश्रमवासियों को जिन ११ व्रतों का पालन करने के लिए कहा था, उनमें शारीरिक श्रम अन्यतम था। सूत कातने की सभी प्रक्रियाओं में वे विशेषज्ञ हैं। बुनकर का काम, बढ़ई का काम आदि सभी प्रकार के उत्पादक श्रम के काम उन्होंने बहुत दिनों तक किये हैं। पवनार के 'परमधाम' आश्रम में 'कांचन-मुक्ति' की साधना में उन्होंने खेती का काम बहुत अधिक किया है और उसकी सूक्ष्मताओं से अभिज्ञ हुए हैं। इस प्रकार इस श्रमयोगी ने उत्पादकश्रममूलक काम के साथ कृषि-कार्य का तुलनात्मक विवेचन करने के बाद यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि जितने प्रकार के शारीरिक श्रम के काम हैं, उनमें खेती का काम सर्वोत्तम है। खेती का काम क्यों सर्वोत्तम शारीरिक श्रम है, इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं :

(१) खेती के काम में स्वच्छ और मुक्त हवा में व्यायाम होता है।

(२) खेती का काम करने से आकाश-सेवन हो जाता है।

(३) खेती से मौलिक उत्पादन होता है। अर्थात् अन्य जिस किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है, वह खेती से उत्पन्न वस्तु से या उसकी सहायता से तैयार होती है।

(४) खेती का काम सबसे अधिक आनन्ददायक काम है।

(५) खेत की विराट् मूर्ति ईश्वर की सर्वोत्तम मूर्ति है। इसलिए खेती का काम परमेश्वर की उपासना है।

(६) खेती का काम करने से मनुष्य दीर्घजीवी होगा और देश में रोग कम होंगे।

(७) खेती का काम करने से ब्रह्मचर्य-पालन सहज-साध्य हो जाता है। खेती का काम ब्रह्मचर्य के पालन में बहुत अधिक सहायता करता है।

इसीलिए प्राचीन काल से ही ऋषिगण जीविकोपार्जन के कामों में खेती को श्रेष्ठ स्थान देते आये हैं। इस प्रसग मे मनु ने क्या कहा है, यह जानने की इच्छा हो सकती है। अतएव मनुसंहिता से तत्सम्बन्धी कथन यहाँ प्रस्तुत किया जाता है।

"ऋतामृताभ्यां जीवेत् तु मृतेन प्रमृतेन वा ।
सत्यानृताभ्यामपि वा न श्ववृत्त्या कदाचन ॥"

"ऋतवृत्ति और अमृतवृत्ति के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जा सकता है, अथवा मृतवृत्ति या प्रमृतवृत्ति के द्वारा जीवन-निर्वाह किया जा सकता है, अथवा सत्यानृतवृत्ति के द्वारा भी जीवन निर्वाह किया जा सकता है, किन्तु जीविका के लिए कभी भी श्ववृत्ति (कुत्ते की वृत्ति) नहीं अपनानी चाहिए।"

ऋत, अमृत, मृत, प्रमृत आदि वृत्तियाँ किसे कहते हैं ? उनका अर्थ यह है :

"ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम् ।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥"

"भूमि पर गिरे हुए धान आदि अनाजो के दानो को चुनकर उसके द्वारा जीवन-निर्वाह करना उञ्छवृत्ति है। धान आदि की बाल तोडकर जीवन-निर्वाह करना शिलवृत्ति है। इन दोनो वृत्तियो को ऋतवृत्ति कहते हैं। बिना माँगे जो मिल जाता है, उससे जीवन-धारण करने को अमृतवृत्ति कहते हैं। माँगने पर जो (भिक्षा) मिले, उससे जीवन-निर्वाह करना मृतवृत्ति है। खेती को प्रमृतवृत्ति कहते हैं।"

इसके बाद कहते हैं :

"सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते ।
सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात् तां परिवर्जयेत् ॥"

"वाणिज्य का नाम सत्यानृतवृत्ति है। उसके द्वारा भी जीवन-यापन किया जा सकता है। किन्तु, सेवा या नौकरी, जो श्वानवृत्ति मानी जाती है, उसका पूर्ण रूप से बहिष्कार किया जाना चाहिए।"

इस प्रकार मनुसंहिता में जीविकोपार्जन के उपाय, खेती, वाणिज्य और नौकरी—इन तीनो में खेती को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। किन्तु, आज समाज का दृष्टिकोण ठीक उसके विपरीत है। आज नौकरी सबसे सम्मानजनक जीविका मानी जा रही है और कृषि इन तीनों में निकृष्ट वृत्ति समझी

जा रही है। यही वर्तमान समाज के भीषण दुख और दुर्दशा का मूल कारण है।

परशुराम ने हिंसा का आश्रय लेकर पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रियों से हीन करने के बाद जब अपनी भूल समझी, तब उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर खेती का काम अपनाया। इससे द्रोहरहित वृत्ति के रूप में कृषि का महत्त्व प्रकट होता है।

सभी भूमि पाने के अधिकारी

जिस व्यक्ति के पास जीविकोपार्जन का अन्य कोई साधन नहीं है, वह यदि खेती करना चाहे और अपने हाथ से खेती करना चाहे, तो उसे जमीन पाने का अधिकार है—यह बात समझना कठिन नहीं है। किन्तु, विनोबाजी ने देश और संसार के समक्ष यह महान् दावा उपस्थित किया है कि जीविका के लिए अन्य कार्य रहे या न रहे, जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहता है, उसे कुछ-न-कुछ जमीन पाने का नैतिक अधिकार है। प्रारम्भिक दृष्टिपात से यह दावा अनुपयुक्त मालूम पड़ सकता है, किन्तु इस अधिकार के आधार के सम्बन्ध में विनोबाजी ने जो कहा है, उस पर जरा गम्भीरतापूर्वक विचार करने से यह बात समझ में आयगी कि उनका यह दावा दृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित है। यह नैतिक अधिकार क्यों रहना चाहिए, इस बारे में विनोबाजी कहते हैं :

(१) खेती का काम सर्वोत्तम शारीरिक श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है। वह स्वाभाविक और जीवनप्रद व्यायाम है। खेती का काम सर्वोत्तम श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है, इस पर पहले के अध्याय में विचार किया जा चुका है। जिन-जिन कारणों से खेती का काम सर्वोत्तम शारीरिक श्रम माना जाता है उन्हीं कारणों से जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहेगा, उसके लिए कितनी भी कम क्यों न हो, जमीन की व्यवस्था न करना अनुचित होगा। मनुष्य होने के कारण उसे यह नैतिक अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(२) भूमि अन्न-उत्पादन का एकमात्र साधन है और वह मौलिक उत्पादन का भी प्रधानतम क्षेत्र है। अतएव जमीन और कृषि की उन्नति के लिए सबका ध्यान रहना और प्रयत्नशील होना आवश्यक है। सबका हाथ भूमि में लगने से ही सबकी बुद्धि का प्रयोग भूमि में होगा।

(३) जीवन-विकास की दृष्टि से कृषि अपरिहार्य है। इसलिए जीविकोपार्जन के लिए जो व्यक्ति जो काम करता है, करे, किन्तु उसे कुछ समय के लिए नित्यप्रति नियमित रूप से खेत में काम करना चाहिए। विनोबाजी कहते हैं कि वे प्रतिदिन आठ घंटे लगातार बुनाई का काम करते थे। उस समय वे यह तीव्र रूप से अनुभव करते थे कि आठ घंटे तक झुककर बैठे रहने के कारण उनकी गर्दन, रीढ़ और कमर झुक गयी है और अपने को पुन: स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिए उन्हें काफी कष्ट उठाना पड़ता था। इसलिए वे कहते हैं कि ताँती, सुनार, कुम्हार, दर्जी आदि गृहशिल्पी, सभी अपनी-अपनी आजीविका के लिए काम तो करेंगे, किन्तु उन्हें खेत में भी दो-चार घंटे काम करने का अवसर मिलना चाहिए, अन्यथा, उनका काम आनंददायक, जीवनप्रद और अधिक उत्पादनशील नहीं हो पायेगा। जिन लोगों ने जीविकोपार्जन के अन्यान्य साधन अपना रखे हैं, उनके सम्बन्ध में भी यही बात है। जिस प्रकार किसान को प्रतिदिन दो-चार घंटे खेत में काम करना चाहिए, उसी प्रकार जज साहब को भी प्रतिदिन कुछ समय के लिए नियमित रूप से खेत में काम करना चाहिए।

इसीलिए विनोबाजी कहते हैं कि पढ़ाई-लिखाई न जानने से जीवन का विकास नहीं होता, ऐसा कहा जाता है, किन्तु उसके साथ ही किस देश के कितने आदमी खेती का काम करते हैं, यह देखना भी आवश्यक है।

जनसंख्या-वृद्धि और खाद्योत्पादन

भारत की जनसंख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है। इसके कारण खाद्य-समस्या का स्थायी समाधान सम्भव नहीं होगा, इस आशंका से राष्ट्रीय आयोजना-आयोग और अनेक विचारक संतति-नियमन (family planning) का परामर्श देते हैं। इस बारे में गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है। वर्तमान जन-गणना के अनुसार भारत में हजार व्यक्तियों (पुरुष और स्त्री) पर एक वर्ष में ४० बच्चे पैदा होते हैं। जन्म की यह संख्या संसार में सबसे अधिक है। इस देश में मृत्यु-संख्या भी सभी देशों से अधिक है अर्थात् प्रत्येक वर्ष हजार व्यक्तियों में से २७ की मृत्यु हो जाती है। अतएव इस हिसाब से भारत में एक वर्ष में प्रतिहजार व्यक्तियों पर जनसंख्या में १३ की वृद्धि

होती है। ब्रिटेन में जन्म-सख्या वार्षिक १६ प्रतिहजार और मृत्यु-सख्या वार्षिक १२ ५ प्रतिहजार है। अर्थात् एक वर्ष में एक हजार व्यक्तियो पर वहाँ जनसख्या में ३ ५ की वृद्धि होती है। अमेरिका में जन्म-सख्या वार्षिक प्रतिहजार २४ ५ और मृत्यु-सख्या ९ २ है, अर्थात् वहाँ एक वर्ष में एक हजार व्यक्तियो पर जन्म-सख्या में १५ ३ की वृद्धि होती है। भारत मे इतना अधिक जन्म और मृत्यु होने का कारण क्या है? साधारणत देखा जाता है कि जो अचल, जो देश या जो वर्ग जितना अधिक गरीब होता है, उसकी जन्म-सख्या भी उतनी ही अधिक होती है। गरीबी के कारण अपुष्टिकारी भोजन का अभाव ही अत्यधिक जन्म का कारण माना जाता है। साधारण तौर पर यह बात सच मालूम पडती है। भारत में जन्म की गति अधिक होने के अन्य कारण होते हुए भी यह कारण सर्वप्रमुख है, इसमें सन्देह नही है। भारत ससार में सर्वाधिक गरीब देश है। इसीलिए भारत की जन्म-गति सारे ससार में सबसे अधिक है। यह तो जानी हुई बात है कि गरीबी के कारण मृत्यु अधिक होती है। भारत में जन्म की गति में अत्यधिक वृद्धि हो रही है और होगी, इस बात को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय आयोजना तैयार करना उचित है। ऐसा कहना ठीक नही है कि जन्मसख्या में वृद्धि होने के कारण बेकारी दूर कर सकना सम्भव नही हो रहा है। कारण, कृत्रिम उपायो से सतति-नियमन की सारी नैतिक बुराइयो को यदि न भी मानें, तो भी विचार करने से यह बात समझ में आती है कि वर्तमान स्थिति में सतति-नियमन का उपदेश भी विशेष कुछ सुफल नही देगा। जिस गरीब-वर्ग के लिए सतति-नियमन की अधिक आवश्यकता अनुभव की जाती है, उसके कान में सतति-नियमन की बात पहुँचेगी ही नही और पहुँचने पर भी उसका वर्तमान शिक्षा-दीक्षा और सस्कारो के कारण पालन नही होगा। दूसरी ओर, जिनके लिए सतति-नियमन की आवश्यकता नहीं है, वे इस आदोलन के फल-स्वरूप सतति-नियमन के लिए कृत्रिम उपायो का आश्रय लेकर गम्भीर नैतिक अवनति को प्राप्त होगे। सयम का पालन करके जिन्होने सुफल प्राप्त किया है, ऐसे विवाहित स्त्री-पुरुष यदि गरीबो के बीच जाकर सयम का अभ्यास करने के लिए लोगो को उपदेश दें, तो अच्छा परिणाम निकलेगा। एकमात्र सयत जीवन देखकर दूसरे लोग दीक्षा ग्रहण कर सकते हैं। जन्म-सख्या में ह्रास लाने का सबसे प्रभावकारी उपाय यह है कि अविलम्ब गरीबी को दूर करने की व्यवस्था

की जाय। भूमि के उचित वितरण और ग्राम-उद्योगों की स्थापना के द्वारा ही यह सम्भव है। वर्तमान स्थिति में केवल इन्हीं दो उपायों का एक साथ अवलम्बन करने से भारत की गरीबी मिटेगी। अतएव इस आन्दोलन की सफलता के लिए और भी निष्ठा तथा श्रद्धा के साथ प्रयत्नशील होने की आवश्यकता है।

सचमुच क्या जनसंख्या में वृद्धि के कारण पर्याप्त खाद्यान्न का अभाव रहने की आशंका है? ऐसी सम्भावना मालूम नहीं होती। लोग कहते हैं कि जिन्होंने जन्म दिया है, वही खिलाने का भी प्रबन्ध करेंगे। इसे अंध-संस्कारगत धारणा कहकर टाल देने से काम नहीं चलेगा। वस्तुतः यह सत्य है, ऐसा देखा गया है। भारत की जनसंख्या जब बढ़ने लगी, तब विज्ञान का विकास होने के कारण उसका प्रयोग करके और देश में नील की खेती बन्द करके अधिक खाद्यान्न का उत्पादन किया जाने लगा। कौन जाने, जब जनसंख्या का दबाव अधिक बढ़ जायगा, तब जूट पैदा करने की कोई आवश्यकता रहेगी या नहीं। उस समय भारत की करोड़ों एकड़ भूमि में खाद्यान्नों का उत्पादन होने लगेगा। अभी ही किसी-किसी देश में कागज और कपड़े की थैलियाँ तैयार की जा रही हैं। इसके अतिरिक्त कृत्रिम (Synthetic) थैलियाँ भी तैयार की जा रही हैं और उन स्थानों की थैलियों की आवश्यकता उनसे पूरी की जा रही है। यह बात क्या उपर्युक्त सम्भावना की ही सूचना नहीं देती? दक्षिण-पूर्व एशिया के विशाल क्षेत्र में रबड़ की खेती के सम्बन्ध में भी ऐसा ही सोचा जा सकता है। एक समय आ सकता है, जब रबड़ की खेती की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। अतएव खाद्यान्नों के अभाव की आशंका से संतति-नियमन के लिए उद्विग्न होने का विशेष कोई कारण नहीं है।

विनोबाजी जनसंख्या में वृद्धि के प्रतिकार के लिए संतति नियमन के प्रस्ताव पर विचलित होकर कहते हैं : "आप लोग family planning या संतति-नियमन का प्रस्ताव रखते हैं अर्थात् 'बच्चे पैदा करना कम करो'—ऐसा कहते हैं। किन्तु, यह बात मुझसे कहने का आपको क्या अधिकार है? आप हमारे नौकर हैं या मालिक? जापान और इंग्लैण्ड में जमीन पर आबादी का जितना भार है, उसमें आबादी का कहीं कम भार भारत की भूमि पर है। जनसंख्या में वृद्धि क्यों होती है, इस पर क्या आपने कभी विचार किया है? सिंह के बहुत कम बच्चे होते हैं और बकरियों के अधिक।

"इसका वास्तविक प्रतिकार सतति-नियमन नही है। इसके प्रतिकार के लिए जीवन का ठोस ढग से परिचालन ही उत्कृष्ट उपाय है।"

असहनीय स्थिति

बिहार की भूमि-समस्या का समाधान होने पर भी अन्यान्य प्रदेशो का काम तो बाकी ही रह जायगा। तब उसके लिए क्या किया जायगा?—इस प्रश्न के उत्तर मे विनोबाजी ने कहा है: "बिहार की समस्या का समाधान होने पर भी अन्य राज्यो के लोग चुप बैठे रहेंगे—ऐसा सोचना गलत है। हो सकता है कि वहां की सरकारें कानून बनायें, या कार्यकर्ता काम में लग जायें और नहीं तो लोग बल-प्रयोग करें और रक्त-रजित राष्ट्रीय क्राति हो जाय। यदि ऐसी क्राति भी होगी, तो मुझे खुशी ही होगी। किन्तु, वर्तमान स्थिति असहनीय है। इसलिए यदि वहां क्राति होगी, तो उसे रोकनेवाला मैं कौन? आज की जो परिस्थिति है, उसे मैं किसी भी अवस्था में सहन करने को तैयार नहीं हूं।" किन्तु, विनोबाजी को विश्वास है कि बिहार मे भूमि-समस्या का समाधान होने पर अन्य किसी भी राज्य में वैसी हिंसात्मक क्राति होने का अवसर नही मिलेगा। इसीलिए उन्होंने इस प्रसग में कहा है "आज ससार की अवस्था ऐसी है कि किसी एक कोने में घटनेवाली बात सारे ससार मे प्रसारित हो जाती है। जभी कश्मीर के राजा ने राज्य छोड दिया, तभी अन्य सब राजाओं की गद्दी छूटने लगी। जब आन्ध्र राज्य का निर्माण होगा, तब उसका अन्य राज्यो पर भी प्रभाव पडेगा। प्राचीन काल मे ऐसी स्थिति नही थी। अब तो एक स्थान का प्रभाव दूसरे स्थान पर पडे बिना नही रहता। इसीलिए यदि हमारा यहाँ का सैन्यदल सफलता प्राप्त करेगा, तो यही बाहर भी जायगा। हमारी यह सेना इस प्रकार तैयार होगी कि सफलता प्राप्त करके ही रहेगी।" इसलिए वे अन्यान्य राज्यों के कार्यकर्ताओं को यह उपदेश देते हैं कि वे अपने-अपने राज्य में अनुकूल वातावरण का निर्माण करें। इसके अतिरिक्त वे अपने राज्य में ऐसा कोई विशिष्ट छोटा स्थान चुन लें, जहाँ काम आगे बढने पर उसका प्रभाव सारे राज्य पर पडे। ऐसे स्थान को वे स्ट्रैटेजिक प्वाइट (strategic point) कहते हैं। ऐसे एक स्थान में सबको मिलकर आत्यन्तिक और केन्द्रीभूत रूप से काम करके सफलता-प्राप्ति के लिए प्राणपण से चेष्टा करनी होगी। उसकी

प्रतिक्रिया सारे राज्य में क्रमश. प्रकट होगी। इस दृष्टि से बिहार का गया जिला चुन लिया गया है और वहाँ केन्द्रीभूत और आत्यन्तिक रूप से काम किया जाता है, जिसका फल सारे राज्य में आशातीत रूप से परिलक्षित हो रहा है।

सनातन धर्म

भूमि समस्या का समाधान हो जाने से ही हमारा काम समाप्त नहीं हो जायगा, अर्थात् हम जो क्रांति चाहते हैं, वह केवल भूमि-क्रांति नहीं है। वह विचार-क्रांति के आधार पर प्रतिष्ठित होनी चाहिए। विनोबाजी एक धर्म-विचार का प्रवर्तन करना चाहते हैं। वह धर्म-विचार सनातन है, किन्तु आज-कल के हिन्दू, इस्लाम आदि धर्मों के अर्थ में 'धर्म' नहीं है। इस धर्म-विचार-प्रवर्तन को उन्होंने 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है। यह क्या है, यह हम पहले देख चुके हैं। तब इस धर्म-विचार को किस अर्थ में 'सनातन' कहा गया है, इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर लेने की आवश्यकता है। ऐसा होने पर ही यह स्पष्ट होगा कि इस धर्म-विचार का वर्तमान समाज में क्या स्थान है ? इस सनातन धर्म के अर्थ की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है : 'सनातन' शब्द का प्रयोग बहुत होता है, किन्तु इसका अर्थ सब लोग नहीं जानते। धर्म दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह, जिसका परिवर्तन नहीं होता, जैसे सत्य-पालन। प्राचीनकाल में भी यह धर्म-स्वरूप था और आज भी है। भारत में भी यह धर्म-स्वरूप है और अन्य देशों में भी। इसलिए इस पर देश-काल के भेद का प्रभाव नहीं पड़ता। अतएव यह नित्य और सनातन धर्म है। इसी प्रकार प्रेम, वात्सल्य आदि सनातन धर्म हैं। इन सनातन धर्मों के पालन के लिए प्राचीनकाल में जो आचार-निष्ठा थी, वह देश, काल और पात्र के अनुसार बराबर बदलती आ रही है। सबके लिए भक्ति सनातन धर्म है और समान है, यद्यपि उपासना की पद्धति अलग-अलग हो गयी है। अतएव जो सनातन धर्म धर्मों का सार और आत्मास्वरूप है, उसीको ग्रहण किये रहना और उसका नित्य ध्यान करना हमारा कर्त्तव्य है। धर्म के परिवर्तनशील अंगों की ओर मैं ध्यान नहीं दे रहा हूँ, किन्तु धर्म का जो सार है, वह मैं लोगों को दे रहा हूँ। वह सनातन है। वह परिवर्तनशील नहीं है। वह तीनों काल से वर्तमान है। सर्वत्र समता और एकता की स्थापना होनी चाहिए, फिर भी मनुष्य के

बाह्य जीवन में वैषम्य और विभिन्नता रहेगी। किन्तु, समता स्थापित करना हमारा ध्येय रहेगा। जब बच्चे छोटे रहते हैं, तब उन्हें अनुशासन में रखना माता-पिता का कर्तव्य होता है, किन्तु जब वे युवा हो जाते हैं, तब उन्हें स्वाधीनता देना और उपदेश देना माता-पिता का कर्तव्य हो जाता है। जब माता-पिता वृद्ध हो जाते हैं, तब बच्चों के ही अनुशासन में रहना उनका कर्तव्य हो जाता है। इसी प्रकार धर्म बदलते रहते हैं। किन्तु, बच्चों को प्यार करना और उनकी सेवा करना माता-पिता का तीनों अवस्थाओं में समान धर्म होता है। अतएव बच्चों को प्यार करना एक सनातन धर्म है। इसी प्रकार समाज की अवस्था में परिवर्तन होने से उसके धर्मों का भी परिवर्तन हो जाता है। जब समाज बाल्यावस्था में था, तब राजा की आवश्यकता थी। उस समय प्रजागण को अनुशासन में रखना राजाओं का धर्म था और राजा की आज्ञा का पालन करना प्रजा का। किन्तु, अब समाज बाल्यावस्था में नहीं है। इसलिए अब राजाओं का काम समाप्त हो गया है और लोक-प्रतिनिधियों के हाथ में राज्य-संचालन की शक्ति आ गयी है। अब 'राजा कालस्य कारणम्' का स्थान 'प्रजा कालस्य कारणम्' ने ले लिया है। प्राचीन काल में सम्राटों और विद्वानों को भी जितना ज्ञान प्राप्त नहीं था, आज विज्ञान की उन्नति के कारण इतना ज्ञान साधारण लोगों को प्राप्त हो गया है। अकबर बादशाह यह जानते ही नहीं थे कि अमेरिका और मास्को कहाँ हैं? किन्तु आज तो स्कूल के बच्चे भी ये बातें जानते हैं। किन्तु सम्पूर्ण समाज को एकरूप बनाना और समाज में अधिक समानता लाना—ये मूलतत्त्व दोनों ही कालों में समान रूप से रहे हैं। प्राचीन काल में समानता के लिए भूमि-वितरण की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उस समय बहुत-सी जमीन परती रह जाती थी—जन-संख्या कम थी। किन्तु आज भूमि-वितरण की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी है।"

युगधर्म

भूदान-यज्ञ युगधर्म है। युगधर्म का अर्थ, और भूदान-यज्ञ का क्यों युगधर्म मानना उचित है, यह अच्छी तरह समझना आवश्यक है। यह समझ पाने से लोग भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रेरणा प्राप्त करेंगे। देश में किसी समय समाज की तत्कालीन स्थिति के अनुसार ऐसे किसी काम को

अनिवार्य आवश्यकता आ पड़ती है, जिसके पूरा होने से देश की अन्य बहुतेरी समस्याएँ स्वयमेव हल हो जाती हैं। देश के सर्वतोमुखी कल्याण और प्रगति का पथ सुगम हो जाता है। और, इस कार्य में असफलता मिलने से देश के कल्याण की सारी चेष्टाएँ व्यर्थ हो जाती हैं तथा अन्यान्य समस्याओं का समाधान असम्भव हो जाता है। 'एकै साधे सब सधे'—ऐसे महान् कर्तव्य-कार्य को युगधर्म कहा जाता है। इससे पहले जो सब विचार किया गया है, उससे यह बात स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है कि अविलम्ब शांतिपूर्ण मार्ग से भारत की भूमि-समस्या का समाधान न होने से देश में 'ज्वालामुखी' फट पड़ेगा और देश की अन्य किसी भी बड़ी समस्या का उचित समाधान कर सकना सम्भव नहीं होगा। देश में सरकारी या गैर-सरकारी तौर पर जो सब कल्याणमूलक प्रयत्न हो रहे हैं, वे बेकार हो जायेंगे। आर्थिक साम्य-स्थापना महात्मा गांधी के व्यवस्थित रचनात्मक कार्यों में अन्यतम थी। किन्तु, समाज के विभिन्न क्षेत्रों की अवस्था इतनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है कि इसे अब मात्र अन्यतम रचनात्मक कार्य मानने से काम नहीं चल सकेगा, बल्कि सर्वश्रेष्ठ मानकर अपनी सारी शक्ति इसमें लगानी पड़ेगी और सर्वप्रथम तथा अविलम्ब इसे सार्थक कर दिखाना होगा। ऐसा न होने से अभी जो रचनात्मक प्रयत्न हो रहे हैं, वे सब नष्ट हो जायेंगे, विकारग्रस्त हो जायेंगे और दूसरी किसी भी बड़ी समस्या का समाधान सम्भव नहीं होगा। यदि शांतिपूर्वक भूमि-समस्या का समाधान हो जाय और सामाजिक साम्य प्रतिष्ठा का आधार सुदृढ़ हो जाय, तो सभी रचनात्मक प्रयत्नों का मार्ग सफलतापूर्वक खुल जायगा। इसीलिए 'भूदान-यज्ञ' इस युग का युगधर्म है। विनोबाजी ने कहा है "आप सब लोगों से मैं यह बात कहना चाहता हूँ कि 'भूदान-यज्ञ का काम एक अच्छा काम है'—केवल यही सोचकर आप यह काम न करें, बल्कि यह बात सोचें कि यह युगधर्म है—यह एक ऐसा कार्य है जिसके सफल होने से अन्य सब काम सफल होंगे और जिसके विफल होने से सब काम विफल होंगे। ऐसा भाव मन में अनन्य रूप से उदित होने पर ही प्रत्येक व्यक्ति की सर्वोत्तम शक्ति को इसमें लगाने का प्रश्न उठता है।'

स्वधर्म एवं नित्य तथा नैमित्तिक धर्म

भूदान-यज्ञ के संकल्प को सार्थक करने के लिए गम्भीर, आवश्यक और एकाग्र भाव से इस काम में आत्मनियोग करना अनिवार्य है। विनोबाजी

चाहते हैं कि भूदान-यज्ञ के कार्यकर्ता इस काम को 'स्वधर्म' मानकर इसमें अनन्य भाव से आत्मनियोग करें। जो लोग भूदान-यज्ञ में भूमि देंगे, वे भूदान-यज्ञ के सेवक और कार्यकर्ता माने जायेंगे। गरीब किसान दाता तो भूदान-यज्ञ के सैनिक ही माने जाते हैं। अतएव 'स्वधर्म' क्या है, यह समझना सबके लिए आवश्यक है, जिसमें कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी अंतर्दृष्टि से यह बात समझ ले कि यह उसका स्वधर्म है या नहीं?* इस प्रसंग में 'नित्यधर्म' और 'नैमित्तिक धर्म' का भेद समझना आवश्यक है। 'स्वधर्म', 'नित्यधर्म' और 'नैमित्तिक धर्म' की व्याख्या करते हुए कार्यकर्ताओं से विनोबाजी ने कहा है: "कभी-कभी हमें घर-गृहस्थी की चिन्ता करनी पड़ती है और इसीलिए हम लोग विशेष समय नहीं बचा पाते हैं। वही हमारी सामर्थ्य की सीमा है, यह मानकर हमें समाधान ढूंढना पड़ेगा। घर के काम के अतिरिक्त कुछ सार्वजनिक काम भी हमें करने पड़ते हैं। उसके लिए यदि हम कोई नया काम न कर पायें, तब पुराने काम से नये काम की तुलना कर लेना हमारा कर्तव्य है। किन्तु, यदि नया काम पुराने काम से श्रेष्ठ हो, तो पुराना काम छोड़ देना होगा—ऐसी बात नहीं है। धर्म के क्षेत्र में, जो धर्मश्रेष्ठ होगा, वही ग्रहण करना होगा और जो छोटा होगा, उसका परित्याग करना होगा—ऐसी बात भी नहीं है। परन्तु, यह सोच लेना पड़ेगा कि जो काम हमारे हाथ में है, वह बड़ा हो या छोटा, हमारे लिए स्वधर्म है अथवा नहीं। यदि हम इस सिद्धान्त को मान लें कि हम जो काम कर रहे हैं, वह हमारा 'स्वधर्म' है, तो हमें यह काम करते जाना चाहिए। जिसका 'स्वधर्म' भिन्न है, उसे हमारे काम में योगदान नहीं करना चाहिए। उसका दु:खित होना ठीक नहीं है। वे लोग, जो हमारे काम के प्रति सहानुभूति रखते हैं, उनके लिए यही यथेष्ट है, ऐसा मान लेना ठीक है। किन्तु, आत्म-निरीक्षण द्वारा यदि यह जान पड़े कि हमारी बुद्धि इस नये काम को ही बुनियादी काम मानती है, तो हमें अपने ऊपर लदा अन्य बोझ विवेचनापूर्वक हटा देना होगा और उस नये काम में लग जाना होगा। उस मामले में यह सोचना ठीक नहीं होगा कि हमारे हाथ में जो काम था, उसका क्या होगा? जिस समय

* विनोबाजी के 'गीता-प्रवचन' का तीसरा, छठा और सातवाँ अध्याय इस सम्बन्ध में देखा जा सकता है।

मन में यह निश्चय हो जाता है कि यही काम बुनियादी काम है, उसी समय वह काम 'युगधर्म' हो जाता है। 'युगधर्म' नैमित्तिक होता है। वह ४०-५० वर्षों तक नहीं चलता, किन्तु, जिस समय के लिए वह होता है, उस समय 'नित्य-धर्म' उसके सामने निष्प्रभ हो जाता है। उस काम का मूल्य सबसे अधिक हो जाता है। हम लोग प्रतिदिन प्रार्थना करते हैं। यह नित्यधर्म है। किन्तु, उसी समय यदि कहीं आग लग जाय, तो हमें अपनी प्रार्थना बीच में ही रोककर उसे बुझाने के लिए जाना पड़ता है, क्योंकि नैमित्तिक धर्म अधिक शक्तिशाली होता है। जिन नैमित्तिक धर्मों के सम्बन्ध में हम लोग निःसशय हो गये हैं, उनके लिए यदि हमें 'नित्यधर्म' का त्याग करना पड़े तो वैसा करना पड़ेगा।" न्होंने एक अन्य स्थान पर इस सम्बन्ध में कहा है : "रूस और चीन में जो काम हिंसा से पूरा हुआ है, वही यहाँ मैं अहिंसात्मक ढंग से पूरा कर रहा हूँ। सिर्फ यही नहीं, इस काम के द्वारा गांधी-विचार प्रसारित हो रहे हैं। यह अहिंसा के मार्ग से समाज का रूप बदलने का महान् काम है। इसकी तरह आज और कोई काम नहीं है। अकाल-पीड़ितों की सेवा आदि अन्य जो कार्य हैं, वे नित्य के कार्य हैं, किन्तु यह कार्य युगधर्म का महान् नैमित्तिक कार्य है। मान लीजिये, मैं सन्ध्योपासना कर रहा हूँ, ऐसे समय गाँव में कहीं आग लग जाती है। मैं प्रार्थना बन्द करके शीघ्र ही वहाँ के लिए रवाना हो जाऊँगा। भजन का महत्त्व कम नहीं है, किन्तु वह प्रतिदिन का काम है और आग बुझाने का यह काम नैमित्तिक है, क्योंकि उसका विशेष परिस्थिति से उद्भव हुआ है। इसी प्रकार अन्य बहुत-से बड़े-बड़े काम हैं, किन्तु तुलना करने पर इस काम का महत्त्व सबसे अधिक प्रकट होता है। यदि यह समझकर सब लोग इस काम में लग जायें, तो सारे संसार में हम क्रांति उत्पन्न कर सकेंगे। मैं गणितज्ञ हूँ। प्रत्येक शब्द तौलकर कह रहा हूँ।"

परमधर्म

भूदान-यज्ञ के काम में जीवनदान के लिए आह्वान किया जा रहा है। कार्यकर्ताओं से सारा समय और शक्ति इस काम में लगाने के लिए कहा जा रहा है। ऐसे कुछ कार्यकर्ता हैं, जो कई वर्षों से रचनात्मक काम करते आ रहे हैं। वे कहते हैं कि 'उन्होंने जिन सब कामों में आत्मनियोग किया है, वे सब

पुण्य-कार्य रहे हैं। जो काम वे लोग अनेक वर्षों से करते आ रहे हैं, उसे करते जाना उनका धर्म है। ऐसा कहा जाता है कि भूदान का काम सर्वश्रेष्ठ है। किन्तु वे लोग, जो सेवा-कार्य करते आ रहे हैं, वह 'गीता' की शिक्षा के अनुसार उनके लिए 'स्वधर्म' है। स्वधर्म गौण कार्य होने पर भी परित्याज्य नहीं है। इसके अतिरिक्त परधर्म श्रेष्ठ होने पर भी उसे ग्रहण करना उचित नहीं है। इसलिए श्रेष्ठ और लघु का विचार यहाँ नहीं उठ सकता। जो काम वे लोग करते आ रहे हैं और जो करना उनका कर्तव्य है, वह उन्हें करना चाहिए।'— जो लोग ऐसी बातें कहते हैं, उन्हें समझाने के लिए विनोबाजी कहते हैं : "धर्म-विचार की भी एक सीमा है। श्रीकृष्ण ने सारा जीवन अस्त्र लेकर युद्ध किया था, किन्तु एक समय आया, जब उन्होंने घोषणा की कि वे अब अस्त्र ग्रहण नहीं करेंगे—निरस्त्र रहेंगे। इस प्रकार जो सतत अस्त्रों का व्यवहार करते थे, उन्होंने भविष्य में फिर कभी अस्त्रों का व्यवहार न करने की घोषणा की। किन्तु, इससे उन्होंने धर्मयोग का त्याग नहीं किया, बल्कि उन्होंने इस काम के द्वारा धर्म को ऊपर उठाया था। जिसे हम लोग पुण्यकार्य या धर्मकार्य कहते हैं, वह कुछ दूर तक आत्म-विकास में सहायक होता है, परन्तु उसके बाद विकास के मार्ग में बाधक बन जाता है। इसीलिए शास्त्र में कहा गया है : 'धर्मोऽपि हि मुमुक्षूणां पापमुच्यते'। मुमुक्षु के लिए धर्म भी पाप में परिणत हो जाता है।"

कर्तव्य की भावना भी कई स्थलों पर विघ्नदायक बन जाती है। इसलिए विनोबाजी कहते हैं : "तुलसीदास ने रामायण में लिखा है कि लक्ष्मण के समक्ष ऐसी एक समस्या आयी थी। राम ने वन जाते समय लक्ष्मण से कहा था कि माता-पिता की सेवा करना उनका कर्तव्य है। लक्ष्मण यदि रामचन्द्र की इस बात को मान लेते और वाल्मीकि इस प्रकार लिखते कि लक्ष्मण माँ-बाप की सेवा करने के लिए घर पर रह गये थे, तो ऐसा कौन है, जो उसमें दोष बताता? हम कहते कि लक्ष्मण ने रामचन्द्र के साथ वन-गमन का लोभ संवरण कर लिया और वे माता-पिता की सेवा में निमग्न हो गये। यहाँ 'स्वधर्म' का प्रश्न उठ जाता है। लक्ष्मण के समक्ष भी 'स्वधर्म' का प्रश्न था, किन्तु उन्होंने रामचन्द्र से कहा - 'आप जो कहते हैं, वह ठीक है, किन्तु इतनी बड़ी-बड़ी बातें मैं नहीं समझता। मैं तो बालक हूँ और आपके स्नेह में पला हूँ। इसलिए आप जो कह रहे हैं, उससे मेरे 'स्वधर्म' का पालन नहीं होगा।' यह कहकर वे रामचन्द्र के साथ

कन चले गये। छोटे-छोटे धर्म होते तो है, किन्तु परमधर्म एक ही होता है। जहाँ दोनो ही साधारण और छोटे धर्म हो, वहाँ दोनो के बीच तुलना हो सकती है, किन्तु जहाँ एक छोटा धर्म हो और एक परमधर्म, वहाँ तुलना नही हो सकती। जहा दोनो ही साधारण धर्म होते है, वहाँ 'स्वधर्म' का प्रश्न आता है और ऐसी स्थिति में 'स्वधर्म' के गौण एव 'परधर्म' के श्रेष्ठ होने पर भी 'स्वधर्म' ही स्वीकार किया जाता है। किन्तु, जहाँ परमधर्म और स्वधर्म, दोनो ही उपस्थित होते है, वहाँ ऐसा निर्णय नही किया जाता। वहाँ परमधर्म स्वीकार करना पडता है।"

परमधर्म को और भी स्पष्ट करने के लिए विनोबाजी कहते हैं . "परमधर्म के आचरण के लिए अपना स्वधर्म परमधर्म के साँचे में ढालना होगा। यदि उसे उस साँचे मे ढालना सम्भव न हो, तो स्वधर्म का त्याग करना होगा। परमधर्म का सामना होने पर 'स्वधर्म' त्यागना ही पडता है। उस समय भी स्वधर्म से लगे रहना ठीक नही है। अतएव आचरण के लिए स्वधर्म को परमधर्म के साँचे में ढाल लीजिये या स्वधर्म का त्याग कीजिये—यही धर्म-रहस्य है।"

भारत मे कोई व्यक्ति किसी भी सामुदायिक क्षेत्र में जिस किसी भी सेवाकार्य में क्यो न लगा हो, यदि वह निष्पक्ष भाव से विचार करे, तो उसे मालूम पडेगा कि भूदान यज्ञ 'परमधर्म' है। अतएव उसे अपने काम को भूदान-यज्ञ के साँचे में ढालना चाहिए अथवा उसका त्याग कर भूदान-यज्ञ के काम में पूर्णत लग जाना चाहिए—तभी वह अपने परमधर्म का पालन कर सकेगा।

पूर्वजन्म का गरीबी से सम्बन्ध

कोई-कोई व्यक्ति कहते है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से धनी या गरीब होता है। अतएव गरीबो को गरीबी दूर करने की चेष्टा करना तथा भूमिहीनो को भूमि दिलाने की चेष्टा करना व्यर्थ है, क्योंकि पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के फल को मिटा सकना सम्भव नही है। उन्हें उनके भाग्य पर छोड देना चाहिए—विकृत मंज्ञान के कारण ही ऐसी बातें कही जाती हैं। धनी लोग अपने धन की रक्षा के लिए जिन सब मिथ्या तर्कों और दु कौशल का सहारा लेते है, उनमें यह अन्यतम है। समाज की आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण ही गरीबी पैदा हुई है और यह क्रमश बढती जा रही है, इस बारे में पहले विचार

किया जा चुका है। अतएव, पूर्वजन्म के किसी कुकर्म के फलस्वरूप मनुष्य गरीब होता है—ऐसा सोचना अनुचित और विवेक-बुद्धि के विरुद्ध बात है। शास्त्र कहता है कि जो पाप-कर्म करता है, उसका असुर-योनि में जन्म होता है। असुर-योनि का अर्थ है—मनुष्येतर प्राणियों की योनि, अर्थात् बाघ, साँप आदि योनियाँ। "तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्। क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥" अर्थात् नीच, द्वेषी, क्रूर अमंगलकारी, नराधमों को इस संसार में अत्यन्त आसुरी योनियों में बार-बार जन्म लेना पड़ता है। शास्त्र की बात छोड़ देने पर भी धनियों और दरिद्रों, दोनों वर्गों में अच्छे लोग भी हैं और बुरे लोग भी। विनोबाजी कहते हैं "पूर्वजन्म के पाप-पुण्य के फलस्वरूप इस जन्म में मनुष्य गरीब या धनी होता है यह धारणा गलत है। पूर्वजन्म के पुण्य से इस जन्म में सुबुद्धि और निरहंकारिता प्राप्त होती है और पूर्वजन्म के पाप से कुबुद्धि और दुष्कार्य करने की प्रवृत्ति मिलती है। यदि हमें सुबुद्धि प्राप्त हो, तो समझना चाहिए कि पूर्वजन्म में हमने पुण्यकार्य किया था और यदि दुष्कार्य करने की इच्छा हो, तो समझना चाहिए कि हमने पूर्वजन्म में पाप किया था।" वे आगे कहते हैं : "बुरे काम का फल गरीबी और अच्छे कर्मों का फल अमीरी है—ऐसी कोई बात नहीं है। शंकराचार्य का गरीब परिवार में जन्म हुआ था। तब क्या समझना होगा कि उन्होंने पूर्वजन्म में पाप किया था? पाप और पुण्य का परिणाम गरीबी और अमीरी नहीं है। पूर्वजन्म के पाप का फल है कुबुद्धि और पुण्य का फल है सुबुद्धि। शास्त्र कहता है कि जो अच्छा काम करते हैं, वे अगले जन्म में पवित्र कुल में जन्म लेते हैं और जो बहुत पुण्यवान् होते हैं, उनका योगियों के कुल में जन्म होता है। और, योगी लोग तो गरीब ही होते हैं। अतएव हमने पूर्वजन्म में पाप किया है या पुण्य, यह हमारी कुबुद्धि या सुबुद्धि से प्रकट होता है। किन्तु, हम लोगों के देश में तत्त्वज्ञान का बहुत गलत प्रयोग होता है। एक सन्यासी ने तो मुझसे यहाँ तक कहा था कि रोगी की सेवा करना गलत है, क्योंकि रोगग्रस्त व्यक्ति अपने प्रारब्ध का भोग करता है और उसकी सेवा कर हम उसके प्रारब्ध को क्षति पहुँचाते हैं। यह सुनकर मैं विस्मित रह गया। उत्तर में मैंने कहा कि सभीको तो अपने-अपने प्रारब्ध का भोग करना पड़ता है। मेरे सेवा करने से उसके प्रारब्ध पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रारब्ध इतना शक्तिशाली होता है कि वह अपने बल पर

ही चलता रहता है। किन्तु, मेरा धर्म तो सेवा करना है। इसलिए मैं तो सेवा करता रहूँगा। भगवान् यदि मुझे गरीब या धनवान् बनायेंगे, तो मेरी परीक्षा करने के लिए ही। जीवन एक परीक्षा है। अत पूर्वजन्म की बात उठाकर गरीबों की सेवा न करना बहुत बडी भूल है।"

कलियुग में क्या यह सम्भव है ?

लोग कहते हैं यह कलियुग है। यह सब अभी होना क्या सम्भव है ? इसके उत्तर मे विनोबाजी ने कहा है ' ' किन्तु, जिस श्रावस्ती में बुद्ध भगवान के निवास के लिए जमीन की आवश्यकता होने पर मोहरें बिछाकर जमीन लेनी पडी थी, उसी श्रावस्ती नगर में मुझ जैसे अकिंचन ने—भगवान बुद्ध की तुलना में जिसका कोई अस्तित्व नही है—इस कलियुग में ही एक सौ एकड जमीन प्राप्त की है। तब सोचिये कि यह कलियुग है या सतयुग ?" इस प्रसग में एक अन्य स्थान में उन्होने कहा है—त्रेतायुग म वामन ने जन्म ग्रहण किया था और द्वापरयुगमें दु शासन ने। किन्तु इस कलियुग मे ही श्री चैतन्य श्री रामकृष्ण, महात्मा गाधी आदि महापुरुषो ने जन्म ग्रहण किया है। अतएव वे कहते हैं 'युग हमें स्वरूप नही प्रदान करता। हम ही युग को स्वरूप प्रदान करनेवाले 'कालपुरुष' है। हम चेतन हैं। इसीलिए यह सब जड प्रकृति हम लोगो के हाथ में है। हम मिट्टी को जो कोई भी आकार क्या न दें, उसमें वह आपत्ति नहीं करती। आज ऐसा ममुन्नत समय आया है कि हमने इतिहास की एक अभतपूर्व घटना इसी समय अपनी आँखो से देखी है। इतिहास में आज तक कभी भी स्वाधीनता-युद्ध अहिंसात्मक मार्ग से सचालित हुआ है क्या ? अतएव भाइयो गलत रास्ते पर मत सोचिये। आज हमारी आँखो के सामने सतयुग आ रहा है और वह अत्यन्त तीव्रगति से आ रहा है। लोग कहते हैं, महायुद्ध आ रहा है। मैं कहता हूँ—आये। जितनी बार महायुद्ध होगा, उतनी बार ससार यह शिक्षा प्राप्त करेगा कि महायुद्धो के द्वारा ससार की किसी समस्या का समाधान नही होता। मै सभी महायुद्धो का स्वागत करता हूँ, क्योकि उनके परिणाम-स्वरूप सम्पूर्ण ससार को सीधे मेरे पास आना होगा और मुझसे कहना पडेगा कि 'हम लोग हार गये, अब हमें अहिंसा का रास्ता दिखा दीजिये'।" इस प्रसग में उन्होंने एक अन्य स्थान में कहा है दान देने से इनकार करनेवाले

किसी व्यक्ति से अब तक मेरी भेंट नहीं हुई है। मैं इसका अर्थ यह समझता हूँ कि सतयुग आ रहा है। पुराणों में चारों युगों के बारे में चर्चा की गयी है और कहा गया है कि प्रत्येक युग के समय की सीमा निर्धारित है। परन्तु उन चार युगों के अन्तर्वर्ती समय में भी दूसरे युग आ जा सकते हैं। जिस प्रकार दिन में प्रकाश और रात्रि में अन्धकार होता है, शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया नियत होती है, चन्द्रमा घटने के बाद पुनः वृद्धि को प्राप्त होता है, उसी प्रकार एक-एक युग के अनन्तर अन्यान्य युग भी आते जाते हैं। अभी कलियुग चल रहा है, चले, परन्तु इस कलियुग के बीच में ही सतयुग आ सकता है। और यदि अभी सतयुग चल रहा हो, तो इसके बीच में ही कलियुग भी आ सकता है। पुराण में हमने देखा है कि श्रीराम के युग में ही रावण-जैसा राक्षस भी था और इस कलियुग में ही असंख्य सत्पुरुषों का जन्म भी हुआ है। इसका अर्थ यह है कि युग तो केवल नाम के लिए है। ज्योतिष के अनुसार वह चलता है, किन्तु भावना के अनुसार एक ही युग में चारों युग आ जाते हैं और सबसे दीर्घकाल तक सतयुग ही कायम रहता है। कलि का अर्थ होता है—एक। उसका दुगुना होता है—द्वापर और उसके तिगुने और चौगुने को क्रमशः त्रेता और सतयुग कहते हैं। संस्कृत में कलि का अर्थ एक, द्वापर का दो, त्रेता का तीन और सत्य का चार होता है। इसका अर्थ यही है कि कलियुग की चार गुनी शक्ति सत्ययुग में होती है। बीच-बीच में कलि की ताकत बढ़ जाती है, किन्तु सत्य अधिक बलवान् है।"

मध्यवित्त-वर्ग की समस्या का समाधान

विनोबाजी जब बिहार के मानभूम जिले का भ्रमण कर रहे थे, तब एक व्यक्ति ने उनसे कहा कि वे गरीबों की समस्या के समाधान के लिए तो चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु मध्यवित्त-वर्ग की भी स्थिति खराब है। अतएव विनोबाजी को उनके लिए भी कुछ करना चाहिए। इस व्यक्ति ने यह भी कहा कि गरीबों की स्थिति तो कुछ ठीक भी है, क्योंकि हस्तशिल्प और शारीरिक श्रम का काम करके गरीबों की तरह जीवन-निर्वाह करने के वे अभ्यस्त हो गये हैं। किन्तु, मध्यम-वर्ग की स्थिति तो बहुत खराब है, क्योंकि स्वयं कुछ उत्पादन करने का उपाय उन लोगों के पास नहीं है। दूसरी ओर, धनिकों के हाथ में जो पैसा है, वह भी उनके हाथ में नहीं है। इसीलिए वे दुर्दशाग्रस्त हैं। इसके उत्तर में

जो उत्पादन होता है, वह मौलिक उत्पादन है। अर्थात् अन्य जिन चीजों का उत्पादन होता है, वे भूमि-उत्पादित वस्तुओं से ही तैयार होती हैं। शोषण बन्द करने के लिए जरूरी है कि पहले मूल उत्पादन के क्षेत्र में ही विकेन्द्रीकरण किया जाय। अतएव भूदान-यज्ञ के द्वारा पहले नवीन समाज-रचना के आधार-स्वरूप घर-घर में भूमि-वितरण की व्यवस्था की जा रही है। (२) वर्तमान परिस्थिति में भूमि की समस्या ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भूमि का पुनर्वितरण इस युग की माँग है। यही युगधर्म है। किन्तु भूमिदान की प्राप्ति और भूमि के वितरण से ही यह समाप्त नहीं हो जायगा। भूमि के साथ-साथ ग्रामोद्योगों की व्यवस्था करनी होगी। भूमि का पुनर्वितरण होने से ग्राम-उद्योगों की व्यवस्था करने का काम सरल हो जायगा और उसके द्वारा अनुकूल वातावरण की सृष्टि होगी।

(ख) 'ग्रामोद्योगप्रधान'—भारत की गरीबी की समस्या की मीमांसा केवल भूमि के द्वारा सम्भव नहीं है, पूरक वृत्ति अथवा अनेक क्षेत्रों में प्रधान वृत्ति के रूप में गृह-उद्योग चाहिए। कर्म-विभाजन नहीं होने से आर्थिक साम्य-प्रतिष्ठा सम्भव नहीं होगी। उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किये बिना आर्थिक क्षेत्र में कर्म-विभाजन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त सर्वोदय के आदर्श से कैसा भी काम क्यों न किया जाय उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए और सबको काम मिलना चाहिए। विकेन्द्रित उत्पादन या उद्योग-व्यवस्था में (१) प्रत्येक व्यक्ति को काम मिलना सम्भव होगा। (२) उससे काम का प्रकार और प्रकृति-निरपेक्ष होकर आर्थिक मूल्य भी स्वयं ही समान हो जाता है। आर्थिक क्षेत्र में समता-स्थापना नहीं होने से समाज में समता-स्थापना सम्भव नहीं है। अतएव सर्वोदय-समाज रचना में गृह-उद्योगों को प्रधान स्थान देना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अनुकरणीय ढंग से कहा है "राम का नाम लेते समय मैं केवल 'राम' का ही उच्चारण नहीं करता, बल्कि 'सीताराम' भी कहता हूँ। उसका अर्थ यह है कि भूमि के पुनर्वितरण के साथ-साथ मैं ग्रामोद्योग भी चाहता हूँ। लोग प्रायः कहते हैं कि गृह-उद्योग में उत्पादित वस्तुओं का मूल्य अधिक होता है किन्तु वास्तविकता यह है कि मनुष्य की जीविका छीनकर, उसे बेकार बनाकर भूखा रखकर मशीनें जिन वस्तुओं का उत्पादन करती हैं, वे सस्ती नहीं, बल्कि महँगी होती हैं।

यदि मशीन उस बेकार को भोजन देने के लिए भी बाध्य हो, तो मिल में उत्पादित वस्तुओं का मूल्य बहुत अधिक हो। मशीनी उत्पादन के लिए होनेवाले व्यय का हिसाब करके देखिये, तो पता चले कि मशीन-उत्पादित वस्तुएँ सस्ती हैं या महँगी? कठिन परिश्रम से जिस वस्तु का उत्पादन किया गया है, उससे सस्ती तो वह वस्तु होगी ही, जो चोरी से लाकर बेची जा रही है। विष सस्ता है और अमृत महँगा, तो क्या सस्ता होने के कारण आप विष खरीदेंगे?"

अब प्रश्न यह है कि समाज की वर्तमान स्थिति में बड़े कारखानों पर अर्थात् केन्द्रित उद्योग पर पूर्णतः प्रतिबन्ध लगा देना क्या सम्भव है? नहीं, यह सम्भव नहीं है। तब किन-किन केन्द्रित उद्योगों को स्वीकार किया जाय और किस नीति से इसका निर्णय हो? इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन में प्रकाश डाला है। इसे सर्वोदय की आर्थिक आयोजना की संज्ञा दी जा सकती है। उन्होंने कहा है' "यन्त्र तीन प्रकार के हैं—समयसाधक, संहारक और उत्पादक। (१) मैं समयसाधक यन्त्रों का विरोध नहीं करता। रेलगाड़ी या विमान-सदृश यन्त्रों से उत्पादन-वृद्धि तो नहीं होती, पर समय बच जाता है। दस हजार घोड़े भी एक साथ मिलकर एक विमान के साथ प्रतियोगिता नहीं कर सकते। इसलिए हम ऐसे समयसाधक यन्त्र चाहते हैं। (२) तीर, बन्दूक, बम आदि जैसे संहारक अस्त्रों का अहिंसक व्यवस्था में स्थान नहीं है। इसलिए ऐसा यन्त्र हम नहीं चाहते। (३) उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—पूरक और मारक। जहाँ जन-संख्या अधिक हो और कोई यन्त्र लोगों को बेकार बनाये, वहाँ उसे मारक यन्त्र कहते हैं। किन्तु, जहाँ मनुष्य-शक्ति कम है और काम अधिक है, वहाँ वही यन्त्र मारक न रहकर पूरक बन जायगा। एक यन्त्र जहाँ एक देश में पूरक साबित होता है, वहाँ दूसरे देश में वह मारक हो जाता है। भारत में ट्रैक्टर की तरह के यन्त्र आने से प्रचण्ड रूप से बेकारी बढ़ेगी, किन्तु अमेरिका और रूस जैसे देशों में ट्रैक्टर जैसे यन्त्र मारक नहीं माने जायेंगे, बल्कि उत्पादक समझे जायेंगे। इस प्रकार एक यन्त्र एक समय में पूरक रहता है और दूसरे समय मारक बन जाता है। देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई यन्त्र पूरक या मारक माना जाता है। अतएव यन्त्र के प्रति एकदम आसक्ति या विरोध का भाव रखना उचित नहीं है। यन्त्र की उपयोगिता का विचार करने के बाद ही हम उसे ग्रहण करेंगे। किन्तु, यदि

यह बात पहले कही जा चुकी है। परिवार में समता का यही आदर्श प्रतिष्ठित है। परिवार में माँ और सन्तान में, पिता और पुत्र में, पति और पत्नी में यही एकात्मबोध विद्यमान है। वहाँ किसीकी योग्यता कुछ भी क्यों न हो, सबकी जीवन-यात्रा का मान एक-सा होता है। मनुष्य ने परिवार में एकता और समता की जो शिक्षा ग्रहण की है, उसे सम्पूर्ण समाज में प्रसारित करना सर्वोदय का उद्देश्य है। परिवार को हटा देने पर समाज में ग्राम ही मनुष्य के सबसे निकट होता है। इसीलिए एकात्मबोध को परिवार से पड़ोसी तक, अर्थात् ग्राम तक प्रसारित करना मनुष्य के लिए सबसे अधिक सहज होगा।

(२) शासन-विहीन समाज-व्यवस्था की ओर बढ़ने के लिए शासन शक्ति का विकेन्द्रीकरण करने की आवश्यकता है। राष्ट्र के सभी प्रकार के प्रश्न ग्राम में पैदा हो सकते हैं और होते भी हैं। इसके अतिरिक्त सामूहिक जीवन के क्षेत्र में ग्राम ही सबसे नीचे है। इसलिए विकेन्द्रीकरण की अंतिम सीमा के रूप में ग्राम ही ग्रहण किया गया है।

(३) आर्थिक व्यवस्था का, जितनी दूर तक सम्भव हो, विकेन्द्रीकरण होने की आवश्यकता है। जिन उद्योगों का विकेन्द्रीकरण किया जा सकता है, उन सबको आत्मनिर्भरता की दृष्टि से गृह-उद्योगों के रूप में चलाना सम्भव नहीं है। अनेक उद्योगों को ग्रामोद्योगों के रूप में चलाना होगा। जैसे, वस्त्र-स्वावलम्बन की दृष्टि से सूत कातने और वस्त्र-बुनाई को गृह-उद्योगों के रूप में चलाना होगा परन्तु कागज आदि का घर में उत्पादन कर सकना सम्भव नहीं होगा। इन सभी उद्योगों को ग्रामोद्योगों के रूप में चलाना पड़ेगा। अतएव आर्थिक क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण के लिए ग्राम का अवलम्बन किया गया है।

(४) केन्द्रित व्यवस्था में किसी योजना के विफल होने से सम्पूर्ण समाज और देश को क्षति पहुँचती है। यदि योजना का क्षेत्र यथासम्भव सकुचित किया जाय तो उसकी विफलता समाज और देश के अन्य भागों को क्षतिग्रस्त नहीं कर सकेगी। इस दृष्टि से यदि प्रत्येक ग्राम अपनी योजना बनाये तो उसकी विफलता का प्रभाव केवल उस ग्राम पर पड़ेगा। उससे दूसरे ग्रामों का अनिष्ट नहीं होगा बल्कि वे उससे शिक्षा ग्रहण कर सकेंगे।

(५) प्राचीन काल में ग्राम ही आर्थिक और शासन व्यवस्था का केन्द्र था। ग्राम-पंचायतों के द्वारा शासन और आर्थिक व्यवस्था का संचालन होता

था। लोक-मानस में उसकी स्मृति अब भी बची हुई है। अतएव ऐतिहासिकता की दृष्टि से ग्राम को ग्रहण करना समीचीन और जनमन के अनुकूल है।

(६) स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व नवीन समाज-रचना के लिए जो रचनात्मक काम हो रहे थे, वे स्वाधीनता-आंदोलन के माध्यम से किये जाते थे। उस समय स्वाधीनता-प्राप्ति ही युग की माँग थी। स्वाधीनता-आंदोलन उस समय युगधर्म था। अतएव नवीन समाज-रचना का काम उसके माध्यम से न करके और किसी दूसरे मार्ग का अवलम्बन करने से कोई फल प्राप्त नहीं होता। अब युग-परिवर्तन हुआ है। वर्तमान युग की माँग भूमि का समवितरण और समता-स्थापना है। अतएव भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के माध्यम से सर्वोदय-प्रतिष्ठा के सभी प्रयत्न किये जाने का सुयोग आ गया है। अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए हमें यह नवीन माध्यम प्राप्त हुआ है।

सर्वोदय-सूत्र

बोधगया-सर्वोदय-सम्मेलन में श्री जयप्रकाश नारायण द्वारा जीवनदान का आह्वान किये जाने पर विनोबाजी ने अपने जीवन को समर्पित करते हुए उन्हें एक पत्र लिखा। वे जीवन का समर्पण क्यों कर रहे हैं इसे उन्होंने अपने चार शब्दों में प्रकट किया है। वे शब्द हैं 'भूदानयज्ञमूलक, ग्रामोद्योगप्रधान अहिंसात्मक क्रांति'। यह चार शब्दों के द्वारा रचित एक महान सूत्र है। सूत्र के रूप में इसमें सर्वोदय का, अर्थात नवीन समाज-रचना का आधार, स्वरूप, साधन और उद्देश्य प्रकट है। विनोबाजी ने इस सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि प्रथम शब्द 'भूदान-यज्ञ' इसका आधार है और अन्तिम शब्द 'क्रांति' इसका उद्देश्य है। द्वितीय शब्द 'ग्रामोद्योगप्रधान' इसका स्वरूप और तृतीय शब्द 'अहिंसा' इसकी साधना का उपाय है। 'क्रांति' शब्द की व्याख्या इसके पूर्व की जा चुकी है। बाकी तीन शब्दों के व्यवहार का उद्देश्य क्या है, यह समझने की आवश्यकता है। उससे सर्वोदय के आधार, स्वरूप और साधना के उपाय के सम्बन्ध में स्थिति स्पष्ट हो जायगी।

(क) 'भूदान-यज्ञमूलक'—(१) वर्तमान सामाजिक विकृति का मूलकारण है शोषण। केन्द्रित उत्पादन व्यवस्था के द्वारा ही समाज में शोषण चल रहा है। भूमि के बारे में भी यही व्यवस्था चल रही है। भूमि में

हम यत्र के प्रति आसक्त हो और यह कहें कि मिल के साथ प्रतियोगिता करने योग्य यत्र ग्रामोद्योग में नहीं है, इसलिए हम उसका व्यवहार नहीं करेंगे तो ऐसा कहने का मतलब यह होगा कि हम उस ढग से चिन्तन नहीं करते, जिस ढग से करना चाहिए। पाश्चात्य देश में किसी व्यापार को चलते देखकर ही हम उस चक्र या धोखे में पड़कर वैसी बात कहते हैं। इस सम्बन्ध में भी गांधीजी ने हमें सावधान कर दिया था कि हम गलती कर रहे हैं। मैंने देखा है कि जहाँ हम समता की बात कहते हैं, वहाँ हमारे सामने उसका विरोध कर विषमता की बात कोई नहीं कह पाता। किन्तु, वे 'एफिशियेन्सी' या दक्षता की बात उठाते हैं। वे कहते हैं कि आप समतावादी हैं किन्तु हम दक्षतावादी हैं। इस प्रकार वे एक गुण के विरुद्ध दूसरा गुण खड़ा कर देते हैं। फलत विरोध चलता रहता है। आजकल पूँजीवादियों ने दक्षता की आवाज उठायी है। मैं भी दक्षता चाहता हूँ, किन्तु मैं यह नहीं चाहता कि परिवार के कुछ लोगों का भोजन मिले और बाकी लोग भूखे रहें। मैं चाहता हूँ कि सब लोग भोजन पायें। यदि वर्तमान परिस्थिति में ग्रामोद्योग या यत्र सबके भोजन की व्यवस्था करने में सक्षम हो, तो उसे ग्रहण करना कर्तव्य है। कुछ लोगों के स्वार्थसाधन के लिए बाकी लोगों को बेकार रखकर हम सक्षम होने का दावा नहीं कर सकेंगे।

भारत में आज उत्पादन बहुत कम है और बेकारी बहुत अधिक है। असंतोष की सृष्टि इसीलिए हुई है। और वह समय-समय पर अवसर पाकर प्रकट हो रहा है। इसके प्रतिकार के लिए कुछ करना ही पड़ेगा। असंतोष मिटाने के लिए चेष्टा की जानी चाहिए। गांधीजी का यह नियम था कि जिसकी आवश्यकता सबसे अधिक होती थी, उसे वे सहायता प्रदान करते थे। कवि दुखायल ने कहा है कि सहायता देने का क्रम इस प्रकार होना चाहिए—पहले भूखा, फिर दुःखी और तब सुखी। किन्तु आज इसके विपरीत काम हो रहा है। इसलिए गांधीजी सदा एक ही बात सोचते थे कि जिसकी आवश्यकता सबसे अधिक है उसकी सहायता करने का उपाय किया जाना चाहिए। इस अन्वेषण के फलस्वरूप ही चरखे का आविष्कार हुआ था। यह उनकी अद्भुत प्रतिभा है। यह उनकी काव्यशक्ति है। केवल कुछ पंक्तियाँ लिखने से ही कवि नहीं बना जाता। व्यासाचार्य ने कहा है 'कवि क्रान्तदर्शी होता है।' जिसकी

दृष्टि विरखी है, जो दूरदर्शी और सूक्ष्मदर्शी है, वही कवि है। इस अर्थ में गांधीजी भी कवि थे। उन्होंने कुछ वर्ष पहले ही यह दिया था कि भारत के लिए ग्रामोद्योग नितान्त आवश्यक है। उन्होंने नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, भूमि के पुनर्वितरण आदि की बात कई वर्ष पहले ही कह दी थी। उन्होंने जितना बड़ा उपकार किया है कैसी महती उनकी बुद्धिमत्ता थी, कितनी प्रतिभा और कितना वात्सल्य उनके हृदय में था। उन्होंने हम लोगों के लिए कितना कुछ किया। हमने उनसे ही प्रकाश पाया है। फिर भी हम आज कुल्मुहे रहे हैं। हम ऐसे अभागे है।"

स्वावलम्बन की दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्राथमिक आवश्यकता पूरी करने के लिए यदि भोजन और वस्त्र का उत्पादन घर में कर सकना सम्भव न हो, तो ग्राम में उसका उत्पादन करना होगा। इसके अतिरिक्त जो कच्चा माल जिस ग्राम में पैदा होता है और जहाँ उसे तैयार माल में परिणत कर सकना सम्भव हो, वहीं उसके उत्पादन की व्यवस्था करनी होगी और तैयार माल ही ग्राम के बाहर भेजना होगा। जिस प्रकार सौर-मंडल में सूर्य केन्द्रबिन्दु होता है, उसी प्रकार ग्रामोद्योगरूपी सौर-मंडल में खादी सूर्य है। उसे केन्द्र बनाकर अन्य ग्रामोद्योग खड़े हो जायेंगे। इसीलिए महात्मा गांधी जीवनभर लोगों को यह समझाते रहे कि अपने वस्त्र के लिए स्वयं सूत कातिये और जो लोग स्वयं सूत न कात सकें, वे खद्दर खरीदकर व्यवहार में लायें। किन्तु, स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अनेक लोग कहते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए ही खादी की आवश्यकता थी। अब खादी की और क्या आवश्यकता है? उन लोगों के सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है कि वे बुद्धिभ्रष्ट हैं। स्वाधीनता को सुदृढ़ करने और उसके संरक्षण के लिए खादी तथा ग्रामोद्योग अपरिहार्य हैं। यदि खादी का विकास न होगा, तो अन्य किसी भी ग्रामोद्योग का विकास सम्भव नहीं होगा। वैसा होने से गाँवों की गरीबी दूर कर सकना भी बहुत दूर की बात हो जायगी। वैसी स्थिति में ग्राम धनिकों एवं मिल-मालिकों के गाल में चले जायेंगे और स्वतन्त्र रूप से जीवन-यात्रा असम्भव हो जायगी। थोड़े में इसे यों कह सकते हैं कि ग्रामों की स्वाधीनता विलुप्त हो जायगी और परिणामस्वरूप देश की स्वतंत्रता को खो देने का रास्ता साफ हो जायगा। इसीलिए जो लोग खद्दर नहीं पहनते, उनसे विनोबाजी ने अनुरोध किया है कि

वे खद्दर खरीदें और मिल में बने कपड़े से जितना अधिक पैसा इसमें देना पड़े, उसे गरीबों को गुप्त दान किया मान लें। उन्होंने कहा है "यदि हम चार रुपये मूल्य की खादी पहनें, तो दो रुपये तो मिल का कपड़ा खरीदने में भी खर्च होते— यानी दो रुपये हम दान-धर्म में खर्च हुआ मान लें। यदि हिसाब किताब रखते हो, तो उसमें लिखें कि दो रुपये का कपड़ा और दो रुपये दान-धर्म की मद में खर्च हुए। देश की माँ-बहनों को यदि बचाना चाहते हैं, तो कुछ धर्म तो करना ही पड़ेगा। यदि इस तरह दान-धर्म करेंगे, तो गरीब बेकार नहीं होंगे। भीष्मपितामह ने कहा था "दरिद्रान् भर कौन्तेय, मा प्रयच्छेश्वरे धनम्"— अर्थात् गरीबों को धन दो, धनवानों को नहीं।"

सब लोग उत्पादक श्रम करें। सबको उत्पादक श्रम करने का सुयोग देना होगा। यह ग्रामोद्योग की मूल बात है। किन्तु केवल 'उत्पादक श्रम' कहना ठीक नहीं होगा, क्योंकि जो बड़े मशीनी उद्योग करोड़ों मनुष्यों को बेकार कर देते हैं, उनमें काम करनेवाले मजदूर भी तो उत्पादक श्रम ही करते हैं। कपड़े की मिल और चावल की मिल में मजदूर जो काम करते हैं, वह भी तो उत्पादक श्रम ही है। इसीलिए विनोबाजी ने गृह-उद्योगों में प्रयुक्त उत्पादक श्रम को 'द्रोहरहित' विशेषण प्रदान किया है। बेकारी उत्पन्न करनेवाले मशीनी उद्योगों में नियुक्त मजदूरों और ग्रामोद्योगों में उत्पादन करनेवाले मजदूरों के बीच यही अन्तर है। एक का श्रम द्रोहरहित होता है, अर्थात् दूसरे का उससे अनिष्ट नहीं होता और दूसरे का श्रम 'द्रोहकारी' होता है।

हमारी समाज-रचना ग्रामोद्योग प्रधान होगी। विनोबाजी ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है "प्रधान कहने का कारण यह है कि गौण रूप से और भी चीजें इसमें रहेंगी।" वे चीजें हैं—नयी तालीम, राष्ट्रभाषा, सामाजिक क्षेत्र में समता-स्थापना आदि। महात्मा गांधी द्वारा निर्दिष्ट १८ सूत्री रचनात्मक कार्यों में ये सब गौण विषय हैं। इनके अतिरिक्त स्थिति की आवश्यकता के अनुसार नयी बातें भी इसमें रहेंगी।

(ग) 'अहिंसात्मक'—विनोबाजी ने 'अहिंसात्मक' शब्द का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है "हमारी क्रांति का साधन 'अहिंसा' होगी। इसे हम सत्याग्रह भी कहते हैं। इसके चार अंग हैं (१) दुःख-कष्ट का वरण अर्थात् तपस्या,

(२) विचार-प्रचार, (३) नयी तालीम और (४) पाप अर्थात् अन्याय से असहयोग।"

नवीन समाज-रचना में अहिंसा तीन प्रकार से काम करेगी : (१) स्वतन्त्र जनशक्ति, (२) कर्तव्य-विभाजन और (३) विचार-शासन। इस सम्बन्ध में पहले विचार किया जा चुका है। राष्ट्रशक्ति का सहारा न लेकर या उसका प्रयोग न कर या उसकी अपेक्षा न कर सर्वसाधारण अपनी प्रेरणा से अपनी विधायक शक्ति को जाग्रत करके कार्य पूरा करेंगे। यह हिंसा के विरुद्ध होगा।—जैसे कानून बनने की प्रतीक्षा में न रहकर भूमि प्राप्त करने और वितरण करने का काम। ग्रामोद्योगों के क्षेत्र में भी जनशक्ति का निर्माण करके अग्रसर होना। कानून की सहायता से या सरकार की शक्ति के प्रयोग से ग्रामोद्योगों की उन्नति के लिए अपेक्षा नहीं करना। कर्तव्य-विभाजन है—राष्ट्रशक्ति या आर्थिक शक्ति का विकेन्द्रीकरण, अर्थात् शक्ति को केन्द्र से लेकर ग्रामों में वितरित कर देना। वह केवल प्रशासनिक अधिकारी (Administrative Authority) की सृष्टि करना नहीं है। विचार-शासन कहते हैं उस पद्धति को, जिसमें बाहरी शक्ति या कानून के भय से नहीं, बल्कि हृदय में विचार करके, समक्ष करके, आतंरिक प्रेरणा से सार्वजनिक सभी क्षेत्रों में अपने को परिचालित किया जाय।

अहिंसात्मक क्रान्ति-साधना के दो पक्ष : विधायक (Positive) और नकारात्मक (Negative)

भारत की वर्तमान समाज-व्यवस्था अत्यधिक विषमतामूलक है। एक ओर कुछ व्यक्तियों के पास करोड़ों रुपये की भूमि, सम्पत्ति और धन-दौलत जमा है और दूसरी ओर करोड़ों व्यक्ति दारुण दरिद्रता से दबे पड़े हैं। प्रेम के मार्ग से, अहिंसा के मार्ग से इस विषमता को दूर करना होगा। समतामूलक समाज या सर्वोदय-समाज की स्थापना करनी होगी। इसका आधार किस प्रकार तैयार किया जाय ? जिनके पास अधिक भूमि है, वे अपनी फालतू भूमि को समविभाजन या समवितरण के लिए समाज को अर्पित कर दें। भूमि किसीकी नहीं है। भूमि भगवान् की है, समाज की है। इसलिए भूमि पर व्यक्ति का स्वामित्व नहीं रह सकता। अतएव जिनके पास थोड़ी भूमि है,

चुका है, फिर भी इस प्रसग मे सक्षेप मे इनका उल्लेख आवश्यक है।' यह पचसूत्री साम्य निम्न प्रकार है.

(१) सभी मनुष्य समान है, क्योंकि सबमे एक ही आत्मा निवास करती है। आत्मा की एकता साम्य का मूल है। परमतत्त्व पूर्ण है। पूर्ण से जो उत्पन्न होता है, वह भी पूर्ण होता है और जो बच जाता है, वह भी। सब पूर्ण है। सब समान है। इसीलिए सभी मनुष्य समान है। साम्य के इस बुनियादी आदर्श को ग्रहण करने से यह जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे प्रतिफलित होता है और इस प्रकार साम्य का विकास होता है। यह बुनियादी साम्य अन्य चार प्रकार के साम्यो का मूल है।

(२) यद्यपि सभी मनुष्य समान है, तथापि देखा जाता है कि सबके जीवन का समान विकास नही होता अथवा एक ही दिशा मे सबका विकास नही होता। किसीका विकास एक दिशा मे होता है, किसीका दूसरी दिशा मे और किसीका तीसरी दिशा मे। किसीका विकास किसान के रूप मे हुआ है और किसीका मेहतर के रूप में। किसीका विकास वकील, डॉक्टर और जज के रूप में हुआ है। अपने-अपने विकास के अनुसार यदि सब लोग,अपनी-अपनी भूमिका मे सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से समाज की सेवा या समाज-हितकारी काम करे, तो सबकी सेवा का नैतिक मूल्य समान माना जायगा। किसान सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से खेत मे काम करे तथा जज साहब भी सच्चाई के साथ अक्लान्त भाव से अदालत मे मुकदमो का फैसला करें, तो दोनो की सेवाओ का नैतिक मूल्य बराबर होगा।' इन दोनो ही सेवाओ का नैतिक मूल्य समान है। माता सन्तान का पालन और गृह-परिचर्या करती है। पिता अर्थोपार्जन करता है। पिता की सेवा का नैतिक मूल्य अपेक्षाकृत अधिक नहीं है और न माता की ही सेवा का नैतिक मूल्य अधिक है। दोनो की सेवाओ का नैतिक मूल्य समान है। यही है जीवन के नैतिक क्षेत्र का साम्य।

(३) यो सच्चाई के साथ और अक्लान्त भाव से की गयी सभी सेवाओ का नैतिक मूल्य जिस प्रकार समान है, उसी प्रकार समाज की जो लोग इस प्रकार सेवा करते हैं, उनकी सामाजिक मर्यादा भी समान होगी। एक दृष्टान्त लें। जज साहब अथवा अध्यापक की सामाजिक मर्यादा एक मेहतर की सामाजिक मर्यादा से अधिक नही है, बल्कि समान है। मेहतर मल साफ करता है,

किन्तु यह तो कोई अनुचित कार्य नहीं है। प्राकृतिक नियमानुसार प्रत्येक व्यक्ति के शरीर से मल निकलता है। जिसका मल हो, वही साफ करे, यही उचित है। जब तक समाज के सभी लोग यह अवश्यमेव सम्पादन किया जानेवाला काम स्वयं करने का दायित्व ग्रहण नहीं करते, तब तक जो व्यक्ति सबके द्वारा अवहेलित कर्तव्यों का बोझ अपने कन्धे पर उठाकर निष्ठापूर्वक काम करता है, वह अवज्ञा या घृणा का पात्र तो नहीं है, बल्कि अधिक मर्यादा का पात्र है। माताएँ अपनी सन्तान का मल साफ करती हैं, इसलिए क्या माताओं की मर्यादा क्षुण्ण है ? मेहतर माँ की इसी भूमिका में समाज की सेवा करते हैं। यदि यह कहा जाता है कि मेहतर अपरिष्कृत ढंग से पाखाना साफ करते हैं और अपने को गंदा रखते हैं, तो इसके लिए उत्तरदायी कौन है? इसका दायित्व क्या उन पर नहीं है, जिन्होंने समाज को हाथों (Hands) और सिरों (Heads) में विभक्त करके विषमता की सृष्टि की है। जिनकी बुद्धि-वृत्ति का विकास हुआ है, ऐसे वैज्ञानिक, जज साहब, अध्यापक आदि ने परिष्कृत ढंग से पाखाना साफ करने की पद्धति का आविष्कार करके मेहतर को तत्सम्बन्धी शिक्षा क्यों नहीं दी ? उन्हें साफ रहने की शिक्षा उन्होंने क्यों नहीं दी ? अतएव समाज की सेवा करनेवाले सभी लोगों की सामाजिक मर्यादा समान है। यही सामाजिक जीवन के साम्य का आदर्श है।

(४) निष्ठा और सच्चाई के साथ की जानेवाली सभी सेवाओं का आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए, अन्यथा आर्थिक क्षेत्र में स्थायी रूप से साम्य ला सकना किसी भी प्रकार सम्भव नहीं है। एक व्यक्ति सच्चाई के साथ ८ घंटे परिश्रम करके जो पारिश्रमिक पायेगा, दूसरा व्यक्ति ठीक उतने ही समय में दूसरा काम करके उससे ५ सौ गुना पारिश्रमिक क्यों पायेगा ? ८ घंटे परिश्रम करके खेतिहर मजदूर एक रुपया पाता है और दूसरी ओर एक व्यक्ति दो घंटे एडवोकेट का काम करके ५ सौ रुपये लेता है। ऐसा क्या होगा ? पारिश्रमिक दिया जाता है भरण-पोषण के लिए। एडवोकेट के भरण-पोषण के लिए क्या किसान की अपेक्षा ५ सौ गुना अधिक की आवश्यकता होती है ? उसकी क्षुधा, उसकी सर्दी-गर्मी का बोध, उसकी सुख-भोग की स्पृहा और उसकी दुःखभोग की वितृष्णा कृषक की अपेक्षा क्या ५ सौ गुनी अधिक है ? ऐसा तो नहीं है। सभी मनुष्यों की आवश्यकताएँ समान हैं। थोड़ा-बहुत पार्थक्य

भी है, किन्तु वह मनुष्य के हाथ की पांच अँगुलियों के सदृश है—समान भी नही है और असमान भी नही। तब पारिश्रमिक में इतना अन्तर क्यों रहेगा? इसीलिए महात्मा गाधी कहते थे : 'यदि नाई की आठ घंटे की मजदूरी आठ आने हो, तो वकील को भी आठ घटे की मजदूरी आठ आने होनी चाहिए।' यही है आर्थिक जीवन के क्षेत्र में साम्य का आदर्श।

(५) जिस कारण से सभी मनुष्य समान हैं, उसी कारण से सबके मत को समान मूल्य और मर्यादा देनी होगी। यदि ऐसा हो, तो बहुमत के वोट के बल पर काम क्यों चलाया जायगा? सार्वजनिक वोट की प्रथा प्रचलित है। प्रत्येक व्यक्ति के अधिकार में एक वोट है। प्रत्येक के वोट का मूल्य समान है। किन्तु, जभी सौ व्यक्तियों में से ५१ व्यक्तियों के वोट एक ओर हो जाते हैं, तभी बाकी ४९ व्यक्तियो के वोट का कोई मूल्य नही रह जाता। यह साम्य-विरुद्ध है। इसलिए सभी सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकृत हों, यह आवश्यक है। तभी सबके मत को समान मूल्य और समान मर्यादा दे सकना सम्भव होगा। राष्ट्रीय क्षेत्र में और अन्य सभी क्षेत्रो में इस प्रकार सर्वसम्मति से काम चलने पर ही वास्तविक साम्य की प्रतिष्ठा होगी।

यह पाँच प्रकार का साम्य क्रांति-साधना का विधायक पक्ष है। नकारात्मक और विधायक, दोनो मार्गों से अग्रसर होने से ही सम्पूर्ण क्रांति की दिशा में अग्रगति हो सकेगी।

शासनमुक्त समाज

सर्वोदय-समाज-प्रतिष्ठा की योजना में समाज की चरम परिणति है—शासनमुक्त अवस्था। यह केवल Stateless Society अर्थात् शासनहीन समाज नही है। इसमे सामाजिक शासन भी नही रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपनी विवेक-बुद्धि से चलेगा। प्रत्येक व्यक्ति की विवेक-बुद्धि इस प्रकार विकसित होगी कि किसीके साथ किसीका स्वार्थजन्य सघर्ष नही होगा, अर्थात् किसी सघर्ष या विवाद का जन्म ही नही होगा। वास्तविकता के क्षेत्र में, सम्भव है, कभी भी इस स्थिति को पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकना सम्भव न हो। सम्पूर्ण रूप से शासनमुक्त समाज एक आदर्श है। आदर्श तक पहुँचने के लिए चिरकाल तक प्रयत्न होंगे, उसी ओर उत्तरोत्तर अग्रसर हुआ जायगा, किन्तु हो सकता

है कि कभी भी आदर्श तक न पहुँचा जा सके। किन्तु यही बात मन में रखकर आगे बढ़ा जायगा कि एक-न-एक दिन आदर्श तक पहुँचना होगा और पहुँचा जायगा। इसलिए इस आदर्श की अवहेलना नहीं करनी होगी, क्योंकि वैसा होने से अन्य सर्व व्यवस्थाओं का मूल शिथिल पड़ जायगा। आदर्श तो रेखागणित के बिन्दु के समान है। उसकी कल्पना की जाती है, पर कभी उसे देखा नहीं जाता, परन्तु उसकी अवहेलना करके कोई वैज्ञानिक वास्तव में आगे बढ़ भी नहीं सकता, क्योंकि वैसा होने से रेखागणित के परवर्ती सभी सिद्धान्त अचल पड़ जायँगे। कल्पना को त्याग कर कोई इंजीनियर किसी दालान का नक्शा तैयार नहीं कर सकता। इसी प्रकार शासनमुक्त समाज का आदर्श सामने न रखने से सर्वोदय-योजना के अनुसार राष्ट्रीय, आर्थिक,और सामाजिक क्षेत्र में किसी प्रकार की रचनात्मक व्यवस्था ठीक तरह से कर सकना सम्भव नहीं होगा। अतएव पूर्ण शासनमुक्त अवस्था आदर्श-स्वरूप रहेगी, परन्तु व्यावहारिक क्षेत्र में उसका प्रत्यक्ष रूप होगा शासन-निरपेक्ष समाज। शासन का आधार है दण्डशक्ति, इसीलिए उसे 'दण्ड-निरपेक्ष समाज' भी कहा जाता है।

सर्वोदय का चरम लक्ष्य 'शासनमुक्त समाज' क्यों है ? सर्वोदय का अर्थ है अहिंसात्मक समाज की रचना, अर्थात् हिंसामुक्ति। सामाजिक क्षेत्र में शासन और शोषण, इन्हीं दोनों के माध्यम से हिंसा प्रकट होती है। आर्थिक क्षेत्र में हिंसा शोषण का रूप ग्रहण करती है। शोषण के फलस्वरूप और उसकी प्रतिक्रिया से समाज में तरह-तरह की विशृंखलाएँ उत्पन्न होती हैं। इसीके लिए शासन की आवश्यकता होती है, इसीलिए 'शासन-व्यवस्था का आविष्कार हुआ है। समाज में शोषण का आधार है केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था, अर्थात् पूँजीवाद। आजकल उत्पादन के कल-पुर्जे केवल पूँजीपतियों के हाथ में नहीं हैं, बल्कि वे उत्तरोत्तर राष्ट्र के हाथ में जमा हो रहे हैं। व्यक्तिगत और गैर-सरकारी पूँजीवाद के दिन चले जा रहे हैं और उसके स्थान पर राष्ट्र-पूँजीवाद स्थापित हो रहा है। आजकल संसार की प्राय सब प्रकार की राष्ट्र-व्यवस्था ही वास्तविक रूप में सर्वाधिकारी बन गयी है, अर्थात् मानव-जीवन के सभी क्षेत्रों में राष्ट्र का नियन्त्रण स्थापित किया जा रहा है। Welfare State या कल्याणकारी राष्ट्र के रूप में आज राष्ट्र-व्यवस्था सर्वाधिकारी (Totalitarian) बन गयी है। इस महाविराट् राष्ट्रयंत्र को खिलाने में ही सर्वसाधारण

का अधिकाश उत्पादन समाप्त हो जाता है। राष्ट्र-व्यवस्था के संचालन के लिए समाज का एक बड़ा भाग आज अनुत्पादक-गोष्ठी में परिणत हो गया है। अनुत्पादक होने पर भी उनकी सुख-सुविधाओं की माँग सर्वोपरि मानी जा रही है। इस प्रकार शासन-व्यवस्था आज समाज के एक महाविराट् शोषक और हिंसा-संस्था के रूप में परिणत हो गयी है। इसीलिए समाज को हिंसामुक्त करने के लिए उसे शासनमुक्त भी करना होगा। किन्तु किस पद्धति या प्रक्रिया का अनुसरण करने से यह सम्भव हो सकता है ? शासन-संस्था पर प्रत्यक्ष रूप से आघात करने से उसका विनाश सम्भव नही होगा। यह सत्य है कि जितने दिनों तक शासन की आवश्यकता रहेगी, उतने दिनों तक शासन-व्यवस्था का सम्पूर्णत विनाश सम्भव नही होगा। शोषण बन्द करने के लिए पहले यह काम करना होगा, जिससे शोषण के लिए स्थान ही न रह जाय। अतएव श्रममूलक स्वावलम्बन और सहयोगी तथा सहकारी वृत्ति का विकास होना आवश्यक है। अर्थात् केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था के स्थान पर विकेन्द्रित और श्रममूलक उत्पादन-व्यवस्था का श्रीगणेश करना होगा। उससे जनशक्ति का विकास होगा। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं में से जिनका उत्पादन घर में ही कर लेना सम्भव हो, उन्हें गृह-उद्योग के रूप में ग्रहण करना होगा। जिनका उत्पादन घर में कर सकना सम्भव न हो, किन्तु ग्राम में कर सकना सम्भव हो, उन्हें ग्रामोद्योग के माध्यम से तैयार करना होगा। इसी प्रकार जिन वस्तुओं को ग्राम मे उत्पादित कर सकना सम्भव न हो, उन्हें यथाक्रम जिला, राज्य और राष्ट्र में उत्पन्न करना होगा। साराश यह कि पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था के स्थान पर स्वावलम्बी और सहकारी आर्थिक पद्धति की स्थापना करनी होगी। इस नवीन व्यवस्था में यन्त्रों का उपयोग कहाँ तक होगा, इस बारे में पहले ही विचार किया जा चुका है। केवल उद्योग का ही नहीं, कृषि-व्यवस्था का भी पूर्णत विकेन्द्रीकरण करना होगा और उसे स्वावलम्बन के आधार पर प्रतिष्ठित करना होगा। इसलिए भूमि का घर-घर में वितरण करना आवश्यक है जिसमें सभी लोग अपने हाथ से खेती करने का सुयोग पाय और भूमि का पूँजी के रूप में कोई व्यवहार न कर सकें। सबसे अधिक इसी बात की आवश्यकता है और सर्वप्रथम यही होना आवश्यक है। कारण, भूमि से जो उत्पादन किया जाता है, वही मौलिक उत्पादन होता है। अर्थात् अन्यान्य

सभी वस्तुओं का उत्पादन कृषि-उत्पादित वस्तुओं से या उनकी सहायता से होता है। इसलिए कृषि ही उद्योग का आधार है। इस दृष्टि से भूदान-यज्ञ अहिंसात्मक समाज-निर्माण का आधार है।

पहले ही कहा जा चुका है कि कम्युनिस्ट लोग ऐसा सोचते हैं कि अंत में राष्ट्र नहीं रहेगा। वे कहते हैं कि इस अवस्था को लाने के लिए पहले राष्ट्र के पर्याप्त दृढ़ होने की आवश्यकता है। पहले सर्वहारा लोगों का अधिनायकवाद प्रतिष्ठित करना होगा। बाद में राष्ट्र क्षीण होकर लुप्त हो जायगा। किन्तु, राष्ट्र के अंत में विलोप के लिए आरम्भ से ही उसे क्षीण बनाने का काम शुरू करना होगा। पश्चिम जाने के लिए पूरब की ओर चलने से लक्ष्य तक नहीं पहुँचा जा सकेगा। इसलिए भूमि-वितरण और गृह-उद्योग की प्रतिष्ठा करने के प्रयत्न के साथ-साथ राष्ट्रीय शासन-शक्ति का भी धीरे-धीरे वितरण करना होगा। शक्ति का वास्तव में विकेन्द्रीकरण होना चाहिए, जिसमें केवल स्थानीय Administrative Authority की सृष्टि न हो। ग्राम-पंचायत वह रूप ग्रहण करेगी। ग्राम के मामलों में उसकी सार्वभौम सत्ता रहेगी। जैसे, यदि कोई ग्राम यह निश्चय करे कि ग्राम में मशीन का तेल नहीं आने दिया जायगा, तो देश के अन्य भागों में दूसरी व्यवस्था के चलते रहने पर भी उसे अपने सिद्धान्त को कार्यरूप में परिणत करने का अधिकार प्राप्त होगा। ग्राम-पंचायत का क्या रूप है, यह इससे प्रकट होता है। सरकार जो ग्राम-पंचायत स्थापित करना चाहती है, वह केवल स्थानीय Administrative Agency (शासन-संस्था) के रूप में है। वास्तविक ग्राम-पंचायत ग्रामवासियों के द्वारा सर्वसम्मति से निर्वाचित होगी। ग्राम पंचायत का सिद्धान्त वोटों से तय नहीं होगा। इसमें सर्वसम्मति से सभी सिद्धान्त ग्रहण किये जायँगे। ग्राम-पंचायत की नीति के सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "ग्राम-पंचायत की नीति यही है कि भगवान् पाँच व्यक्तियों के माध्यम से बोलते हैं अर्थात् पंचायत का सर्वसम्मत निर्णय भगवान् का ही विचार मानकर स्वीकार कर लेना उचित है। यदि पाँच व्यक्तियों में से तीन या चार व्यक्ति एक तरह की बात कहें और बाकी लोग दूसरी तरह की बात कहें, तो वह भगवान् का विचार नहीं हुआ।" इसी प्रकार क्रमशः ग्रामराज की स्थापना की ओर अग्रसर होना होगा।

ग्राम ही यह तय करेगा कि व्यवस्था और उत्पादन का कितना दायित्व

ग्राम ग्रहण करेगा। जितना दायित्व ग्राम ले सकता है, उतना अपने लिए रखकर बाकी दायित्व के विशेष-विशेष भाग आवश्यकता के अनुसार वह क्रमशः जिला, राज्य और केन्द्र को सौंप देगा। इसके लिए उन-उन स्थानों में, अर्थात् ग्राम से जिला, जिला से राज्य और राज्य से केन्द्र को, प्रतिनिधि भेजने की पद्धति भी ग्राम ही निश्चित कर देगा। इस प्रकार शासन-शक्ति और शासन-व्यवस्था का मूल ग्राम में रहेगा और वह जितना आगे अग्रसर होता जायगा, उसी मात्रा में केन्द्र की शक्ति क्षीण होते होते क्षीणतम होती जायगी। ग्राम से राष्ट्र तक प्रत्येक संस्था का प्रतिनिधि-निर्वाचन और सम्पूर्ण कार्य-व्यवस्था निष्पक्ष रूप से और सर्वसम्मति से होगी। पक्षगत पद्धति को त्याग देने से सिद्धान्त-ग्रहण और निर्वाचन में सर्वसम्मति पा सकना कठिन न होगा। राष्ट्र को समाप्त करने की प्रक्रिया में शक्ति के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था किस रूप में होना उचित है, इसका केवल एक आभास अभी इस रूप में दिया जा सकता है। समाज इस दिशा में जितना ही अग्रसर होगा, आगे के स्तर की रूपरेखा स्वभावतः उतनी ही स्पष्ट होगी।

निरपेक्ष भाव से भूदान-यज्ञ के द्वारा भूमि-समस्या का समाधान होते रहने और गृह-उद्योग आदि की स्थापना के द्वारा उद्योग-व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण होते रहने से जन-साधारण में आत्मशक्ति का उदय होगा। यह आत्म-शक्ति सामुदायिक क्षेत्र में जनशक्ति कही जाती है। सरकारी सहायता की अपेक्षा न कर और आदर्श को सामने रखकर जनशक्ति के बल पर आगे बढ़ना होगा। जहाज से तुलना करने पर नवीन समाज-रचना में पूर्ण शासनमुक्त समाज दिशा-निर्णायक यंत्र का काम करेगा और स्वतंत्र जनशक्ति उसकी Motor Force (बैटरी) होगी।

समाज-व्यवस्था में यह आमूल परिवर्तन सहज-साध्य करने के लिए शिक्षा-व्यवस्था में तदनुरूप आमूल परिवर्तन होना जरूरी है और मनुष्य की प्रत्येक चेष्टा के साथ शिक्षा का सम्बन्ध रहना भी आवश्यक है। इसीलिए महात्मा गांधी ने बुनियादी शिक्षा-व्यवस्था को जन्म दिया। समाज में बुनियादी मूल्य-परिवर्तन का काम जितना आगे बढ़ेगा, बुनियादी शिक्षा का काम भी उतना ही आगे बढ़ेगा, अन्यथा नहीं।

यदि चरम लक्ष्य शासनमुक्त समाज की स्थापना है, तो फिर इस दिशा में

किये जानेवाले प्रयत्नों में सरकार की सहायता क्यों ली जाती है ? क्या इससे ये प्रयत्न व्याहत नहीं होंगे ? ऐसी शका का समाधान करते हुए विनोबाजी ने कहा है—(१) मोक्ष अथवा शरीर-मुक्ति के लिए साधना शरीर की सहायता से या शरीर के माध्यम से की जाती है। (२) कुल्हाडी से लकडी काटी जाती है, किन्तु उसका बेंट लकडी का ही होता है। अच्छी सरकार यही चाहेगी कि उत्तम पद्धति से क्रमशः शासन-व्यवस्था लुप्त हो और जनता स्वतन्त्र जनशक्ति के सहारे अपने पैरों पर खडा होना सीखे। माता-पिता चाहते हैं कि सन्तान उनकी सहायता की अपेक्षा न कर अपने पैरों पर खडा होना सीखे। इसलिए सरकार यदि सर्वोदय के काम में सहायता करे, तो उसे ग्रहण करने में कोई क्षति नहीं है। हाथ में तो पूरी कुल्हाडी है ही। यदि हाथ में केवल कुल्हाडी का बेंट ही रहता, तो शका होना ठीक था।

यह अत्यन्त आनद और गौरव की बात है कि महाभारत में राज्यविहीनता के आदर्श पर प्रतिष्ठित एक देश का वर्णन है।

"न राज्य नैव राजासीत् न दण्डो न च दाण्डिक ।
धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम् ।।"

"उस देश में कोई राजा नहीं था। सजा देने के लिए दड नहीं था। दड-धारी भी कोई नहीं था। उस देश के सब लोग धर्म-ज्ञान-सम्पन्न थे, इसलिए वे धर्म-बुद्धि के बल पर परस्पर रक्षा करते थे।"

शारीरिक श्रम का महत्त्व

नवीन समाज-रचना या सर्वोदय-स्थापना के लिए प्रत्येक व्यक्ति द्वारा उत्पादक शारीरिक श्रम किये जाने की आवश्यकता पर क्यो विशेष जोर दिया जाता है यह अच्छी तरह समझना आवश्यक है। साधना-पद्धति के पीछे जो गम्भीर विचारधारा है, वह समझने से सर्वोदय के पथ पर अग्रसर होने के लिए सब लोग प्रेरणा पा सकेंगे। व्यावहारिक दृष्टि से जीवन का आर्थिक क्षेत्र सबसे आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र में ही सर्वोदय का रूप सबसे अधिक प्रकाशमान होता है। इसीलिए सर्वोदय की स्थापना मे आर्थिक समता सर्वाधिक आवश्यक है। आर्थिक क्षेत्र में समता-स्थापना का अर्थ यही है कि (१) समाज-उपकारी कोई भी काम क्यो न हो, उसका आर्थिक मूल्य समान होना चाहिए। एक ओर

जिस प्रकार खेतिहर-मजदूर के एक घंटे के श्रम का और सुनार अथवा नाई के एक घंटे के श्रम का मूल्य समान होगा, दूसरी ओर उसी प्रकार खेतिहर-मजदूर को एक घंटे के श्रम का जितना पैसा दिया जायगा, एक वकील को भी उससे अधिक पैसा एक घंटे के श्रम के लिए नहीं दिया जायगा। अर्थात् विभिन्न श्रेणियों के शारीरिक श्रम का मूल्य जिस प्रकार समान होना चाहिए, उसी प्रकार शारीरिक और बौद्धिक काम के मूल्य में भी कोई पार्थक्य नहीं रहना चाहिए।

(२) नैतिक और सामाजिक समानता न आने से आर्थिक समानता की स्थापना दुःसाध्य होगी। समाज के लिए खेती के काम की जिस प्रकार आवश्यकता है, अध्यापक के अध्यापन-कार्य की भी वैसी ही आवश्यकता है। नैतिक दृष्टि से इन दोनों का ही समान मूल्य होना उचित है। इसके अतिरिक्त मजदूर और अध्यापक की सामाजिक मर्यादा भी समान होनी चाहिए। अध्यापक को खेतिहर-मजदूर से ऊँचा मानना ठीक नहीं है। खेती और अध्यापन, दोनों कामों का नैतिक मूल्य समान है, सामाजिक मर्यादा भी समान है और सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से खेतिहर-मजदूर और अध्यापक, दोनों ही समान हैं। समाज की दृष्टि से यदि इन दोनों कामों की आवश्यकता समान रूप से हो और उनकी मर्यादा भी समान हो, तो आर्थिक क्षेत्र की विचारधारा भी दोनों को समानता की ओर ले जायगी। साराश यह कि एक खेतिहर मजदूर के पोषण के लिए जितनी वस्तुओं की आवश्यकता है, अध्यापक के पोषण के लिए भी उतनी ही वस्तुओं की आवश्यकता है। अतएव दोनों के पारिश्रमिक में भेद रहने का कोई कारण नहीं है।

आज समाज में बौद्धिक कामों और शारीरिक श्रम के कामों के पारिश्रमिक में विराट् अन्तर है। सामाजिक क्षेत्र में भी श्रमजीवी को बुद्धिजीवी की तुलना में बहुत कम सम्मान मिलता है। यह केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था का परिणाम है, क्योंकि केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था में, अर्थात् बड़े मशीनी उद्योगों में मैनेजर आदि सभी स्तर के अधिकारियों और मशीनों के निर्माताओं तथा उनको चलानेवाले इञ्जीनियरों आदि को उच्च स्तर का बौद्धिक काम करना पड़ता है। दूसरी ओर, वहाँ मजदूरों के लिए बुद्धिगत कोई काम नहीं होता। इसीलिए नैतिक और आर्थिक समानता की स्थापना के लिए इस अवस्था का बना रहना सर्वथा अनुकूल नहीं है। समता की स्थापना के लिए उत्पादन-

व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए, जिसमें शारीरिक श्रम के काम की अधिक आवश्यकता हो—साथ ही श्रम और बुद्धि का समन्वय हो। उत्पादन-व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के द्वारा यह उद्देश्य सिद्ध होगा। ग्रामोद्योग या गृह-उद्योग में मजदूर और इञ्जीनियर एक ही व्यक्ति होगा, अर्थात् बुद्धिगत काम की आवश्यकता पड़ने पर मजदूर ही उसे सहज रूप से कर ले सकेगा। इसमें जटिल बुद्धि की आवश्यकता नहीं है। इसमें बुद्धि की Monopoly (एकाधिकार) नहीं रहती। इसके अतिरिक्त विकेन्द्रित व्यवस्था में अलग से सचालक या व्यवस्थापक की आवश्यकता नहीं है। इसमें इतनी कम पूंजी लगती है कि मजदूर ही उतनी पूंजी लगा सकता है। इस प्रकार गृह-उद्योग में उद्योग का मालिक स्वय ही एक साथ पूंजीपति, मजदूर, सचालक और इञ्जीनियर होता है। अतएव उसमें समता स्वयमेव स्थापित हो जाती है।

केन्द्रित उत्पादन-व्यवस्था की तुलना में ग्रामोद्योग में कई गुना अधिक लोगों के शारीरिक श्रम करने की आवश्यकता होती है। उसमें शारीरिक श्रम भी अधिक करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त आज शारीरिक श्रम के प्रति अश्राद्धता और घृणा का भाव पाया जाता है। समता-स्थापना के क्षेत्र में वही सबसे अधिक मानसिक प्रतिबन्धस्वरूप है। इसलिए यदि आर्थिक समता की स्थापना करनी हो, तो उसके आधारस्वरूप पहले समाज में शारीरिक श्रमसम्बन्धी मानसिक परिवर्तन लाना होगा। जिन्हें आज जीविकोपार्जन के लिए शारीरिक श्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, जो लोग उच्च स्तर की और जटिल बुद्धि के कामों में कुशल हैं और समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किये हुए हैं, वे यदि नियमित रूप से प्रतिदिन अपना कुछ समय उत्पादक श्रम में लगाकर अपने भोजन तथा वस्त्र की आवश्यकता पूरी करने की ओर अग्रसर हों, तो लोक-मानस में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आयेगा। वकील, डॉक्टर, अध्यापक, उच्चपदस्थ कर्मचारी यदि इस प्रकार नियमित रूप से उत्पादक श्रम करने लगें, तो उसके क्रांतिकारी परिणाम की सहज ही कल्पना की जा सकती है। यद्यपि अभी यह आशा दुराशा जैसी लगती है, तथापि अन्य सब लोग अपने जीवन की प्राथमिक आवश्यकता—भोजन और वस्त्र की आवश्यकता—पूरी करने के लिए आगे क्यों नहीं बढ़ेंगे? द्रोहरहित उत्पादक श्रम को जीवन-निष्ठा के रूप में सबको ग्रहण करना पड़ेगा। इसका कारण

यह है कि 'आज विश्व में अत्यधिक विषमता, दु खकष्ट और पाप श्रम न करने की अभिलाषा के चलते ही विद्यमान है। जो व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर रहना चाहता है, उसे गुप्त या प्रकट रूप से चोरी करनी पड़ती है।' इसीलिए भगवान् ने गीता मे कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ-न-कुछ परिश्रम करना चाहिए, उत्पादन करना चाहिए। परिश्रमरूपी यज्ञ से सब देवता प्रसन्न रहते हैं। जो इस प्रकार परिश्रमरूपी उत्पादक-यज्ञ नही करेंगे, वे चोर होंगे—पापी होंगे। विनोबाजी कहते हैं "भगवान् ने जो यह शाप दिया है, वह आर्य-सस्कृति की बात है।

"एव प्रवर्तित चक्र नानुवर्तयतीह य ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघ पार्थ स जीवति ॥"

विनोबाजी आगे कहते हैं "कुछ लोग अधिक मानसिक परिश्रम करेंगे और कुछ लोग शारीरिक परिश्रम अधिक करेंगे, यह बात मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु, सबको श्रमनिष्ठ होना होगा। कुछ लोग केवल मानसिक काम करेंगे और कुछ लोग केवल शारीरिक काम करेंगे—ऐसा विभाजन हम कदापि नही चाहते। सबको दोनो प्रकार के काम करने होंगे। भगवान् ने प्रत्येक व्यक्ति को हाथ-पाँव दिये हैं और बुद्धि भी दी है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति को दोनो प्रकार के काम करने होगे। किन्तु आज पश्चिम से एक विचार-धारा इधर लायी गयी है, जिसके फलस्वरूप कुछ लोग केवल श्रमजीवी (Hands) हो जाते हैं और कुछ लोग केवल बुद्धिजीवी (Heads) रह जाते हैं। ऐसा विभाजन अत्यन्त खतरनाक है। हम चाहते है कि ऐसी समाज-रचना एक क्षण भी न टिके।"

अपरिग्रही समाज का अर्थ

सर्वोदय-समाज की परिकल्पना मे व्यक्तिगत रूप से किसीके पास सचय या सग्रह की बात नही है। वास्तव में सर्वोदय-समाज असग्रही और अपरिग्रही समाज होगा। इससे किसी-किसी व्यक्ति के मन में यह बात उठती है कि इस समाज मे कोई दरिद्र तो नही रहेगा, पर समाज की अवस्था बहुत अच्छी नही होगी। किन्तु, यह धारणा गलत है। विनोबाजी ने अपने एक प्रार्थना-प्रवचन मे बतलाया था कि अपरिग्रही समाज कैसा होगा ? उन्होने कहा : "अभी इस

देश मे जिस परिमाण में दूध का उत्पादन होता है, वह प्रतिव्यक्ति ाई छटाक पडता है। किन्तु, हम जिस असग्रही समाज का निर्माण करना चाहते है, उसमें प्रतिव्यक्ति एक सेर दूध पडेगा। आजकल के सग्रही समाज की यह अवस्था है कि देश को सालभर की आवश्यकता के लिए भी पर्याप्त अनाज रहता है या नहीं, इसमें सन्देह है। किन्तु, असग्रही समाज में कम-से-कम दो वर्ष के लिए खाद्य-सामग्रियाँ मौजूद रहेंगी। उस समय प्रत्येक घर मे अनाज रहेगा। अभी जिस प्रकार प्यास लगने पर किसी भी घर में जाकर जल माँगा जा सकता है, उसी प्रकार असग्रही समाज मे भूख लगने पर किसी भी घर मे जाकर भोजन माँगने का अधिकार रहेगा। पीने के जल के लिए जिस प्रकार कोई पैसा नही माँगता, उसी प्रकार असग्रही समाज मे भूखे को भोजन देने के बदले में कोई पैसा नही माँगेगा। असग्रही समाज चाहता है कि भूखो को भोजन देने के लिए प्रत्येक घर मे पर्याप्त अनाज रहे। यह कोई नयी बात मैं नही कह रहा हूँ। उपनिषद् ने यह मत्र दिया है कि अन्न का उत्पादन खूब बढाना होगा। किन्तु, साथ-साथ ब्रह्मविद्या सबको यह शिक्षा देती है कि ससार मिथ्या है, इसलिए आसक्ति मत रखो। ब्रह्मविद्या की शिक्षा यह है—'अन्न बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्'—अन्न खूब बढाओ। हम अन्न की खूब वृद्धि करेंगे। इससे घर मे इतना अन्न रहेगा कि कोई भी व्यक्ति उसके लिए कोई मूल्य नही चाहेगा, कोई उसकी बिक्री नही करेगा, बल्कि ऐसा करना मिथ्याचार मानेगा। असग्रही समाज मे शुद्ध घी प्रचुर मात्रा में प्राप्त होगा। किन्तु, 'डालडा' नही मिलेगा। तरकारी भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होगी। जिस किसी घर में जाने पर आप भोजन पा सकेंगे। गृहस्वामी आपसे कहेगा—'चलो भाई दो घटे खेत में काम किया जाय। अभी तो ६ बजे है ११ बजे भोजन किया जायगा।' उस समाज में लोग मछली मांस खाना छोड देंगे। उसके बदले में गाय का दूध प्रचुर परिमाण में ग्रहण करेंगे। अपरिग्रही समाज में मधु की महानदी प्रवाहित होगी। जिस प्रकार महानदी जगल से होकर निकलती है, उसी प्रकार मधु भी जगल से आयेगा। इस प्रकार अपरिग्रही समाज मे हम इतना परिग्रह बढाना चाहते हैं, जितने की लोग कल्पना भी नही कर सकते। किन्तु, हम चाहते हैं कि वह परिग्रह, वह सग्रह घर घर में विभाजित हो। 'अपरिग्रही' का अर्थ है—खूब बडा सग्रह, कि तु वह घर-घर में बँटा होगा।

"तीसरी बात यह है कि संग्रह में बिना काम की चीजों का स्थान नहीं होगा। हम सिगरेट की तरह की व्यर्थ चीजों का बोझ नहीं बढ़ाना चाहते। वैसी चीजों को हम असंग्रह की दृष्टि से होली के दिन जला देना चाहते हैं। अतएव असंग्रह का तीसरा अर्थ यह है कि समाज में व्यर्थ चीजों का संग्रह नहीं होगा। उसका प्रथम अर्थ यह है कि समाज में लक्ष्मी की खूब अभिवृद्धि होनी चाहिए, किन्तु व्यर्थ की चीजें नहीं रहनी चाहिए। शराब की बोतलें और सिगरेट के पैकेट लक्ष्मी नहीं हैं।

"चौथी बात यह है कि असंग्रह या अपरिग्रह का, यद्यपि वह अच्छी चीज है, क्रम निश्चित किया जायगा। आज तो क्रम के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विचार ही नहीं किया जाता। फालतू चीजें बढ़ायी जा रही हैं। किन्तु, असंग्रही समाज में (१) सबसे पहले उत्तम खाद्य होना चाहिए। (२) फिर वस्त्र मिलना चाहिए। (३) उसके बाद अच्छा मकान होना चाहिए। (४) फिर उत्तम यंत्र आदि प्राप्त होने चाहिए। (५) तब ज्ञानप्राप्ति के लिए उत्तम ग्रन्थादि होने चाहिए। (६) उसके बाद मनोरंजन के लिए संगीत आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। इस प्रकार आवश्यकता के गुरुत्व के क्रमानुसार प्रत्येक वस्तु की क्रम-संख्या होगी और तदनुसार ही उन-उन वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाना होगा। एक भाई कहते थे कि लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहनकर सभा में आते हैं, अतएव गरीबी नहीं है। मैं कहता हूँ कि गरीबी तो निश्चित रूप से है, किन्तु लोगों की बुद्धि कम हो गयी है। शहर में लोग अच्छा भोजन तो नहीं करते, पर कपड़े अच्छे-अच्छे पहनते हैं। शुद्ध घी नहीं मिलता, 'डालडा' खाकर रहते हैं। किसी-किसी घर में अच्छे भोजन की व्यवस्था नहीं है अथवा उसकी व्यवस्था नहीं की जाती, किन्तु कपड़े खूब रखे जाते हैं। उन घरों में टूथ-ब्रश, पेस्ट, लिपस्टिक आदि रहते हैं। हारमोनियम भी रहता है। अरे भाई, बाजा तो बजाओगे ही, किन्तु पहले खाओ तो, तब बजाना। इस प्रकार कौन वस्तु पहले चाहिए और कौन वस्तु बाद में, यह हमें देखना होगा। मान लीजिये, हमारे घर में पर्याप्त दूध नहीं है, पर्याप्त घी नहीं है। हम पहले इन चीजों को लायेंगे। इस प्रकार असंग्रह का चौथा अर्थ हुआ—क्रमानुसार संग्रह।

"पाँचवाँ अर्थ यह है कि अपरिग्रही समाज में यथासम्भव पैसा कम रहेगा।

पैसा लक्ष्मी नहीं है, बल्कि राक्षस है। केला, आम, तरकारी, अन्न–ये सब लक्ष्मी हैं। किन्तु, यह जो पैसा है, वह नासिक के कारखाने में तैयार होता है। वहाँ कागज से इसे तैयार किया जाता है। केला खरीदना ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार केला लेने के लिए किसीके सामने रिवाल्वर निकालकर कहा जाय कि केला दोगे या नहीं ? उसमें रिवाल्वर की जगह नोट दिखाकर कहा जाता है—'कहो, केला दोगे या नहीं ?' रिवाल्वर दिखाकर केला छीन लेना जिस प्रकार चोरी है, डकैती है, रुपये का नोट दिखाकर घी ले जाना भी उसी प्रकार डकैती है। पैसा तो राक्षस का यंत्र है। किन्तु लक्ष्मी तो देवी है। लक्ष्मी भगवान् कृष्ण के आश्रम में रहती हैं। 'कराग्रे वसते लक्ष्मी.' लक्ष्मी का वास हमारे हाथ में है, हमारी अँगुलियों में है। ये जो पाँच और पाँच, दस अँगुलियाँ भगवान् ने हमें दी हैं, उनसे परिश्रम करने पर लक्ष्मी प्राप्त होती है। इसलिए अपरिग्रही समाज में जो वस्तु सबसे कम होगी, वह होगी पैसा। पैसा लोगों को ऐसे भ्रम में डाल देता है कि वस्तुत. जो व्यक्ति दरिद्र है, उसीको लक्ष्मीपति मान लिया जाता है और जो व्यक्ति लक्ष्मीपति है, वह दरिद्र माना जाता है। जिसके पास दही, दूध, तरकारी और अन्न आदि हैं, उसीको दरिद्र कहा जाता है, और जिसके पास ये सब कुछ नहीं है, केवल पैसा है, उसे धनवान् कहा जाता है !"

ग्रामराज और रामराज

सर्वोदय के आदर्शों पर सघटित ग्राम को विनोबाजी ने 'ग्रामराज' की सज्ञा प्रदान की है। गाधीजी 'रामराज' की स्थापना की बात कहते थे। ये दोनों क्या एक ही चीज हैं ? मान लीजिये कि भूदान-यज्ञ और सम्पत्तिदान-यज्ञ के सफल होने से भूमि पर स्वामित्व-बोध समाप्त हो गया। जो खेती करना चाहते हैं, उन्हें ही जमीन मिलती है। प्रत्येक ग्राम जनशक्ति के बल पर जीवन-यापन के लिए प्राथमिक आवश्यकतावाली सभी चीजों को ग्राम में ही पैदा कर लेता है। प्रत्येक ग्राम आत्मनिर्भर हो गया है। किस चीज का ग्राम में उत्पादन होगा, इसका निश्चय करने और निश्चय को कार्यान्वित करने का अधिकार ग्रामवासियों ने प्राप्त कर लिया है। राज्यसत्ता का ग्राम-ग्राम में विकेन्द्रीकरण हो गया है। समाज में कहीं भी ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं है। सभी लोगों

ने जीवन-यापन के समान सुयोग प्राप्त कर लिये हैं। काम की प्रकृति या प्रकार-भेद के आधार पर आय के ऊँच-नीच का सवाल नहीं है। सभी कामों का मूल्य समान है।—यही है 'ग्रामराज'। 'ग्रामराज' में जो भी सिद्धान्त निश्चित होंगे या निर्णीत किये जायँगे, वे सबकी सम्मति से। 'ग्रामराज' में भी मतभेद या विवाद पैदा हो सकता है, पर उसकी मीमांसा भी सबकी सम्मति से ही होगी। किन्तु, 'रामराज' में विवाद या मतभेद का जन्म ही नहीं होगा। वह होगी सम्पूर्णतः शासनमुक्त अवस्था। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी विवेक-बुद्धि से चलेगा। अतएव विनोबाजी का 'ग्रामराज' महात्मा गांधी के 'रामराज' की पूर्वसूचना है। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने अपना विचार प्रकट किया था : "जहाँ ग्राम का मतभेद ग्राम में ही सर्वसम्मति से दूर किया जाय, वहाँ 'ग्रामराज' होगा। मतभेद या विवाद पैदा ही न हो, तो उस अवस्था को 'राम-राज' कहेंगे।"

भूदान-यज्ञ के सप्तसूत्री उद्देश्य

अब तक भूदान-यज्ञ के बहुमुखी उद्देश्यों पर विचार किया गया है। भूदान-यज्ञ के उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने उसके सप्तसूत्री उद्देश्यों की बात कही है। वे हैं

(१) गरीबी का नाश।

(२) भूमि के मालिकों के हृदय में प्रेमभाव का विकास करना और उसके फलस्वरूप देश का नैतिक वातावरण उन्नत करना।

(३) एक ओर भूमि-स्वामियों और दूसरी ओर सर्वहारा भूमिहीन गरीबों—इन दोनों के बीच जो श्रेणिगत विद्वेष दिखाई पड़ता है, वह भूदान-यज्ञ के द्वारा दूर होगा, परस्पर प्रेम और सद्भावना का बन्धन दृढ़ होगा और परिणाम-स्वरूप समाज शक्तिशाली बनेगा।

(४) यज्ञ, दान और तप—इन तीनों के अपूर्व दर्शन के आधार पर जो भारतीय संस्कृति तैयार हुई थी, उसका पुनरुत्थान और उन्नति होगी। मनुष्य का धर्म-विश्वास दृढ़ होगा।

(५) देश में शांति स्थापित होगी।

(६) देश में शांति स्थापित होने से विश्वशांति की स्थापना में बहुत सहायता मिलेगी।

(७) भूदान-यज्ञ के द्वारा विभिन्न राजनीतिक दल परस्पर निकट आयेंगे और एक साथ मिलने एवं मिलकर काम करने का सुअवसर पायेंगे। इसके फलस्वरूप देश सभी ओर से शक्ति प्राप्त करेगा।

भूदान-यज्ञ के कार्य की तीन दिशाएँ

विनोबाजी कहते हैं कि भूदान-यज्ञ के कार्य को तीन दृष्टियों से देखा जाता है : (१) दया, (२) समाज-रचना और (३) नैतिक उपायों का अवलम्बन या अहिंसा का प्रयोग। किसीके दुःख-कष्ट में पड़ने पर उसकी तकलीफों को दूर करने के लिए सहायता देने की आवश्यकता पड़ती है और सहायता दी जाती है। इसे 'दया' का काम कहा जाता है। एक दृष्टि से भूदान-यज्ञ का काम ऐसा ही दया का काम है। इसके द्वारा भूमिहीन गरीबों को शीघ्रातिशीघ्र कुछ जमीन देने की व्यवस्था करके उनका दुःख-कष्ट दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। आजकल दया के काम को या सहायता के काम को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। उसके प्रति विशेष श्रद्धा का भाव प्रदर्शित नहीं किया जाता। किन्तु, जिस देश में करोड़ों लोग असहाय होकर दुःख-कष्ट भोग रहे हों, वहाँ दुःख-कष्ट को कम करने के प्रयत्न को साधारण मानना और केवल समाज-रचना में परिवर्तन के काम को ही महत्त्व देना ठीक नहीं है। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं कि "भारत में इस काम का स्वयं ही एक पृथक् मूल्य है। इसलिए दुःखी के दुःख को दूर करने का काम गौण या अनादरणीय नहीं है। अर्थात् इसका स्थायी मूल्य है। इस काम का स्थायी मूल्य है, इसलिए इसके प्रति आकर्षण कम होता है। हम निरंतर हवा लेते हैं। इसलिए वह हम लोगों के लिए स्थायी वस्तु है। इसीलिए यदि हवा की आवश्यकता के बारे में भाषण की व्यवस्था की जाय, तो अधिक श्रोता नहीं जुटेंगे। किन्तु रोटी के सम्बन्ध में भाषण देना चाहने पर उसे सुनने के लिए बहुत लोग आयेंगे। फिर भी इससे हवा का महत्त्व कम नहीं होता।" इसलिए भूदान-यज्ञ की एक दिशा है—'दया का काम।'

भूदान-यज्ञ की दूसरी दिशा यह है कि इसके द्वारा समाज-रचना में परिवर्तन लाया जायगा। विनोबाजी कहते हैं कि यह एक बुनियादी विचार है। भूदान-यज्ञ के कार्य के द्वारा जीवन-परिवर्तन और समाज-रचना में परिवर्तन लाने के लिए आधार तैयार किया जा रहा है।

इनकी तीसरी दिशा यह है कि इसमें केवल नैतिक उपायों, अर्थात् अहिंसात्मक उपायों का प्रयोग किया जा रहा है। विनोबाजी कहते हैं कि जनसाधारण में अहिंसा की शाब्दिक प्रतिष्ठा तो है, किन्तु अहिंसा के द्वारा वर्तमान समस्याओं का समाधान हो सकेगा, ऐसी श्रद्धा अब भी जन-साधारण में उत्पन्न नहीं हुई है। अतएव सिद्धान्ततः अहिंसा को मान लेने पर भी जब कोई विशेष समस्या उपस्थित होती है, तो अहिंसा में विश्वास रखने-वाले लोग भी कार्यक्षेत्र में अहिंसा को गौण स्थान देकर हिंसा का आश्रय लेते हैं। सिर्फ यही नहीं, वे हिंसा का आश्रय लेने के पक्ष में तर्क भी उपस्थित करते हैं। अहिंसा के हित के लिए ही इतनी हिंसा करना उचित है, ऐसा आज भी माना जाता है। जगत-प्रवाह और गांधीजी की शिक्षा, इन दोनों कारणों से अनेक लोगों में अहिंसा के प्रति निष्ठा उत्पन्न हुई है, किन्तु वे ऐसा विश्वास करते हैं कि आत्मिक उन्नति के लिए तो अहिंसा अत्यधिक लाभदायक है, परन्तु सामाजिक क्षेत्र में अहिंसा की कार्यक्षमता के सम्बन्ध में वे सोचते हैं कि इस क्षेत्र में कुछ कम-बेशी करके काम चलाने (Adjustment) की आवश्यकता होती है। वे सोचते हैं कि भविष्य में कभी समाज की ऐसी स्थिति हो सकती है कि उसमें अहिंसा सफलता प्राप्त करे। इसलिए वे सोचते हैं कि समाज की दृष्टि से भविष्य में और व्यक्ति की दृष्टि से आज उन्नति के लिए अहिंसा कार्य-कारी है, परन्तु आज के समाज में हिंसा के प्रतिकार के लिए प्रतिहिंसा करनी होगी, बाध्य होकर भी प्रतिहिंसा करनी होगी। सारांश यह कि अहिंसा के प्रति कितनी भी श्रद्धा क्यों न हो सामाजिक क्षेत्र में अब भी अहिंसा की प्रतिष्ठा नहीं हुई है। भूदान-यज्ञ की विशेषता यह है कि इसमें एकमात्र नैतिक पद्धति अर्थात् अहिंसा में श्रद्धा रखी गयी है और कठिनतम समस्या का भी समाधान अहिंसा से होगा, यह विश्वास रखकर उसी तरह काम किया जा रहा है। सामाजिक समस्या के समाधान के क्षेत्र में भी अहिंसा सफल हो सकती है, इसका एक दृष्टान्त उपस्थित किया जा रहा है। इसीलिए भूदान-यज्ञ की तीसरी दिशा है—नैतिक अर्थात् अहिंसात्मक उपायों का अवलम्बन।

आन्दोलन की अवधि का प्रश्न

सन् १९५७ तक भूदान-यज्ञ का काम समाप्त करने की बात है। भूदान-यज्ञ-सदृश महान् अहिंसात्मक कार्यक्रम की सफलता के लिए समय की

सीमारेखा निश्चित किये जाने पर कुछ लोगो ने आपत्ति की है। काचीपुरम्-सम्मेलन में अपने भाषण में विनोबाजी ने ऐसी आपत्तियो का खडन किया। इसके अतिरिक्त उन्होने बतलाया कि अहिसात्मक कार्यक्रम के लिए समय निश्चित करना आवश्यक है, क्योकि उससे उपायो को सुधारने का अवसर प्राप्त होता है। वे कहते हैं "१९५७ साल तक काम समाप्त करने की तीव्र इच्छा अनेक लोगो के मन मे है। इस इच्छा को मैंने स्वय ही बढावा दिया है। इसीलिए उसकी पूरी जिम्मेदारी लेकर मैं काम कर रहा हूँ। अनेक लोगो ने मुझे इस सम्बन्ध में सावधान किया है। श्री एम० एन० राय ने लिखा था कि एक निश्चित अवधि रखना और साथ-साथ यह कहना कि हृदय-परिवर्तन के द्वारा काम पूरा करना होगा—ये दोनो परस्पर विरोधी बाते है। किसी-किसी सज्जन ने मुझसे यह बात भी कही है कि इससे गलत पद्धति अपनायी जाने की आशका है और शीघ्र काम समाप्त करने के प्रयत्न में हिंसा का मार्ग ग्रहण किया जा सकता है। यह भी एक आपत्ति है कि इसमें सकाम वृत्ति निहित है जब कि गीता ने निष्काम वृत्ति को शिक्षा दी है। अत यह गीता की शिक्षा के विरुद्ध है। इन तीन आपत्तियो की युक्तिसगतता मैं नही समझ पाता हूँ। फिर भी मै उनको महत्त्व देता हूँ। निष्काम भाव को मैं सेवावृत्ति का प्राण मानता हूँ। मै यह स्वीकार करता हूँ कि मेरे मन में अहिंसा की अपेक्षा निष्काम भाव के लिए विशेष आदर है। किन्तु, साथ-साथ मैं यह भी कहता हूँ कि निष्कामता और अहिंसा, इन दोनो को मैं समान अर्थबोधक (पर्याय) मानता हूँ। इसलिए समय की सीमा बाँध देने से निष्कामता पर आघात पडता है, यह आपत्ति मुझे अधिक तीव्र लगी है। मैं चाहता हूँ कि यथासम्भव शीघ्र यह ससार दुख-दुर्दशा से मुक्त हो। ऐसी इच्छा करना निष्कामता के विरुद्ध नही। इसलिए जल्दी-जल्दी काम करने से निष्कामता को क्षति पहुँचती है यह मैं स्वीकार नही करता। समय की एक निर्दिष्ट अवधि मै मन में रखता हूँ और हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया का आधार ग्रहण करता हूँ—इन दोनो के बीच कोई विरोध है, ऐसा मैं नहीं मानता। कार्य की अवधि निश्चित करने का उद्देश्य यह है कि कोई काम अनन्तकाल तक पडा न रह जाय। यदि एक पद्धति जनसाधारण के सामने रखकर मैं कहूँ कि इस पद्धति से पाँच सौ वर्ष बाद काम होगा, तो वह पद्धति

किसी काम की नहीं साबित होगी। अतएव निर्दिष्ट अवधि के भीतर काम पूरा करना आवश्यक है। किन्तु, यदि इस अवधि के भीतर काम समाप्त न हो, तो क्या गलत मार्ग ग्रहण करना होगा? गलत मार्ग से कभी भी कोई काम नहीं होगा। फिर भी यह आशंका की जा सकती है कि गलत मार्ग ग्रहण किया जायगा। किन्तु किसी-न-किसी प्रकार का खतरा मोल लिये बिना काम आगे नहीं बढ़ता। उस साहस के बिना काम होता ही नहीं। इस हद तक सजग रहना हमारा कर्तव्य है और इसका भी खयाल रखना है कि गलत पद्धति न अपनायी जाय और उसके लिए व्यग्रता भी न रहे।"

किसी एक निर्दिष्ट पद्धति से काम पूरा करने के लिए समय निश्चित करने से, यदि सच्चाई के साथ, पूरी शक्ति का प्रयोग करने पर भी उस पद्धति से अभीष्ट सिद्ध न हो, तो उस पद्धति में सुधार करने का स्वाभाविक अवसर उपस्थित होता है। दूसरी ओर, समय निश्चित न रहने से पूरा समय और शक्ति का प्रयोग करने की प्रेरणा शिथिल पड़ जाती है। उससे यह बात समझ में नहीं आ पाती कि पूर्णतः उस पद्धति की परीक्षा हुई अथवा नहीं। पद्धति में सुधार करने का भी स्वाभाविक अवसर कब आया, यह ठीक तरह से अनुभव नहीं हो पाता। इस सम्बन्ध में विनोबाजी कहते हैं "अवधि निश्चित करने का तात्पर्य यह है कि इससे उपाय में संशोधन करने का अवसर प्राप्त होता है। एक उपाय हमारे हाथ में आया है। उसका हम पूर्णरूप से प्रयोग नहीं कर रहे हैं। ऐसा करने से काम नहीं होता और नये उपाय की भी खोज नहीं हो पाती। एक उपाय का हमने पूर्णरूप से परीक्षण किया, अवधि निश्चित करके उसके बीच पूरा काम हुआ—इससे समाधान होता है। पूरी शक्ति लगाने पर भी यदि निश्चित अवधि के भीतर काम न हो, तो सुधार करने का अवसर आता है और दूसरे मार्ग का पता चलता है। मैं सबको यह बता देना चाहता हूँ कि पूरी शक्ति न लगाकर यदि हम समय नष्ट कर दें, तो यह भूल होगी। उपाय में सुधार करने के लिए यह आवश्यक है कि निश्चित अवधि के भीतर हम अपनी पूरी शक्ति लगाकर एक साथ काम में लगे रहें। फल को भगवान् पर छोड़कर निष्काम भाव से काम में लगे रहना आवश्यक है।"

भूदान-आन्दोलन में नेतृत्व और गणसेवकत्व

मध्यप्रदेश में भूदान-यज्ञ की प्रगति आशा के अनुरूप नहीं हो रही

थी। वहाँ ऐसे विशिष्ट प्रभावशाली नेताओ ने भूदान-यज्ञ मे आत्मनियोग नही किया था कि जिनके व्यक्तिगत प्रभाव से आन्दोलन की गति तीव्र होती। ऐसी अवस्था मे वहाँ के कार्यकर्ताओ ने सन् १९५५ में राज्य मे सघन सामूहिक पद-यात्रा का कार्यक्रम अपनाया। थोडे-थोडे कार्यकर्ताओ का एक-एक पदयात्री-दल बनाया गया। इस प्रकार कई दलो ने एक ही क्षेत्र के विभिन्न भागो में पदयात्रा की। एक इलाका समाप्त होने पर दूसरे इलाके मे वे प्रवेश करते। उनके आगे बढने पर स्थानीय नये-नये कार्यकर्ता आकर उन दलो मे योगदान करते। कार्यकर्ता सम्मिलित भाव से निवेदन करते। इसके फलस्वरूप वहाँ आन्दोलन की उत्तम प्रगति हुई और प्रचुर मात्रा में भूमि आदि मिली। वे अकेले-अकेले जो काम नही कर सके थे, वह उनकी सामूहिक चेष्टा से पूरा हुआ। काचीपुरम्-सर्वोदय-सम्मेलन मे विनोबाजी ने सामूहिक कार्यक्रम की इस सफलता का उल्लेख किया था। इस प्रसग में उन्होने भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के सामूहिक सेवाकार्य के दार्शनिक पहलू की व्याख्या की थी और भूदान-आन्दोलन में नेतृत्व के स्थान के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व की व्याख्या की थी। उन्होने कहा था कि भूदान-यज्ञ-आन्दोलन पदयात्रा के माध्यम से आगे बढ रहा है। इसलिए उसमे अखिल भारतीय नेतृत्व का निर्माण नही हो रहा है। यह भूदान-आन्दोलन का एक विशेष महत्त्व है। जनक्रान्ति का काम स्थानीय रूप से सफल होता है और वातावरण के माध्यम से वह विश्व में चारो ओर प्रसारित हो जाता है। बुद्ध भगवान् का उदाहरण देते हुए उन्होने कहा कि बुद्ध भगवान् अखिल भारतीय नेता नही हो सके थे। वे केवल पाली-भाषा में अपने विचार प्रकट करते थे और प्रयाग से गया तक भ्रमण करते थे। किन्तु उनके विचार सारे विश्व में फैल गये थे, क्योकि वे विचार विश्वव्यापी होने के उपयुक्त थे और उनका जीवन भी उन विचारो के अनुरूप था। विनोबाजी ने कहा कि 'वे पैदल भ्रमण कर रहे हैं, इसलिए स्थानीय नेतृत्व हो रहा है।" यहाँ उन्होने एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात कही। उन्होने कहा कि 'नेतृत्व स्थानीय तो हो रहा है, किन्तु स्थानीय नेतृत्व से काम नहीं हो रहा है। काम हो रहा है स्थानीय सेवकत्व से क्योंकि यदि हम सेवक के रूप में जनसाधारण के पास जायँगे, तो हम जमीन पायेंगे। नेता के रूप में उनके पास जाने से जमीन नहीं मिलेगी। आज ही सवेरे मैं

कह रहा था—हम अपने स्वामी के सेवक हैं। इसीमें हमारी शक्ति है। रघुनाथजी को जगाने के लिए तुलसीदासजी क्या करते थे, जानते हैं? वे गाते थे—'जागिये रघुनाथ कुँवर'। तमिल भक्त भी इसी प्रकार गाते थे। वे गीत भी गाते थे और भजन भी। इसी प्रकार प्रभु को जगाना होता है। लोक-हृदय में जो प्रभु विराजमान है, उन्हें जगाने के लिए हमें भक्त होकर उनके पास जाना होगा। तभी वे जागेंगे।" इसके बाद उन्होंने मध्यप्रदेश के सामूहिक कार्यक्रम का उल्लेख करके कहा : "किन्तु, इस वर्ष जो कुछ हुआ है, वह यही कि व्यक्ति-सेवकत्व के स्थान पर गण-सेवकत्व हो सकता है।" उन्होंने आगे कहा : "इसी प्रकार जनशक्ति के द्वारा काम हो सकता है। व्यक्ति के नेतृत्व के अभाव में गण-सेवकत्व सफल हो सकता है। गत वर्ष यह सिद्ध हो चुका है।" रूस में अभी जो कुछ हो रहा है, उसके साथ उन्होंने गण-सेवकत्व की तुलना की। रूस व्यक्तिपूजा (Personality Cult) तथा व्यक्ति-नेतृत्व को त्यागकर गण-नेतृत्व की ओर झुक रहा है। रूस कह रहा है कि व्यक्ति-विशेष का नेतृत्व नहीं चलेगा—गण-नेतृत्व चलेगा। भूदान-यज्ञ में वैसे ही गण-सेवकत्व का प्रयोग किया जा रहा है।"

उक्त सामूहिक कार्यक्रम की चर्चा करते हुए विनोबाजी ने कहा : "मैं उसे उत्साहित करना चाहता हूँ। हमारे काम में नेतृत्व भी नहीं है और प्रभुत्व भी नहीं है। तेलुगु भाषा में 'प्रभुत्व' शब्द का अर्थ है 'सरकार'। हमारे काम में सेवकत्व है। किन्तु यह सेवकत्व गण-सेवकत्व हो सकता है। एक-एक गण-समुदाय समाज-सेवा के लिए बाहर निकल पड़े। इस प्रकार के थोड़े-बहुत शिविर भी चलने चाहिए। यह गण-सेवकत्व बहुत फलदायी सिद्ध होगा।"

विनोबा कर्मयोगी अथवा ज्ञानयोगी ?

भूदान-यज्ञ का तत्त्व और विचारधारा समझने के लिए यह जानना विशेष आवश्यक तो नहीं है कि विनोबाजी कर्मयोगी हैं या ज्ञानयोगी, किन्तु यह जान लेने से भूदान-यज्ञ के विचार-प्रचार के लिए विनोबाजी किस विषय को विशेष महत्त्व देते हैं और क्यों देते हैं, यह बात अच्छी तरह समझ में आ जायगी। घर छोड़कर महात्मा गांधी के आश्रम में सम्मिलित होने के समय

करता हूँ। कर्मयोग के जो सब काम मुझे मिले थे, वे देशसेवा के काम थे। किन्तु, जनसेवा के ये काम चुपचाप बैठकर करने होते थे। इसीलिए उन सेवा के कामों के बीच भी मैं आत्मचिन्तन के लिए यथेष्ट समय पा जाता था और उन दोनों के बीच किसी प्रकार का विरोध भी नहीं होता था। मुझे अध्ययन करने की धुन थी। इसलिए कुछ शास्त्रों, कुछ ऋषियों के ग्रन्थों, कुछ धर्मों और कुछ भाषाओं का अध्ययन मैंने किया। एकान्त में रहने पर भी मैं जगत् का निरीक्षण करता था। मेरा चित्त जाग्रत् और साक्षी-स्वरूप था। इसलिए दुनिया का रूप मैं स्पष्ट रूप से देख पाता था।" इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि अभी वे जो प्रचार-कार्य कर रहे हैं, वह वे किसी प्रचार-वृत्ति के वशीभूत होकर नहीं करते। वे कहते हैं "जिस व्यक्ति ने अपना युवाकाल एकान्त में बिताया, वह वृद्धावस्था में प्रचारक नहीं हो सकता।" वे प्रेम का प्रचार कर रहे हैं—ज्ञान का प्रचार कर रहे हैं। 'परमेश्वर ने जो ज्ञान मुझे दिया है, उसका मैं जनसाधारण में वितरण करूँगा'—इस प्रेरणा से उद्बुद्ध होकर उन्होंने अतीतकाल के साधु-सन्तों की परम्परा में ज्ञानप्रचारार्थ प्रव्रज्या ग्रहण की है।

पश्चिम बंगाल के अपने भ्रमण-काल में कुछ दिनों सन्ध्या समय उन्होंने बंगाल के कार्यकर्ताओं के समक्ष आध्यात्मिक जीवन-निर्माणसम्बन्धी कुछ आवश्यक विषयों के सम्बन्ध में प्रवचन किये थे। एक दिन उन्होंने कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग के सम्बन्ध में प्रवचन किया था और यह समझाया था कि उनके बीच क्या पार्थक्य है। उन्होंने कहा था "यह सत्य है कि कुछ लोगों के लिए ज्ञानमार्ग ही आसान होता है। जिन्हें बचपन से प्रेम का अनुभव नहीं है, जिनके माता-पिता बचपन में ही मर गये हैं और दूसरों ने उनका पालन किया है, उनकी उपेक्षा ही की गयी है, उनके लिए प्रेम की अपेक्षा चिन्तन और ध्यान ही अधिक स्वाभाविक है। जिन्हें प्रेम की अनुभूति न हुई हो, उनके लिए प्रेम का मार्ग कठिन और ज्ञान का मार्ग आसान मालूम हो सकता है। देह से अपने को अलग करने का चिन्तन भी उनके लिए आसान हो सकता है। परन्तु यह बात तो कुछ विशेष व्यक्तियों के लिए है।" विनोबाजी ऐसे ही एक विशेष व्यक्ति हैं, जिनके लिए ज्ञान का मार्ग अधिक सहज हो गया है। इस प्रसंग में उन्होंने और भी कहा है : "ज्ञानमार्ग कहता है कि

द्वारा नाव को चलाते हैं। बुद्धि है, पतवार और हृदय या श्रद्धा है डांड। श्रद्धा मोटर-शक्ति (Motor Force) है और बुद्धि स्टेयरिंग (Steering) है। जीवन का कोई मौलिक सिद्धान्त जब सामने उपस्थित होता है, तब मनुष्य बुद्धि के द्वारा उस विचार को समझ लेता है। तब वह सिद्धान्त किस ओर ले जायगा, यह वह हृदयगम कर पाता है। इतना होने पर भी वह विचार यदि उसके हृदय का स्पर्श न करे, तो वह उस कर्म मे प्रेरणा प्राप्त नही कर सकता। दूसरी ओर यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति की बुद्धि प्रखर न हो और बुद्धि के द्वारा वह विचार को भलीभाँति समझने में सक्षम न हो, अथवा सिद्धान्त ने उसके हृदय का स्पर्श किया है अर्थात् उस सिद्धान्त के प्रति उसमें श्रद्धा उत्पन्न हुई है। ऐसी अवस्था मे उस सिद्धान्त की विचारधारा अच्छी तरह न समझने पर भी श्रद्धा के बल पर वह आन्तरिक भाव से काम कर लेगा। श्रद्धा और विश्वास एक ही चीज है। श्रद्धा रहने पर विश्वास आयेगा ही। अहिंसा के काम मे श्रद्धा या विश्वास की ही सबसे अधिक आवश्यकता होती है। भूदान-यज्ञ के क्षेत्र में भी यही बात है। यदि विनोबाजी तेलगाना के पोचमपल्ली ग्राम से प्रगाढ श्रद्धा और ज्वलन्त विश्वास लेकर अग्रसर न होते, तो क्या इस स्थिति मे आ पहुँचना सम्भव होता? अहिंसा-मूलक सिद्धान्त की विचारधारा धीरे-धीरे पूर्णता को प्राप्त होती है। इसीलिए उसे पूरा करने के लिए पहले श्रद्धा लेकर आगे बढना होता है। किन्तु इस आन्दोलन की आज वह स्थिति नही है। भूदान-यज्ञ की विचारधारा आज इतनी आगे बढ गयी है कि गम्भीर रूप से उसे समझ लेने के लिए पूरा अवकाश उपलब्ध है। अतएव जहाँ शिथिलता या निष्क्रियता दिखाई पड़ेगी, वहाँ समझना पड़ेगा कि श्रद्धा और विश्वास का अभाव है। विनोबाजी कहते हैं "ससार में कुछ काम बुद्धि के द्वारा करने होते हैं और कुछ श्रद्धा के द्वारा। दोनो ही परस्पर पूरक है। दोनो की ही आवश्यकता है। बुद्धि और श्रद्धा के सम्बन्ध में मै इस प्रकार व्याख्या करता हूँ—बुद्धि वह वस्तु है, जो प्रमाण के अभाव मे किसी बात को स्वीकार नही करती। और, श्रद्धा वह है, जो किसी विशेष विषय को स्वीकार करने के लिए प्रमाण नही माँगती।" जैसे बच्चा माता का स्तन-पान करने के पूर्व यह प्रमाण प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता कि स्तन में सार पदार्थ है और उससे उसका पोषण होगा। श्रद्धावश

वह बिना प्रमाण के ही स्तन-पान करता है। इसीलिए विनोबाजी कहते हैं : "इसी कारण किसी-किसी विषय में हमारी श्रद्धा रहनी चाहिए।"

श्रद्धा के साथ कार्य-सम्पादन करने से जितना ही फलोदय होता है, उतनी ही निष्ठा पैदा होती है। काम में जितनी अभिज्ञता होती है, निष्ठा भी उतनी ही दृढ होती है। श्रद्धा और निष्ठा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए विनोबाजी ने कहा है "श्रद्धा एक दृढ दीवाल की तरह है। वह या तो सीधी खडी रहेगी या जमीन पर गिर जायगी। वह होगी तो पूर्ण रूप से और नहीं होगी तो सर्वथा नहीं। जिस प्रकार कोई मनुष्य या तो सम्पूर्ण रूप से जीवित ही रह सकता है या सम्पूर्ण रूप से मृत हो। जिस प्रकार कोई मनुष्य ४०, ५०, ६० प्रतिशत भाग जीवित और ६०, ५०, ४० प्रतिशत भाग मृत नहीं हो सकता, उसी प्रकार श्रद्धा कभी भी आंशिक नहीं हो सकती। श्रद्धा बिना कोई भी महान् काम कभी पूरा नहीं हो सकता। कर्म श्रद्धा का अनुसरण करता है और कर्म के पीछे निष्ठा आ जाती है। निष्ठा पैदा होने के पूर्व मनुष्य श्रद्धा के साथ काम करता है। अभिज्ञता में सफलता प्राप्त होने से निष्ठा का उदय होता है। किसी काम को आरम्भ करने के पहले उसमें मनुष्य की श्रद्धा रहने की आवश्यकता होती है। हम नैतिक शक्ति के द्वारा इस समस्या का समाधान करना चाहते हैं। अतएव कार्य-सिद्धि के उपाय में हमारी दृढ श्रद्धा रहने की आवश्यकता है।"

ज्ञान और विज्ञान

विज्ञान शक्ति और गति प्रदान करता है और ज्ञान पथ-प्रदर्शन करता है। जहाँ आत्मज्ञान होता है, वहाँ परमात्मा की ओर मार्ग जाता है। जहाँ अहिंसा होती है, वहाँ महाकल्याण की ओर मार्ग जाता है। जिस प्रकार आत्म-ज्ञान और अहिंसा मार्ग दिखाती है, उसी प्रकार हिंसा और अज्ञान भी मार्ग दिखाते हैं। तब यह है कि हिंसा और अज्ञान जो पथ दिखाते हैं, वह विनाश का होता है, अकल्याण का होता है। विज्ञान मोटर-शक्ति (Motor Force) है और आत्मज्ञान, अहिंसा, अज्ञान और हिंसा स्टेयरिंग (Steering) हैं। विज्ञान नाव की डांड है और आत्मज्ञान या अहिंसा, अथवा अज्ञान या हिंसा पतवार हैं। अतएव विज्ञान हिंसा का साथ देने पर अत्यधिक अनिष्ट करता

जो कुछ होता है, वह सब मिथ्या है। ऐसा मानना कठिन है। जो हो रहा है, उसे 'नहीं हो रहा है' मानना कठिन है। मनुष्य इसे तुरन्त ग्रहण नहीं कर सकता। किसी काम की निन्दा या स्तुति न करनी चाहिए, क्योंकि वह जो करता है वह सब मिथ्या है स्वप्न है। स्वप्न में कोई राजा बनता या भिखारी बनता है। उसके सुख-दुःख, दोनों ही मिथ्या हैं। दुनिया में भी जो भी कुछ हो रहा है, जो कुछ चल रहा है, सब मिथ्या है—ऐसी कल्पना कर लेने से मनुष्य बच जाता है। वैसे अपनी बात कहूँ, तो मुझे यह कल्पना बहुत जँच गयी है। मुझे लगता है कि जो कुछ हो रहा है, वह सब भ्रम ही है। अपने चिन्तन के कारण, मुझे लगता है कि मेरे सामने कुछ है ही नहीं।" ये उनके मुख से निकले हुए वचन हैं। वे ज्ञानयोगी हैं, किन्तु महात्मा गांधी ने उन्हें कर्मयोग की दीक्षा देकर इस मार्ग पर उनके जीवन-निर्माण का प्रयत्न किया था। इस प्रकार ज्ञानयोग के दृढ आधार पर कर्मयोग का एक मनोरम भवन उठ खड़ा हुआ है। इसीलिए उनका व्यक्तित्व एक अपूर्व महिमा से मंडित है। सन्यास और ज्ञानवृत्ति जिसके साथ जन्म से है, वही आबाल्य-सन्यासी सबके हित के लिए आज एक अत्यन्त महान् ब्रह्मकर्म में लीन है।

विनोबाजी की वृत्ति ज्ञानाभिमुखी है। इसीलिए भूदान-यज्ञ तथा सर्वोदय के काम में वे ज्ञान-प्रचार या विचार-प्रचार पर विशेष जोर देते हैं। विचार-बुद्धि जाग्रत करने से सत्य पर प्रतिष्ठित यह विचार जनसाधारण निश्चय ही ग्रहण करेगा। इसी विश्वास पर निर्भर होकर इतनी दूर बढ़ सकने में वे सफल हुए हैं और दिन-दिन नवीन ढंग से विचार-विश्लेषण कर रहे हैं। एक ही विषय पर वे नित्य नया प्रकाश डाल रहे हैं। ऐसे अपूर्व ढंग से वे विचार-विश्लेषण करते हैं कि मनुष्य की विचार-बुद्धि जाग्रत न हो, इसका कोई कारण नहीं रह जाता।

यगानुकूल दो पद्धतियों का अनुसरण

इस आन्दोलन की उद्देश्य-सिद्धि के लिए दो साधना-पद्धतियों का एक साथ ही अनुसरण किया जा रहा है। एक है—आध्यात्मिक विकास के लिए चेष्टा और दूसरी है—जन-जाग्रति। भूमि पर सबका समान अधिकार है। धन केवल व्यक्तिगत भोग के लिए नहीं है। वह समाज का है। व्यक्तिगत

रूप से मनुष्य समाज का एक संरक्षक मात्र है। यह ज्ञान जनसाधारण में जाग्रत होने पर उसकी प्रतिक्रिया के दबाव से जिन लोगों के पास अधिक सम्पत्ति है, वे उसे दिये बिना नहीं रह सकेंगे। किन्तु, यदि केवल इस प्रकार जाग्रति हो और दूसरा कुछ न किया जाय, तो इसके फलस्वरूप हिंसा के प्रति झुकाव होगा। इसीलिए इसके साथ-साथ मनुष्य में आध्यात्मिकता का विकास होना चाहिए। सभी प्राणियों में एक ही आत्मा विराजमान है। इसलिए मनुष्य अपने को जैसा समझता और देखता है, दूसरों को भी वैसा ही समझेगा और उसी दृष्टि से देखेगा। सबकी आत्मा समान रूप से जाग्रत और विकसित हो सकती है। इससे धनी का भी हृदय-परिवर्तन होगा। इसके अतिरिक्त यह जनसाधारण को सत्य और अहिंसा के पथ का अनुसरण करने की दीक्षा देगा। इसीलिए इन दोनों प्रकार की चेष्टाओं को युगानुकूल होना चाहिए, अन्यथा खतरे की सम्भावना रह जायगी। विनोबाजी युग के अनुसार इन दो दिशाओं में अग्रसर हो रहे हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने कहा है "पहली बात यह है कि अन्तर-स्थित भगवान् पर हमारा भरोसा है। जल्दी हो या देर से, भगवान् जाग्रत होंगे और मनुष्य को सुपथ पर चलने की प्रेरणा देंगे। दूसरी बात, हम ऐसी स्थिति का निर्माण करने की चेष्टा कर रहे हैं कि जिसमें जन-जाग्रति आये और लोग दान दिये बिना न रह सकें। इस प्रकार हम लोग दोनों प्रकार से जाग्रति लाने की चेष्टा कर रहे हैं—(१) नैतिक जाग्रति, जिससे हृदय-परिवर्तन होगा और (२) लोक-मानस में चेतना का सचार। यदि केवल जनसाधारण में चेतना आये और नैतिक जाग्रति न आये, तो हिंसात्मक शक्ति जाग्रत हो सकती है। दूसरी ओर यदि केवल नैतिक जाग्रति हो, तो उद्देश्यसिद्धि में बहुत दिन लग जायँगे। जिस प्रकार उड़ने के लिए पक्षी को दोनों ही पंखों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार सत्संकल्प की सिद्धि के लिए अन्तर्जाग्रति और बाह्य परिवर्तन, दोनों आवश्यक होते हैं।"

बुद्धि, श्रद्धा और निष्ठा

बुद्धि दिशा-प्रदर्शन करती है और हृदय कर्म में प्रेरणा देता है। नाव की पतवार नाव किस ओर जायगी, यह दिशा देती है और डाँड अपनी शक्ति के

है। प्राचीनकाल में विज्ञान की उन्नति नहीं हुई थी, इसीलिए युद्ध छिड़ने पर हाथ से युद्ध होता था। जो लोग युद्ध में योगदान करते थे, हानि-लाभ उन्हींका होता था। आजकल विज्ञान की अत्यधिक उन्नति करने के कारण युद्ध छिड़ने पर सारा संसार उसमें पड़ जाता है और क्षति का पारावार नहीं रहता। हिंसा के साथ मिलकर विज्ञान ने 'ऐटम (अणु) बम' का निर्माण किया है। उसी प्रकार अहिंसा या आत्मज्ञान ने भी विज्ञान की सहायता से देश-विदेश में प्रसारित और प्रचारित होने का सुयोग पाया है। विज्ञान को यदि कल्याणदायिनी शक्ति के रूप में प्राप्त करना हो, तो उसके साथ आत्मज्ञान या अहिंसा का मेल कराना होगा और अज्ञान अथवा हिंसा के साथ विज्ञान का सम्बन्ध सदा के लिए तोड़ देना होगा। ऐसा न होने से संसार द्रुतगति से विनाश की ओर अग्रसर होता रहेगा।

गांधीवादी-दर्शन की तीन नीतियाँ

गांधीवादी-दर्शन का लक्ष्य है अहिंसक समाज की रचना या सर्वोदय-समाज की स्थापना। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए महात्मा गांधी ने तीन नीतियों की बात कही थी। गांधीजी की विचारधारा को समाज-रचना में कार्यान्वित करने के लिए जरूरी है कि व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इन तीन नीतियों की प्रतिष्ठा करायी जाय। अहिंसक-समाज की रचना के लिए जो कुछ कार्यक्रम अब तक प्रस्तुत किये गये हैं और किये जा रहे हैं, वे सब इन तीन नीतियों में ही निहित हैं। भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम भी इन्हीं तीन नीतियों के अन्तर्गत है। ये तीन नीतियाँ हैं (१) वर्ण-व्यवस्था, (२) ट्रस्टीशिप और (३) विकेन्द्रीकरण।

(१) वर्ण-व्यवस्था—वर्ण-व्यवस्था की बात सुनकर अनेक लोग चौंक सकते हैं। इसमें आश्चर्य कुछ भी नहीं है क्योंकि वर्ण-व्यवस्था के मूल में पवित्र कल्पना रहने पर भी समाज ने इसे विकृत करके जातिभेद, अस्पृश्यता, ऊँच-नीच भेद और प्रन-वैषम्य आदि के द्वारा अपना अवपतन कर लिया है। इस कारण वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में लोगों के मन में इन सब बड़ी सामाजिक ग्लानियों की बात जमी हुई है। किंतु, गांधीजी अहिंसात्मक समाज-रचना के क्षेत्र में जिस अर्थ में इसका प्रयोग करना चाहते थे, उनके

साथ विकृत वर्ण-व्यवस्था की इन सब ग्लानियों का किसी प्रकार का समर्थ नहीं है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि समाज में जो सब महान् शब्द परम्परा से चले आ रहे हैं, उनका परित्याग न करके समाज के नवीन प्रयोजना के अनुसार उनमें नवीन अर्थ भरकर उन शब्दों को चलाते रहना भी एक अहिंसात्मक प्रक्रिया है। इसी भाव से वर्ण-व्यवस्था को अहिंसक समाज-रचना का एक अविच्छेद्य अंग माने जाने के उपयुक्त बनाकर गांधीजी उसका प्रयोग करते थे। अतएव 'वर्ण-व्यवस्था' शब्द के व्यवहार पर आपत्ति होने का कोई कारण नहीं है। शब्द का विशेष कुछ मूल्य नहीं है। किस अर्थ में उसका प्रयोग किया जा रहा है, यही मुख्य बात है।

अहिंसक समाज-रचना के क्षेत्र में प्रयुक्त वर्ण-व्यवस्था का मूलभूत सार यह है—(क) सभी प्रकार के कामों का समान पारिश्रमिक और समान मर्यादा, (ख) प्रतियोगिता का अभाव और (ग) शिक्षा-व्यवस्था में वंश-परम्परागत संस्कृति का प्रयोग। अहिंसक समाज-रचना में इन तीनों ही चीजों की सबसे अधिक आवश्यकता है । यदि गांधीजी दूसरे देश में दूसरी संस्कृति में जन्म ग्रहण करते, तो इस सम्बन्ध में 'वर्ण-व्यवस्था' शब्द सम्भवतः उनके मन में न आता। उपर्युक्त तीनों भावों के द्योतक अन्य किसी उपयोगी शब्द का वे प्रयोग करते।

श्री किशोरलाल मशूवालाजी ने वर्ण-व्यवस्था की व्याख्या करते हुए लिखा है "साधारणतः लोग पिता की जीविका को अपनाते हैं। उससे समाज के जीवन में स्थिरता आती है, सन्तान को व्यवस्थित शिक्षा देने में सुविधा होती है और उस काम की वैज्ञानिक उन्नति के लिए वह विशेष सहायक होता है। यदि सभी कामों का पारिश्रमिक एक हो या लगभग समान हो और मर्यादा भी समान हो, तो विशेष अवस्था को छोड़कर साधारणतः लोग दूसरी वृत्ति ग्रहण करने की ओर आकर्षित न होंगे । साधारणतः ऐसा समझा जाता है कि माता-पिता की वृत्ति के प्रति रुचि और उनकी कुशलता सन्तान के रक्त में समा जाती है। इस विश्वास को भ्रान्त मान लेने पर भी इस विषय में कोई सन्देह नहीं है कि जीवन-पर्यन्त और वंशानुक्रम से एक ही वृत्ति अपनाने से शारीरिक गठन में स्थायी परिवर्तन हो जाता है और वह परिवर्तन सन्तान में भी आने की विशेष सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त

सन्तान बचपन से ही माता-पिता की वृत्तिवाले वातावरण में पलती है। इन दोनों कारणों से पिता के पेशे की शिक्षा ग्रहण करने में बच्चे को अधिक सहूलियत होती है। इस कारण समस्त जीवन का साधारण नियम यह होना उचित है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी जीविका के लिए अपने पिता के पेशे को या उस पेशे की किसी शाखा को या उस पेशे के किसी विकसित रूप को धर्म मानकर ग्रहण करे। सम्पूर्णत कोई भिन्न पेशा अपनाना अवाछनीय है। यदि यह एक बार निश्चयपूर्वक तय हो जाय कि प्रत्येक व्यक्ति अपने जीविकोपार्जन के लिए अपने माता-पिता के पेशे को ग्रहण करेगा, तो आज एम० ए० पास करने के बाद भी लोग जो यह निश्चित नही कर पाते कि वे कौन पेशा अपनायेंगे, वैसी दर्दनाक स्थिति नही रह जायगी, क्योकि वैसा होने से एक निर्दिष्ट उद्देश्य लेकर आरम्भ से ही लोगो को शिक्षा देने की व्यवस्था होगी।"

निम्नलिखित विशेष-विशेष क्षेत्रो में पेशा अपनाने के नियम का उल्लघन किया जा सकता है

(१) यदि पिता की वृत्ति मूल नीति के विरुद्ध हो, तो उस वृत्ति में परिवर्तन लाया जा सकता है और वैसा करना उचित होगा।

(२) यदि किसी व्यक्ति में अन्य किसी पेशे के उपयुक्त गुण का विशेष विकास परिलक्षित हो तो जीविका के लिए तो वह पैतृक पेशा ही अपनायेगा पर सेवा के लिए कोई पारिश्रमिक न लेकर दूसरा काम भी कर सकगा। उदाहरणस्वरूप, यदि किसी किसान के पुत्र में एक सैनिक के गुणा का विकास हो जाय तो वह जीविका के लिए खेती का काम करेगा और देश-सेवा के लिए बिना पारिश्रमिक लिये सैनिक का काम कर सकेगा।

(३) समाज के परम्परागत किसी व्यवसाय में आमूल या हितकारी परिवर्तन करने के उद्देश्य से यदि नवीन दृष्टिकोणवाले कार्यकर्ताओं के निर्माण की आवश्यकता हो, तो अन्य वृत्तिवाले लोग भी सेवार्थ उस काम को ग्रहण कर सकेंगे। उदाहरणस्वरूप आज नवीन समाज की रचना के लिए बुद्धिजीवी लोगों में से ऐसे कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है, जो खेती, पशु-पालन आदि के काम में लग सकें।

इस देश में जमीन कम है, इसलिए सभी किसानों को जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त जमीन दे सकना सम्भव नही है। इस कारण पूरक वृत्तियाँ

के रूप में किसानों को दूसरे-दूसरे गृह-उद्योग चलाने होंगे। इसके अतिरिक्त नवीन समाज-रचना में मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास पर विशेष जोर दिया जाता है। किसान यदि केवल खेती ही करेंगे, तो उनके व्यक्तित्व का विशेष विकास नहीं होगा। इसीलिए ऐसा सोचा गया है कि किसानों के घरों में अन्यान्य उद्योग भी चलेंगे। अतएव बहु-उद्योगी परिवारों (Multicraft Family) का निर्माण करना वाछनीय है। यह क्या वर्ण-व्यवस्था के ढग की चीज नहीं होगी ? नहीं, वैसी बात नहीं है। यदि आज समाज में जीविकोपार्जन की व्यवस्था के लिए या व्यक्तित्व के विकास के लिए पिता को एक से अधिक काम करना पड़े, तो पुन भी जीविकोपार्जन के लिए ठीक वही काम करेगा। कोई मुख्य रूप से कोई भी काम क्यो न करता हो, विनोबाजी सबका कुछ समय के लिए नियमित रूप से खेती करने के लिए कहते है, क्योंकि खेती सर्वोत्तम शारीरिक श्रम और श्रेष्ठ उद्योग है। इस प्रकार खेती का काम जो लोग करेंगे, वह जीविकोपार्जन के अग के रूप में करेंगे या सेवार्थ करेंगे, यह उनकी मुख्य वृत्ति की आय के परिमाण पर निर्भर करेगा। यदि मुख्य वृत्ति की आय पर्याप्त हो, तो वह व्यक्ति सेवार्थ खेती करेगा। उदाहरण-स्वरूप जज साहब सेवार्थ खेती का काम करेंगे। अन्यथा उनका वेतन इतना कम होना आवश्यक है कि खेती की आय मिलाकर उनकी जीविका चल सके। यदि जुलाहे को बुनाई से पर्याप्त आय नहीं होगी तो खेती ही उसकी पूरक वृत्ति होगी।

यदि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार सभी कामों का आर्थिक मूल्य समान हो और उनकी मर्यादा भी समान हो तो बुद्धिजीवी लोग भी स्वास्थ्य-लाभ और जीवन विकास के लिए श्रमश खनी का काम या शारीरिक श्रमवाला कोई काम करने की ओर आकर्षित होंगे।

(२) ट्रस्टीशिप—वर्ण-व्यवस्था की ही भाँति 'ट्रस्टी' या 'ट्रस्टीशिप' की बात भी अनेक लोगो को अच्छी नहीं लगती। इसका कारण यह है कि कानून के अनुसार नियुक्त ट्रस्टियों में बहुत हद तक सच्चाई का अभाव देखा गया है और उन लोगो ने अपनी शक्ति तथा अधिकारो का दुरुपयोग करके अपने को जनसाधारण का कोप-भाजन बना लिया है। इसीलिए बहुत-से लोग यह सन्देह करते थे कि गांधीजी ने राजाओ, जमीन्दारो, पूँजीपतियों

और अन्यान्य स्वार्थी व्यक्तियो की रक्षा के लिए ट्रस्टीशिप का प्रवर्तन कर उन्हें एक और रक्षा-कवच प्रदान कर दिया है। यह आशका पूर्णत निराधार है। व्यक्तिगत रूप से किसी भी व्यक्ति के पास थोडी भी सम्पत्ति रहे, यह गाधीजी नही चाहते थे। जो हो, कानून में 'ट्रस्टी' शब्द का अर्थ और उद्देश्य बहुत पवित्र है। सत्याग्रही गाधीजी ने उसी अर्थ में उसे अपनाया था। गीता में बताये हुए अपरिग्रह, समभाव आदि विचार उनके हृदय में जम गये थे। व्यावहारिक जीवन में उन पर किस प्रकार आचरण किया जायगा, इसी बारे में विचार के क्रम में उन्होने 'ट्रस्टी' शब्द को उपयोगी पाकर ग्रहण किया था। कानून मे 'ट्रस्टी' शब्द का जो अर्थ है, वह तो गाधीजी के ट्रस्टीशिप मे निहित है ही, इसके अतिरिक्त नैतिक दृष्टि से और भी जो-जो अर्थ हो सकते है, वे भी उसमे शामिल हैं। विनोबाजी 'ट्रस्टीशिप' के स्थान पर 'विश्वास-वृत्ति' शब्द का प्रयोग करते हैं। अब इस बात पर विचार किया जाय कि गाधीजी के 'ट्रस्टीशिप' सिद्धान्त की भावधारा क्या है ?

ससार में जो कुछ है—चल-अचल, स्थूल-सूक्ष्म, बाह्य-अन्तर, दृश्य-अनुभव-योग्य आदि—सबका मालिक भगवान् है। मनुष्य किसीका भी मालिक नही है। शरीर, मन, बुद्धि, शक्ति और कुशलता का भी मालिक मनुष्य नही है। स्वामित्व भगवान् का है। उदाहरणस्वरूप कल कारखानो का मालिक, उनके मैनेजर, डाइरेक्टर, शेयरहोल्डर मजदूर आदि नही, बल्कि ईश्वर है। जिस व्यक्ति के हाथ में जमीन है, वह उसका मालिक नहीं है। जमीन का मालिक भगवान् है। सिर्फ यही नही, मजदूरो की परिश्रम-शक्ति के भी मालिक मजदूर नही है, वकीलो की बुद्धि-शक्ति के मालिक वकील नही हैं, शासक की राजशक्ति का मालिक शासक नही है, पुलिसवालों की शक्ति के स्वामी पुलिसवाले नही हैं, सबका मालिक भगवान् है। कानून के अनुसार ट्रस्टीशिप में ट्रस्ट-सम्पत्ति का मालिक रहना चाहिए और ट्रस्ट-सम्पत्ति की आय के उपभोग के लिए हिताधिकारी (Beneficiary) रहने चाहिए। गाधीजी द्वारा परिकल्पित ट्रस्टीशिप मे ट्रस्ट-सम्पत्ति का स्वामी भगवान् है और उसकी हिताधिकारिणी है सम्पूर्ण सृष्टि, जैसे कल-कारखानो से सम्बद्ध मजदूर, मैनेजर, पूंजीपति आदि ही कारखाने की आय का भोग करने के अधिकारी नही हैं, बल्कि सभी लोग, यहाँ तक कि

मनुष्येतर प्राणी भी उस आय का भोग करने के अधिकारी हैं। तब इस मामले में मनुष्य का अग्राधिकार रहेगा। जिसके पास जो कुछ है, वह अपने को उसका ट्रस्टी मानेगा। वह यत्नपूर्वक उन सामग्रियों की रक्षा करेगा और मितव्ययी बनकर फल-भोग करेगा। वातावरण की स्थिति के अनुसार वह उन सामग्रियों का न्यूनाधिक ग्रहण करेगा और बाकी सब सेवार्थ अर्पित करेगा। अपने शरीर को भी मनमाने तौर पर काम में लाकर नष्ट करने का अधिकार किसीको नहीं है। वह तो सम्पूर्ण सृष्टि की सेवा के लिए है। इसलिए यत्न और सतर्कता के साथ शरीर की रक्षा करनी होगी और आवश्यकता होने पर सेवार्थ उसका विसर्जन करना होगा। मनुष्य की शक्ति, बुद्धि, कुशलता, क्षमता, अधिकार आदि के सम्बन्ध में भी यही बात है। सभी चीजें सम्पूर्ण सृष्टि की सेवा के लिए हैं।

गांधीजी इस प्रकार व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने देना चाहते थे क्या? नहीं, ऐसी बात नहीं है। जब तक सम्पत्ति-परिग्रह-प्रथा का अन्त नहीं हो पाता, तब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति जिनके पास है या रहेगी, उन्हें कौन दृष्टिकोण अपनाना होगा और इतने दिनों तक व्यक्तिगत सम्पत्ति उनके पास किस रूप में रहेगी, इसी समस्या को हल करने के लिए ट्रस्टीशिप की आवश्यकता अनुभव की गयी। वे केवल ट्रस्टी के रूप में उन्हें ग्रहण कर रहे हैं, ऐसी मनोवृत्ति उनमें पैदा होनी चाहिए और तदनुरूप आचरण उन्हें करना चाहिए।

एक बात और है। मान लिया जाय कि व्यक्तिगत सम्पत्ति समाप्त हो गयी अथवा वह इतनी कम हो गयी कि उसका महत्त्व कुछ नहीं रहा। तब क्या ट्रस्टीशिप नीति के प्रयोग की समाज में आवश्यकता नहीं रहेगी? नहीं, ऐसी बात नहीं है। शिक्षा आदि के द्वारा क्रान्ति के पथ पर बढ़ रहे समाज में मनुष्यों के बीच की दैहिक, मानसिक और बौद्धिक शक्ति तथा योग्यता की विषमता को कम तो किया जा सकता है, पर कुछ विषमताएँ सदा विद्यमान रहेंगी। अतएव मनुष्य सर्वदा ही अपने को अपने शरीर, मन और बुद्धि का ट्रस्टी मानकर तदनुरूप आचरण करेगा और उनका सेवार्थ प्रयोग करेगा।

कानून के अनुसार, किसी नाबालिग की सम्पत्ति ट्रस्टियों के हाथ में जाने पर ट्रस्टियों का यह कर्तव्य होता है कि वह नाबालिग जब बालिग हो

जाय, तब उसकी सम्पत्ति उसे अर्पित कर दे। जब तक देश की जन-संख्या कम थी और भूमि अधिक थी, तब तक भूमि-समस्या पैदा नही हुई थी। इसके बाद जनसंख्या में उत्तरोत्तर होनेवाली वृद्धि के दबाव से देश में करोडो भूमिहीन गरीबो का प्रादुर्भाव हुआ। किन्तु इतने दिनो तक वे बेहोश रहे—निद्रा में पड़े रहे। अब वे जाग गये हैं। करोडो भूमिहीन नाबालिग अब बालिग हो गये हैं। इसलिए अब भूमिवान् ट्रस्टियो का कर्तव्य है कि वे हिताधिकारी (Beneficiary) भूमिहीन गरीबो को उनकी भूमि वापस कर दें। यही भूदान-यज्ञ का आह्वान है।

कोई-कोई व्यक्ति गाधीजी के 'ट्रस्टीशिप' का गलत अर्थ लगाते हैं। इस सम्बन्ध में बोलते हुए विनोबाजी ने सम्प्रति ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त के अर्थ पर नवीन प्रकाश डाला है। इस सम्बन्ध मे उन्होने कहा है "मैं यह कहना चाहता हूँ कि कोई-कोई व्यक्ति गाधीजी के ट्रस्टीशिप-सिद्धान्त का गलत अर्थ लगाते हैं।

"ट्रस्टीशिप का प्रथम सिद्धान्त यह है कि ट्रस्टी अपने को पिता के स्थान पर मानेंगे। पिता पुत्र का अपनी अपेक्षा अधिक अच्छी तरह भरण-पोषण और सरक्षण करता है। कोई भी पिता ऐसा नही कहता कि मै जितनी अपनी परवाह करता हूँ, पुत्र की भी ठीक उतनी ही परवाह करता हूँ। बल्कि, पिता कहता है कि मैं अपने से अधिक अपने पुत्र का ध्यान रखता हूँ। इसी प्रकार ट्रस्टी भी अपने को पिता-स्वरूप ही मानेंगे। किन्तु केवल इतने से ही ट्रस्टीशिप का उद्देश्य पूरा नही होता। ट्रस्टीशिप का दूसरा सिद्धान्त यह है कि पिता चाहता है कि पुत्र शीघ्रातिशीघ्र उसके बराबर हो जाय, उसके समान योग्यता प्राप्त कर ले और अपने पैरो पर खडा होना सीखे। स कार गाधीजी का सिद्धान्त बहुत गम्भीर है।" अतएव समाज में एकाध परिवर्तन आने से या कुछ सस्कार आ जाने से ही ट्रस्टीशिप का उद्देश्य पूरा नही हो जाता। मजदूरो की मजदूरी तो बढा दी जाती है पर मालिक और मजदूर, इन दोनो वर्गों को स्थायी बनाये रखने के लिए मालिक को मालिक और मजदूर को मजदूर बनाकर रखा जाता है। इससे न तो ट्रस्टीशिप हुआ और न सर्वोदय ही।

(३) विकेन्द्रीकरण—विकेन्द्रीकरण के सम्बन्ध में अन्यत्र विचार

किया जा चुका है। यहाँ केवल एक-दो विषयों का उल्लेख किये जाने की आवश्यकता है।

(क) मशीन-युग के आविर्भाव के पूर्व देश की अर्थ-व्यवस्था और उद्योग-समूह विकेन्द्रित थे। अब जो विकेन्द्रीकरण की बात कही जा रही है, उसमें क्या नवीनता रह सकती है? इस आशंका का समाधान होना चाहिए। मशीन-युग के पहले सब विकेन्द्रित तो थे, पर विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था नहीं थी। उस समय ग्राम-ग्राम में उद्योग-धंधे छोड़े हुए थे। उनके पीछे कोई सुपरिकल्पित व्यवस्था नहीं थी, कोई संगठन भी नहीं था। इसीलिए मशीन-युग के प्रथम आघात से ही सब उद्योग-धंधे चूर-चूर हो गये थे। नवीन समाज-रचना की परिकल्पित विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था मशीन-युग के तथा विज्ञान के सभी अवदानों को प्रयोग में लायेगी और शक्ति-संचय करने योग्य उनमें जो कुछ है, उन सबको ग्रहण करके उत्तरोत्तर अधिक शक्ति-सम्पन्न बनेगी। लक्ष्य यह रहेगा कि मशीन-युग या विज्ञान के किसी अवदान को ग्रहण करने के फलस्वरूप किसी प्रकार की बेकारी, आलस्य और बुद्धि की जड़ता का जन्म न हो। इस प्रकार मशीन-युग में जो कुछ ग्रहण-योग्य होगा, उन सबको विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था ग्रहण करेगी। पहले जो विकेन्द्रित उद्योग थे, उनमें यह शक्ति नहीं थी। सभी दृष्टि से विचारी हुई कोई व्यापक योजना भी उनके सामने नहीं थी। वर्तमान विकेन्द्रीकरण-व्यवस्था मशीन-युग में जो कुछ अच्छा है उन सबको हजम कर लेगी और अन्त में मशीन-युग को ही समाप्त कर देगी। पहले के विकेन्द्रित उद्योगों और आज की विकेन्द्रीकरण-योजना या परिकल्पना के बीच इतना बड़ा पार्थक्य है।

(ख) विकेन्द्रीकरण का अर्थ केवल उद्योगों का विकेन्द्रीकरण नहीं है, राज्य-शक्ति का विकेन्द्रीकरण भी इसमें निहित है। इसके अतिरिक्त समाज के जिस किसी क्षेत्र में, जहाँ भी क्षमता केन्द्रीभूत हो गयी है, उसका विकेन्द्रीकरण भी इसमें शामिल है।

सूतांजलि

महात्मा गांधी का प्रथम श्राद्ध दिवस १२ फरवरी, १९४८ को देश में सर्वत्र मनाया गया था। महात्मा गांधी के देहावसान के उपरान्त उनके

कार्यों को अच्छी तरह चलाने के लिए क्या व्यवस्था की जाय, इस बारे में विचार करने के लिए मार्च, १९४८ मे सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन बुलाया गया। उस सम्मेलन में महात्मा गाधी की विचार-धारा को माननेवालों का एक भ्रातृ-समाज (Brotherhood) कायम किया गया। उसका नाम 'सर्वोदय-समाज' रखा गया। सर्वोदय-समाज के सिद्धान्त के अनुसार सर्वोदय-योजना के व्यापक प्रचार के लिए प्रत्येक वर्ष १२ फरवरी को देश में स्थान-स्थान पर मेलों का आयोजन होता है। सूताजलि अर्पित करना उस मेले का एक मुख्य कार्यक्रम होता है। गाधीजी पर जो लोग श्रद्धा करते हैं और शारीरिक श्रम का आदर्श मानते हैं, उन सबको अपने हाथ से काता हुआ एक गुडी सूत (६४० तार) सर्व-सेवा-सघ के लिए अर्पित करना होता है।

सूताजलि का कार्यक्रम आत्मनिर्भर ग्रामराज के निर्माण तथा शासन-मुक्त समाज की प्रतिष्ठा के लिए अपरिहार्य कार्यक्रम है। कारण, (१) सूताजलि प्रचलित होने से सारे देश में एक कर्ममय उपासना प्रचलित होगी। इससे जनसाधारण एक स्वाभाविक आध्यात्मिक दृष्टि प्राप्त करेगा। (२) सर्वोदय-प्रतिष्ठा के लिए शारीरिक श्रम के आदर्श का अनुसरण करना अपरिहार्य है। सूत कातना द्रोह-रहित उत्पादक श्रम का प्रतीक है। इसलिए वह श्रम-यज्ञ के अनुरूप आहुति है। (३) अपने हाथ से काता हुआ सूत अर्पित करने का अर्थ होता है, आत्मनिर्भर ग्रामराज तथा सर्वोदय के लिए वोट देना। एक गुडी ही देनी होगी, अधिक नही, क्योकि इससे यह समझा जा सकेगा कि जितनी गुडियाँ प्राप्त हुई है, उतने लोगों ने सर्वोदय के पक्ष में वोट दिया है। सूताजलि के रूप मे यदि अर्थसग्रह करना इसका उद्देश्य होता, तो एक व्यक्ति के एक से अधिक गुडी अर्पित करने पर प्रतिबन्ध नही रहता। (४) सूताजलि-अर्पण मे कितनी विराट् शक्ति निहित है, इस सम्बन्ध में अब भी लोग जागरूक नही हुए हैं। मान लें कि प्रत्येक मेले में सूत का पहाड खडा हो जाय, तो क्या विचार मन में आयेगा? विनोबाजी कहते हैं कि ऐसा होने से लगेगा कि हनुमान चित्रकूट-पर्वत ले आये हैं।

सर्वोदय का रूप ग्रामोद्योग-प्रधान होगा। खादी ग्रामोद्योगो का केन्द्र-स्वरूप है। महात्मा गाधी खादी को ग्रामोद्योगरूपी सौरमडल का सूर्य कहते

थे। स्वाधीनता-आन्दोलन के समय खादी को स्वाधीनता का परिधान (Livery Of Freedom) कहा जाता था। विनोबाजी कहते हैं कि अब खादी 'साम्ययोग का सकेत-चिह्न' बन सकती है। इसीलिए सूताजलि सर्वोदय-साधना के कार्यक्रम मे क्रमश प्रधान स्थान ग्रहण कर लेगी, इसमे सन्देह नही है। जिन सब भूमिहीन गरीबो में भूमि-वितरण किया गया है और किया जायगा, वे सब जब विचार को समझकर श्रद्धासहित नियमित रूप से सूताजलि अर्पित करने लगेंगे, तभी भूमि-वितरण का उद्देश्य सार्थक मानना होगा।

उन्होंने आश्रम-स्थापना का शुभ अनुष्ठान सम्पन्न किया। यह तो हुआ, किन्तु यथार्थ क्या है? क्यों इस आश्रम की स्थापना की बात सोची गयी? इसका मूल कहाँ है? इसके अतिरिक्त विनोबाजी के वर्तमान कार्यक्रम के साथ इसका कोई सम्बन्ध है क्या? दस वर्ष पूर्व जब विनोबाजी सिवनी-जेल में थे, तभी वे गीता के 'स्थितप्रज्ञ' सम्बन्धी श्लोकों पर व्याख्यान देते थे। वे व्याख्यान 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं। उसी व्याख्यान के क्रम में उन्होंने बौद्ध-निर्वाण और वेदान्त के 'ब्रह्म-निर्वाण' शब्दों का समन्वय किये जाने की आवश्यकता अनुभव की थी और व्याख्यान में उन्होंने उनका समन्वय भी किया था। उस समन्वय के सम्बन्ध में 'स्थितप्रज्ञ-दर्शन' पुस्तक में लिखा है 'ये दोनों ही वस्तुएँ एक हैं। बौद्ध-धर्म का 'निर्वाण' निषेधक (Negative) शब्द है और गीता का 'ब्रह्म-निर्वाण' विधायक (Positive)। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय, तो 'ब्रह्म-निर्वाण' शब्द केवल विधायक नहीं है, दोनों ही अर्थों के सग्राहक रूप में गीता ने उस शब्द की अवतारणा की है। 'ब्रह्म निर्वाण' कहने से 'मैं' चला जाता है, किन्तु 'ब्रह्म' रह जाता है। इसमें भयभीत होने की कोई बात नहीं है। जहाँ 'शब्द' समाप्त हो गया, वहाँ शब्द लेकर झगडा क्यों? गीता की भाषा में मैं कहूँगा 'एक ब्रह्म च शून्य च य पश्यति स पश्यति'—जो ब्रह्म और शून्य को एक देखता है, वही सत्य देखता है। इसीलिए ब्रह्म निर्वाण' शब्द के द्वारा सारे वाद मिट जाते हैं।"

बिहार में भूदान-यज्ञ की सफलता के मूल में बहुत लोगों की श्रद्धा, तपस्या और एकान्त-निष्ठा है सही, किन्तु विनोबाजी कहते हैं कि सबके मूल में भगवान् बुद्ध की पुण्य-स्मृति की प्रेरणा है। इसी कारण, लगता है कि उन्हें बोधगया में 'समन्वय-आश्रम' की स्थापना के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई। सर्वोपरि भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम जिस परम लक्ष्य की ओर सकेत करता है, उसीसे उन्होंने समन्वय-आश्रम की स्थापना के लिए प्रेरणा पायी। यह निम्नलिखित बातों से क्रमश स्पष्ट हो जायगा।

वेदान्त इस परम सत्य का प्रतिपादन करता है कि एकमात्र ईश्वर ही है और कुछ नहीं है। सब कुछ ईश्वरमय है। यह सत्य प्राप्त करने से जीवन में अहिंसा का आना अवश्यम्भावी हो जाता है। कारण, यदि हिंसा की जाय, तो वह हिंसा तो अपना ही नाश करेगी। सब तो एक ही आत्मा

और एक ही ईश्वर है। समन्वय की बात समझाते हुए विनोबाजी ने इसकी अनुपम ढंग से व्याख्या की है "वेदान्त और अहिंसा, ये दोनों चीजें परस्पर-विरोधी नहीं हैं। ये परस्पर के कार्य-कारण हैं। वेदान्त से पूर्णतः अहिंसा प्रतिफलित होती है और अहिंसा ग्रहण करने के अतिरिक्त वेदान्त की और कोई दृढ़ बुनियाद नहीं रहती। दूसरी ओर, वेदान्त का आधार छोड़कर अहिंसा दृढ़ नहीं हो सकती। यह समस्त प्रक्रिया गीता के एक श्लोक में बहुत संक्षेप में वर्णित है'

'समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥'

"मनुष्य सर्वत्र परमेश्वर का अस्तित्व समान रूप से देखे—यह हुआ वेदान्त। और, उसके परिणामस्वरूप मनुष्य किसी प्रकार की हिंसा नहीं कर सकता, क्योंकि हिंसा-कार्य करने के लिए जो लोग तलवार उठायेंगे, वे ऐसा अनुभव करेंगे कि अपने ही ऊपर प्रहार करने के लिए उन्होंने तलवार उठायी है। इस कारण जो लोग इस प्रकार आत्महत्या नहीं करेंगे, वे परमगति को प्राप्त होंगे। मूल बुनियाद है—समान परमेश्वर-दर्शन अर्थात् वेदान्त। उसकी जीवन-निष्ठा अहिंसा है और अन्तिम परिणाम परमगति है। इस प्रकार गीता के एक अद्भुत श्लोक में सम्पूर्ण विश्व के लिए जरूरी समन्वय, आदि से अंत, आधार से शिखर तक की व्याख्या हुई है।" इस समन्वय तत्त्व की व्याख्या करके विनोबाजी ने आगे कहा : "सर्वांगीण समग्र सत्य-दर्शन और उसके साथ अहिंसा—इसको वेदान्त कहते हैं। हमें अपने जीवन और दर्शन में इन दो तत्त्वों का समन्वय करना होगा। अब तक समन्वय के लिए जो चेष्टाएँ की गयी हैं, उनसे केवल एक दिशा मिली है, परिपूर्णता नहीं आ सकी है। हो सकता है, परिपूर्णता तक कभी न पहुँचा जा सके। जो हो, भगवान् ने आज हमारे लिए एक विशाल कार्यक्रम की रचना की है। भूदान-यज्ञ हम लोगों को कितनी दूर तक ले जायगा, इसका अनुमान आज कर सकना सम्भव नहीं है। किन्तु, हमें एक कदम के बाद दूसरा कदम, इस प्रकार अग्रसर होना होगा। इस सम्पर्क में एक सांस्कृतिक केन्द्र की स्थापना की बात मेरे मन में आती है। उसका नाम 'समन्वय-आश्रम' या 'समन्वय-मंदिर' जो भी ठीक समझा जाय, रखा जाय।

"एक ईश्वर ही है और सब शून्य है, हम सब शून्य हैं। उसीके अन्तर्गत उसीकी लीला में हमने ये सब रूप पाये हैं। शून्य का भी एक रूप होता है। उसका भी एक आकार दिखाई पडता है। वह निराकार नही है। इसी प्रकार हमें भी आकार मिला है। इसीलिए हमें शून्य हो जाना पडेगा।"

हमें 'सर्वोदय'-रचना के माध्यम से सामुदायिक अहिंसा की प्रतिष्ठा करनी होगी। सामुदायिक अहिंसा का मूल है—आत्मा की एकता का दर्शन। सभी प्राणियो मे एक ही आत्मा विराजमान है—यही अनुभूति है। यही सामुदायिक अहिंसा की जड है। यही वेदान्त है। यह अनुभूति रहने से ही सामुदायिक क्षेत्र मे समता-स्थापना की प्रेरणा आती है। इसलिए सत्य या वेदान्त के साथ अहिंसा के समन्वय का प्रयोजन आज अत्यन्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वेदान्त या आत्मज्ञान दिशा-निर्देश करता है। परन्तु कर्म में अग्रसर होने की प्रेरणा और शक्ति देती है अहिंसा। अतएव सामुदायिक समता-स्थापना के क्षेत्र में यह सत्य या आत्मज्ञान और अहिंसा परस्पर पूरक हैं। इसी कारण आज समन्वय की इतनी आवश्यकता है। समन्वय-आश्रम की स्थापना की यही मूल बात है। यदि अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय, तो यह बात समझ में आयगी कि आज सभी क्षेत्रो में समन्वय की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव की जा रही है। विभिन्न धर्मों के बीच, विभिन्न आदर्शों और 'वादों' के बीच, ससार के विभिन्न वर्णों और जातियो के बीच समन्वय आज आवश्यक हो गया है। सब प्रकार के समन्वय का मूल है सत्य और अहिंसा का समन्वय। अतएव विनोबाजी द्वारा प्रतिष्ठित 'समन्वय-आश्रम' का भविष्य अपरिमित सम्भावनाओं से पूर्ण है। यह इस युग में अतर्राष्ट्रीय सास्कृतिक केन्द्र के रूप में परिणत और परिगणित होगा, ऐसी आशा करना दुराशा नहीं है।

समन्वय-आश्रम की स्थापना के पीछे जो महान् आदर्श और उद्देश्य निहित है, वह विनोबाजी के श्रीमुख से निःसृत अमृतमयी वाणी से और भी स्पष्ट हुआ है। समन्वय-आश्रम की स्थापना का एक और मुख्य उद्देश्य है—ध्यानयोग और कर्मयोग के बीच समन्वय-स्थापना। विनोबाजी ने समन्वय और समन्वय-आश्रम सम्बन्धी विचार प्रकट करते हुए (सितम्बर, १९५५ में) कहा है "समन्वय का अर्थ यह नही है कि ससार के कुछ धर्म अपूर्ण

है और उन अपूर्ण धर्मों का समन्वय करना होगा। सभी धर्म पूर्ण है। तब, उन सबमें जो विशिष्टताएँ हैं, उनका समन्वय करना होगा।

"उस आश्रम से कुछ पाने की मुझे आशा है। एक तो यह कि ध्यान-योग और कर्मयोग की अभिन्नता किस प्रकार प्रमाणित की जाय, इसका प्रयोग वहाँ चले। भारत में ध्यानयोग का जिस प्रकार विकास हुआ है, उस प्रकार और कही नही हुआ है। सम्भवतः सूफियो में वैसा विकास हुआ था। किन्तु, इस ध्यानयोग की साधना में थोड़ी त्रुटि रह गयी थी। श्रम और कर्म से विमुख होकर एकान्त में साधना की जाती थी। इसका अर्थ यह नही है कि वे सब साधक आलसी थे। वे तो श्रम करते ही थे। उनकी जीवन-यात्रा अत्यन्त कठोर थी। परन्तु, वे उत्पादक श्रम नही करते थे। ऐसा विश्वास किया जाता था कि ध्यानयोग के लिए कर्मत्याग आवश्यक है। अतएव साधक श्रम-विमुख हो गये। समाज में उत्पादक श्रम की प्रतिष्ठा कम हो गयी। समाज ने उन सब साधकों के भरण-पोषण का भार ग्रहण कर लिया। अब मैं चाहता हूँ कि ऐसे साधकों की सृष्टि हो, जो अपने भरण-पोषण का भार समाज पर न छोड़ें, स्वयं उत्पादक श्रम करें।

"इस उत्पादक श्रम को मैं 'ब्रह्मकर्म' कहता हूँ। साधक श्रम कर रहे हैं, ऐसा बाहर से दिखाई तो पड़ेगा, पर उसका कोई भार साधक के मन पर नही पड़ेगा। हम साँस लेते है, यह देखा जाता है, किन्तु साँस लेने में हमे किसी तरह का कष्ट नही होता। इसी प्रकार साधक 'ब्रह्मकर्म' करते तो रहेंगे, पर हृदय से वे अखंड रूप से ध्यानमग्न रहेंगे। जैसे साँस लेते समय हम यह अनुभव नहीं करते कि हम साँस ले रहे है, उसी प्रकार अविरत कर्म करते रहने पर भी साधक को यह अनुभव नही होगा कि वह काम कर रहा है। कर्म के कारण उसकी समाधि भंग नही होगी।

"समाज में ऐसे ज्ञान-प्रचारक सेवकों की आवश्यकता बराबर रही है, जो प्रव्रज्या ग्रहण करके अखंड भाव से भ्रमण करते फिरें। हिन्दू संन्यासियों, बौद्ध भिक्षुओं, जैन मुनियों एवं अन्य साधु-संतों ने भारत में इस परिव्राजक-वर्ग को जीवित रखा है। इन परिव्राजकों की तपस्या के कारण ही हमारी संस्कृति इतनी विविधताओं से समृद्ध हुई है, प्राणवती हुई है। उसे कितने ही आघात सहने पड़े हैं, फिर भी वह जीवित है। अनासक्त वृत्ति से ग्राम-

ग्राम में ज्ञानप्रचार करते फिरें, ऐसे सेवकों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस बारे में समन्वय-आश्रम सहायता कर सकेगा। आज तक यह परिव्राजक-वर्ग भिक्षा-वृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करता आ रहा है। जिन लोगों ने समाज में भिक्षा-वृत्ति प्रचलित करायी थी, वे स्वयं उच्चकोटि के साधक थे। भिक्षा-वृत्ति के द्वारा जीवन-यापन करने से साधक की उन्नति तो होती ही है। जन-सम्पर्क एवं जनता-जनार्दन के दर्शन पाने का वह एक सुन्दर उपाय है। मैं उस भिक्षा-वृत्ति के साथ शारीरिक श्रम के व्रत को जोड़ देना चाहता हूँ। परिव्राजक जहाँ रहेंगे, वहाँ वे कोई-न-कोई उत्पादक श्रम अवश्य करेंगे।

"उस श्रम के द्वारा जो उत्पन्न होगा, उस पर उनका अपना अधिकार है—ऐसा वे नहीं सोचेंगे। उक्त उत्पादन भी वे समाज को अर्पित करके जो कुछ उनके अपने जीवन-यापन के लिए जरूरी होगा, उसे वे नम्रतापूर्वक ग्रहण करेंगे। यदि इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति के साथ ब्रह्मकर्म को जोड़ दिया जाय, और ध्यानयोग तथा कर्मयोग की अभिन्नता प्रमाणित करने के लिए चेष्टा की जाय, तो जीवन में एक नया आलोक आयेगा।"

"उस क्षेत्र में साधक की साधना सामूहिक साधना में परिणत होगी। साधक यह जानेंगे कि समाज के साथ उनका अभेद्य सम्बन्ध है और वे समाज-रूपी Living Organism (जीवित सस्था) के एक अविभाज्य अग हैं। जलबिन्दु का जीवन जिस प्रकार सागर के साथ समरस होने पर ही सम्भव होता है,- उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी समाज में रहकर ही सम्भव है। दो अवस्थाओं में मनुष्य का जीवन समाज से पृथक् रह सकता है। पहली अवस्था है मृत्यु और दूसरी है मुक्ति। समाज से अलग होकर जीवित रह सकना सम्भव नहीं है।"

विनोबाजी की मौलिकता

भूदान-यज्ञ का मूल गाधीजी की विचारधारा में है—इस बात का हमने एकाधिक बार उल्लेख किया है। किन्तु, विनोबाजी ने इसे जिस प्रकार देश के समक्ष उपस्थित किया है, वह मौलिक है। इसे प्रकाश में लाने का उनका ढग अपना है। जिस गम्भीरतम आध्यात्मिकता के दृष्टिकोण से भूदान-यज्ञ की विभिन्न दिशाओं का वे विचार करते हैं, वह उनका अपना

है। अतएव विनोबाजी गांधीजी के असमाप्त कार्य को पूरा तो कर रहे हैं, परन्तु उसकी प्रत्येक तह में, प्रत्येक कण में विनोबाजी की मौलिक छाप है। वे गांधीजी के अनुकरण नहीं हैं, वे मौलिक हैं। गांधीवादी विचार को वे एक नवीन आलोक में उद्भासित कर हमारे समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। विनोबाजी को समझने के लिए इस बात को याद रखना होगा। उन्होंने जहाँ से जो पाया है, उसे अपना बना लिया है। वह बात जब उनके मुँह से निकलती है, तब लगता है कि कोई नयी चीज प्रकट हो रही है। यही विनोबाजी की विशिष्टता है। विनोबाजी ने गांधीजी के पास से कितना पाया है और दूसरों के पास से कितना पाया है—ऐसे एक प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने सन् १९४८ में जो मन्तव्य प्रकट किया था, उससे विनोबाजी की उक्त मौलिकता की बात विशेष रूप से प्रकट होती है। उन्होंने कहा : "गांधीजी के पास से तो मैंने परिपूर्ण रूप से प्राप्त किया है। किन्तु, उनके अतिरिक्त अन्य लोगों से भी बहुत चीजें पायी हैं। जिसके पास से मैंने जो कुछ पाया है, उसे मैंने अपना बना लिया है। अब वह सम्पूर्ण पूँजी मेरी ही हो गयी है। उसमें गांधीजी का दिया हुआ कितना है और दूसरों का दिया हुआ कितना है, इसका हिसाब मेरे पास नहीं है। जिस विचार को मैंने सुना है और जिसे उचित पाकर मैंने हजम कर लिया है, वह मेरा ही हो गया है। वह पृथक् कैसे रहेगा? मैंने केला खाया और उसे हजम कर लिया एवं उससे निर्मित मांस मेरे शरीर से जुड़ गया, तब वह केला कहाँ प्राप्त होगा? वह तो मेरे शरीर के रक्त-धारा में परिणत हो गया। इसी प्रकार जिस विचार को मैंने ग्रहण किया है, वह तो मेरा ही हो गया है।"

आन्दोलन का भावी स्वरूप

एक लक्ष्य तय करके घोषणा की गयी है कि सन् १९५७ साल के अन्त तक अहिंसात्मक ढंग से देश की भूमि-समस्या का समाधान करना होगा, अर्थात् भूमि-वितरण का वर्तमान असाम्य दूर करना होगा। इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है। जिस मूलभूत विचार-बोध के आधार पर भूमि-वितरण का असाम्य दूर करना होगा, वह है भूमि पर किसी प्रकार का व्यक्तिगत स्वामित्व नहीं रहेगा। ग्राम की भूमि का स्वामी सम्पूर्ण ग्राम होगा।

जो व्यक्ति अपने हाथ से खेती करना चाहेगा, उसे ही भूमि मिलेगी। यह एक महान् क्रांतिमूलक विचार है। इसे कार्यरूप में परिणत करने का काम भी एक महान् क्रान्ति का काम है। लोक-मानस में आमूल परिवर्तन लाने से ही यह क्रान्ति सम्भव होगी। सर्व-सेवा-संघ भूदान-यज्ञ-आन्दोलन का संचालन और व्यवस्था करता आ रहा है। विनोबाजी का खयाल है कि किसी संस्था की सीमा में रहकर क्रांति कर सकना सम्भव नहीं है? इसीलिए वे चाहते हैं कि आन्दोलन का भार जन-साधारण पर डाल दिया जाय। इससे आन्दोलन व्यापक होगा और क्रांति भी सहज-साध्य होगी। इसके अतिरिक्त गांधी-स्मारक-निधि से धन लेकर आन्दोलन का खर्च पूरा किया जा रहा है। आन्दोलन को संस्था-निरपेक्ष करने के लिए यह भी जरूरी है कि केन्द्रीय संस्था से आर्थिक सहायता लेनी बन्द की जाय। जन-साधारण द्वारा आन्दोलन का भार ग्रहण कर लिये जाने पर धन की विशेष आवश्यकता नहीं रह जायगी। सब सम्पूर्ण समय देनेवाले कार्यकर्ताओं के लिए आर्थिक व्यवस्था न करने से काम नहीं चलेगा। सम्पत्तिदान-यज्ञ में प्राप्त धन का एक अंश इस मद में खर्च किया जा सकता है। सम्पत्तिदान में प्राप्त सम्पत्ति को जिन जिन उद्देश्यों के लिए खर्च करने के नियम हैं, उनमें अन्यतम उद्देश्य यह है कि त्यागी गरीब कार्यकर्ताओं के न्यूनतम निर्वाह-व्यय के लिए सम्पत्तिदान में मिला धन खर्च किया जा सकता है। इसीलिए विनोबाजी चाहते हैं कि सम्पत्ति-दान-यज्ञ-आन्दोलन अत्यन्त व्यापक रूप से चलाया जाय। सितम्बर १९५५ के अन्त में सर्व-सेवा-संघ की प्रबन्ध-समिति के कुछ सदस्य विनोबाजी के उड़ीसा के कुजेन्द्री पड़ाव पर उनसे मिलने गये। भूदान-यज्ञ-आन्दोलन के भावी स्वरूप के सम्बन्ध में उनसे बातचीत के क्रम में विनोबाजी ने उपर्युक्त मनोभाव व्यक्त किये। उससे आन्दोलन के भावी स्वरूप के बारे में स्पष्ट धारणा बन पायेगी। सर्व-सेवा-संघ ने विनोबाजी की उस विचारधारा को मान लिया है और आन्दोलन को वैसा ही रूप देने के लिए आवश्यक व्यवस्था कर रहा है। आन्दोलन के भावी स्वरूप के सम्बन्ध में विनोबाजी की उपर्युक्त बातचीत का सारांश यह है

"आन्दोलन को किसी संस्था की सीमा या नियम में बाँधकर क्रान्ति नहीं लायी जाती। सर्व-सेवा-संघ तो एक संस्था है। संस्था के माध्यम से

सहायता दी जाती है, किन्तु क्रान्ति लाने के लिए लोकमानस में परिवर्तन होना आवश्यक है। मैं चाहता हूँ कि सन् १९५७ में क्रान्ति हो, अर्थात् ग्राम-ग्राम में लोग उठ खड़े हो और हम जैसा चाहते हैं, उस ढग से भूमि का वितरण हो। उस दिन को आने में जितना समय लगे, लगे। किन्तु, अन्तिम क्रान्ति का काम एक ही दिन होना चाहिए। एक तिथि निश्चित करके उस दिन सारे भारत में भूमि-वितरण करना होगा। वैसा लोकमानस तैयार करने के लिए जो कुछ करना आवश्यक हो, वह किया जाय। हम लोगो की पद-यात्रा भी चलेगी, कुछ रचनात्मक काम भी होंगे और राजनीतिक दलो की सहानुभूति भी प्राप्त की जायगी। यह सब तो होगा ही। किन्तु, अतिम लक्ष्य प्राप्त होगा जनशक्ति के द्वारा।

"हम लोग गाधी-निधि आदि से अभी जो पैसा ले रहे हैं, उसे लेना बन्द करके कह देना होगा कि इस क्रान्ति के काम को सम्पूर्ण भारत की जनता ही पूरा करेगी। हम लोग इस काम के लिए किसीसे पैसा नही लेंगे। देश के केवल बीस-पच्चीस स्थानों में कार्यालय रखने होगे। वहाँ दानपत्र आदि जमा रहेंगे। इस काम के लिए जो एकाध लाख रुपये की आवश्यकता होगी, वह तो गाधी निधि से लेकर पूरी की जायगी, पर आन्दोलन का भार जनता पर छोड देना होगा। यह बात ठीक है कि पैसे की व्यवस्था न रहने से पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता (Wholetime Worker) नही मिलेंगे। इसके लिए केन्द्रीय व्यवस्था बन्द करके सम्पत्तिदान के लिए जोरदार चेष्टा करनी होगी और सम्पत्तिदान से आर्थिक सहायता लेकर कार्यकर्ताओ की व्यवस्था करनी होगी। इस प्रकार सारी व्यवस्था जन-शक्ति के माध्यम से होगी। इसे स्वीकार करके एक दिन निश्चित करना होगा और राम-नाम लेकर ऊपर से आर्थिक सहायता लेना बन्द कर देना होगा। लोग कहते हैं कि यह काम केवल आप लोगो का नही है, हम लोगो का भी है। तब हम निरर्थक क्यो यह अहकार रखें कि केवल हम ही यह काम कर रहे हैं। यदि हम सस्था के माध्यम से काम करना बन्द कर दें, तो काम को सफल बनाने का भार प्रत्यक्ष रूप से जनता पर आ जायगा। हाँ, रचनात्मक कार्यों की बात अलग है और मैं चाहता हूँ कि कोरापुट जिले में रचनात्मक काम चलते रहें। इसके अतिरिक्त जो सब जमीन मिली है, उसके अधिकाश का वितरण करके

जीवन में भी। यदि हम उस शुभ क्षण को पहचान लें और अनन्य रूप से कार्यरत होकर उसका सद्व्यवहार कर सकें, तो अविलम्ब ही और अनायास ही देश अभीष्ट प्राप्त करेगा। हमारे देश और जाति के लिए वह शुभ क्षण उपस्थित है।

इस गम्भीर प्रसंग में गीता का अंतिम श्लोक स्मरण हो आता है :

"यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥"

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण हैं, जहाँ धनुर्धारी पार्थ है, वहीं श्री है, विजय है, वैभव है और अविचल नीति है—यह मेरा मत है।"

महात्मा गांधी ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है : "यहाँ श्रीकृष्ण को 'योगेश्वर' विशेषण दिया गया है। अतएव उसका अर्थ है, अनुभवसिद्ध शुद्ध ज्ञान। 'धनुर्धारी पार्थ' के द्वारा अनुभवसिद्ध ज्ञान की अनुसारिणी क्रिया सूचित की गयी है।" जहाँ अनुभवसिद्ध ज्ञान और तदनुसारिणी क्रिया—इन दोनों का संयोग होगा, वहीं श्री, विजय, वैभव, सब मिलेंगे।

आज भारत में पूर्ण विकसित आत्मज्ञान और तदनुसारिणी क्रिया—इन दोनों की आवश्यकता है। यदि इन दोनों को हम एक साथ प्राप्त कर सकें, तो हमें श्री, विजय, वैभव, सब कुछ प्राप्त होगा। भगवान् हमें वह शक्ति प्रदान करें।

र भूदान-साहित्य

क्रान्ति का अगला कदम	।)
मानवीय क्रान्ति	।)
(अन्य लेखक)	
सर्वोदय का इतिहास और शास्त्र	।)
जीवनदान	।)
श्रमदान	।)
भूदान-आरोहण	॥)
पावन-प्रसंग	॥)
सत्संग	।)
सन्त विनोबा की आनन्द-यात्रा	१॥)
सुन्दरपुर की पाठशाला	।॥)
विनोबा के साथ	१)
क्रान्ति की राह पर	१)
क्रान्ति की ओर	१)
पावन-प्रकाश (नाटक)	।)
क्रान्ति की पुकार	≡)
पूर्व-बुनियादी	॥)
गोसेवा की विचारधारा	॥)
भूमि-क्रान्ति की महानदी	।॥)
भूदान-दीपिका	=)
गाँव का गोकुल	।)
सर्वोदय भजनावलि	।)
सेवाग्राम-आश्रम [परिचय]	।=)
सर्वोदय पद-यात्रा	१)
गांधी एक राजनैतिक अध्ययन	॥)
सामाजिक क्रान्ति और भूदान	।-)
ग्रामशाला ग्रामज्ञान	१)
आठवाँ सर्वोदय-सम्मेलन	१)
भूदान-यज्ञ : क्या और क्यों ?	१)
छात्रों के बीच	।)
धरती के गीत	-)
नक्षत्रों की छाया में	प्रेस में
भूदान-गंगोत्री	प्रेस में

१) १॥) १) ।॥) ॥) ॥) ।) ।॥) ।-) १) ≡) =) =) =) =) प्रेस में ३) ।॥) ।॥) ॥) ।=) ॥) ।) ।=) ।=) ।)

M. K.
Bhooc,
Revoli
Princi
Swara
Voice
The C
A Pic
Jeevar
Demar
Bhooc
Sarvo
Lessor
Non-V
Why t
Progr
Bhooc
Plan f

लोगों के समक्ष वितरण-प्रणाली का एक नमूना रखना होगा। बाकी काम जनता को ही करने होंगे। वितरण के सम्बन्ध में हमारे जो नियम हैं, उन्हें बड़े-बड़े अक्षरों में छपाकर प्रत्येक ग्राम में टँगवा देना होगा। तब उन नियमों के अनुसार कोई भी व्यक्ति वितरण-कार्य कर सकेगा। इस प्रकार आन्दोलन को तन्त्रमुक्त अवस्था में ले जाने के लिए जो कुछ आवश्यक हो, वह आप लोग करें।"

उपसंहार

प्रेम की शक्ति शान्तिपूर्वक और अदृश्य रूप से काम करती रहती है। फिर एक दिन किसी शुभ अवसर पर वह विराट् आकार में प्रकट होती है। तब लोग उसे देखकर स्तम्भित हो जाते हैं। महात्मा गांधी ने भारत-भूमि में सामुदायिक प्रेम का बीज बोया था। वह बीज अंकुरित होने के लिए मिट्टी के नीचे अदृश्य रूप से क्रियाशील था और एक दिन लोक-चक्षु के अंतराल में अंकुरित हुआ था। आज एक और साधु के शीतल जल-सिंचन से वह तरुण वृक्ष के रूप में द्रुतगति से बढ रहा है। लोग इसकी वृद्धि की गति और प्रकृति को देखकर आश्चर्य कर रहे हैं। यह काम महात्मा गांधी के कार्यक्रम में शामिल था। इस सम्बन्ध में विनोबाजी ने कहा है। "आज जिस काम को मैंने आपके समक्ष उपस्थित किया है, उसे आपने अपने हृदय से मान लिया है और मैंने देखा है कि उसे समझाने में मुझे कुछ विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। इसका अर्थ क्या है? महापुरुष की शक्ति जब उसके शरीर में बँधी रहती है, तब वह सीमाबद्ध रहती है, किन्तु जब वे शरीर त्याग देते हैं, तब वही शक्ति अधिक तेज के साथ काम करने लगती है। यदि हम लोगों के मन की भूमिका ठीक तरह से गठित हो, तो हम हृदय से यह अनुभव करेंगे कि गांधीजी विराजमान हैं—वे तिरोहित नहीं हो गये हैं। आज उन्हींकी शक्ति बहुत-से लोगों को प्रेरणा दे रही है। परमेश्वर अपना काम अनेक प्रकार से पूरा करा लेते हैं। समुद्र में अनेक लहरें उठती हैं। परमेश्वररूपी समुद्र में सत्पुरुषरूपी लहरें उठती हैं। और, यदि हम उन लहरों का स्पर्श करते हैं, तो हमें उनसे प्रेरणा और नवजीवन प्राप्त होता है। आज जो कार्यक्रम मैंने देश के समक्ष रखा है, वह गांधीजी का ही आदर्श कार्यक्रम है। आप लोगों में यह विश्वास रहना चाहिए कि हमें एक आशीर्वाद प्राप्त है।"

अभी यह काम ईश्वर की प्रेरणा और सकेत से हो रहा है। अन्यथा, किसी व्यक्ति-विशेष या कुछ व्यक्तियो के सचालन में इतना सम्भव नहीं होता। इस आन्दोलन की आशातीत प्रगति देखकर विस्मय होता है। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि भूदान-यज्ञ कोई साधारण आन्दोलन नही है। भूमि लेकर इसका आरम्भ भले ही है, किन्तु इसका मूल गम्भीरतम प्रदेश में है। यह एक धर्म-आन्दोलन है। यह युग की माँग है। यह युग-धर्म है। धर्म-प्रवाह का आरम्भ होता है अत्यन्त संकीर्ण आकार मे। क्रमशः उसका विस्तार होता है और अन्त मे वह सम्पूर्ण भू-भाग को प्लावित कर देता है। यह आरम्भ में वृक्ष के क्षुद्रतम बीज के आकार में प्रकट होता है, किन्तु क्रमशः बढकर विशाल वृक्ष में परिणत हो जाता है। इस सम्बन्ध मे विनोबाजी कहते है : "साधारणतः वट वृक्ष के साथ धर्म की तुलना की जाती है। जो धर्म चेतनामय और जीवन्त होता है, वह वट वृक्ष की तरह बढता है। उससे जो शाखाएँ फूटती हैं, कालान्तर में वे जड़ के रूप में परिणत हो जाती है और नये-नये वृक्ष पैदा हो जाते है। धर्म-विचार के क्षेत्र मे भी ऐसा ही होता है। वट वृक्ष का बीज बहुत छोटा होता है, इसीलिए उसके साथ धर्म की उपमा दी जाती है। आम का पेड बडा तो होता है, पर उसकी गुठली छोटी नही होती। बरगद का बीज बहुत छोटा होता है और इस छोटे बीज में ही सारी शक्ति निहित रहती है। इसी प्रकार भूदान-यज्ञ के नाम से जो आन्दोलन आरम्भ हुआ है, उसका बीज भी इतना छोटा था कि जिन्होंने उसे बोया था, वे भी यह नहीं सोच सके थे कि वह इतना व्यापक रूप धारण करेगा और उसकी शाखाओ से भी नये-नये वृक्षो का जन्म होगा।" इसमें नवीन समाज-रचना का बीज निहित है। सिर्फ यही नही, विश्व की आज जो सबसे आवश्यक समस्या है, उसके समाधान का बीज भी इसमें निहित है। यदि भारत इस आन्दोलन को पूर्णतः सफल कर सकेगा, तो केवल सर्वोदय-समाज की स्थापना में ही उसकी परिणति नहीं होगी, बलिक उससे विश्व शान्ति का मार्ग देख सकेगा। वह सम्पूर्ण विश्व को अभय मत्र देने में सक्षम होगा।

महाकवि शेक्सपियर की वाणी में कहा जाय, "There is a tide in the affairs of man."—मनुष्य के जीवन में उन्नति का एक शुभ क्षण आता है, जैसा व्यक्तिगत जीवन में, वैसा ही जाति और देश के

ENGLISH BOOKS

	Prices Rs. As.
जं	
क	
ह्री	
उ Gandhi	2—0
lan-Yajna (Navajivan) Vinoba	1—8
utionary Bhoodan-Yajna ,,	0—6
ples and Philosophy of the Bhoodan ,,	0—5
है, -Shastra ,,	1—0
of Vinoba	0—4
को all of Puri-Sarvodaya-Sammelan	0—2
ture of Sarvodaya Social Order J. P. Narayan	0—6
‑Dan ,,	0—2
ad of the Times Dhirendra Mazumdar	0–12
lan-Yajna—the great Challenge of the age ,,	0—4
daya & World Peace J. C. Kumarappa	0—2
as from Europe ,,	0—8
Violent Economy and World Peace ,,	1—0
he Village Movement? ,,	3—8
ess of a Pilgrimage-S. Ramabhai	3—8
lan as seen by the west.	0—6
or Sarvodaya	Under Print

भारत के कृषिजीवी-वर्गसमूह और भूमिहीन

(संख्याएँ लाख में दी गयी हैं)

जन-संख्या	कृषिजीवी वर्गों की कुल जन-संख्या (पोषित वर्ग समेत)	पूर्णतः या मुख्यत अपनी जमीन में खेती करने-वाले किसान (पोषित वर्ग समेत)	पूर्णतः या मुख्यतः दूसरों की जमीन में खेती करने-वाले किसान
३५६६ (क)*	२४९१	१६७३	३१६
६३२	४६९	३९४	३२
४०२	३४६	२२२	३३
१४६	११६	८७	९
२४८	१४१	८०	३०
९०	६६	५२	१२
६	५	४	५८
६	५	४	५६
१३७	१	१	१
५७०	३७०	१९९	५५

केसानों का विवरण

Ganc
lan-Y
utions
ples a
-Shas
of Vi
Call of
ture o
1-Dan
nd of t
lan-Ya
daya 8
ns fron
Violent
he Vill
ess of a
Jan as
or Sarv

खेतिहर मजदूर पोषित वर्ग समेत)	गैर खेतिहर भूमि के अधिकारी या मालगुजारी प्राप्त करने-वाले (पोषित वर्ग समेत)	कुल भूमि-हीन किसान (ख)*	भूमिहीन किसानों का पोषित वर्ग	कुल भूमि-हीन किस (पोषित समेत)
४४८	५३	२१२	५३२	८८४
३६	७	२५	५९	८४
८८	२	३८	८०	११८
१८	२	७	१८	७५
३०	१	१७	४८	६५
२	८१	४	९२	१६
०१	११	—	—	—
३१	११	—	—	—
—	—	—	—	—
१०४	१२	४१	११९	[illegible]